॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

इकतीसवाँ खण्ड

हमारी पुस्तकें मिलने के पते—

१—*कलकत्ता*—श्रीहनुमान प्रसादजी ठर्ड, तोलाराम मानमल, ११३, मनोहरदास कटरा।

२—वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०१ गुमा लेन (जोडासाँकू) कलकत्ता ६।

३—*बम्बई*—सेठ भगवानदास सिंघानिया, सिंघानिया वाड़ी, नई वाडी के सामने, दादी सेठ अग्यारी लेन।

४—*देहली*—शंकरलाल ऋषिकुमार, दुशाले वाले, मोती बाजार।

५—*अमृतसर*—शंकरलाल ऋषि कुमार, दुशाले वाले, अमृतसर।

६—*पटना*-पं० परमानन्द पाण्डेय मीठापुर,वैद्यनाथ कदमकुआँ पटना।

७—*वृन्दावन*—रामदासजी शास्त्री, चारसम्प्रदाय छावनी।

८—*मुजफ्फरपुर*—लाला लक्ष्मणदासजी दारू, मन्त्री, संकीर्तन भवन, नई मन्डी।

९—*बलिया*—पं० श्यामसुन्दरजी उपाध्याय, सेक्रेटरी, डिस्ट्रिक्टबोर्ड।

१०—*कानपुर*—बा० कुञ्जबिहारीलाल (हेडमास्टर) नवाब गंज

११—*प्रयाग १*—गोपालदास अग्रवाल, २२५ रानी मन्डी।

१२—" २—लाला बिहारीलालजी अग्रवाल, भारती भवन रोड।

१३—" ३—श्री० साँवलदास खन्ना, चौक।

१४—*नागौर*—महावीरप्रसाद गौड़ बाजार बडा नागौर।

१५—*लखनऊ*—मालवीय पुस्तकालय अमीनाबाद। (?) [illegible] टन्डन, विद्यामन्दिर चौक।

१६—*मन्दौसी*— भोलानाथ गुप्त न्यू एजेन्ट।

१७—*शाहजहाँपुर*—रामस्वरूप गुप्ता मुमुक्षु-आश्रम।

१८— *नागपुर*—वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन, महल रोड।

१९—*झाँसी*—वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन, गुसाँईपुरा।

२०—*उदयपुर*—वनलाल शर्मा संस्कृत ग्रन्थागार चाँदपोल।

२१—*नैपाल*—कविप्रसाद गौतम, संकीर्तनभवन, युद्धसड़क काठमाण्डू

श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी द्वारा लिखित कुछ अन्य पुस्तकें जो हमारे यहाँ-से मिलती हैं—

१—बद्रीनाथ दर्शन—ब्रह्मचारी जी ने चार पाँच बार श्री बद्रीनाथ जी की यात्रा की है। वहाँ के छोटे बड़े सभी स्थानों की यात्रा का वर्णन उपन्यासों ढंग से सरल रोचक भाषा में किया है। लगभग सवा चार सौ पृष्ठ की सचित्र सजिल्द पुस्तक का मूल्य ५)।

२—महात्मा कर्ण—दानवीर कर्ण का रोचक, ओजपूर्ण आलोचनात्मक जीवन, पृष्ठ ३४५ मूल्य २॥)

३—मतवाली मीरा—भक्तिमती मीरा के सिद्धान्तों का शास्त्रीय विवेचन, जीवन तथा पदों की झाँकी, पृष्ठ २२४, मूल्य २) मीरा का भाव पूर्ण चित्र।

४—श्री शुक—रंगमञ्च पर खेलने योग्य शिक्षाप्रद सरस धार्मिक नाटक, पृष्ठ १२५ मूल्य ॥)

५—भागवती कथा की वानगी—पृष्ठ ८२ मूल्य ।~)

६—मेरे महामना मालवीय तथा उनका अंतिम संदेश मालवीय जी के सुखद संस्मरण, पृष्ठ १०४ मूल्य ।~)

७—भारतीय संस्कृति और शुद्धि—"क्या अहिन्दू हिन्दू बन सकते हैं ?" इस महत्वपूर्ण प्रश्न का शास्त्रीय विवेचन, पृष्ठ-७५-मूल्य ।~)

८—शोक-शान्ति—श्रीब्रह्मचारी जी का एक परम कृपा-पात्र भक्त त्रिवेणी में डूब कर मर गया था। उसके सुखद संस्मरण, तथा उसके पिता के लिए लिखा हुआ तत्वज्ञान पूर्ण मनोरंजक पत्र, पृष्ठ ६४ मूल्य ।~)

सब पुस्तकें मिलने का पता—संकीर्तन भवन, प्रतिष्ठानपुर (प्रयाग)

मुद्रक—भागवत प्रेस, झूसी (प्रयाग)

जानकी जी पतिव्रता के लिये वाल्मीकि जी की शपथ

॥ श्रीहरि ॥

भागवती कथाके पाठकोंसे

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणतः क्लेश नाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥

"भागवती कथा" के प्रेमी पाठकोंके आजकल बहुत पत्र आते हैं। उनमें अधिकांश भाई अत्यन्त रोष प्रकट करते हैं। बहुतसे कहते हैं—"तुम हमारे साथ अन्याय कर रहे हो, पहिले तो हमें भागवती कथाका चसका लगा दिया, अब आगेके खण्ड भेजते नहीं।" बहुतसे कहते हैं—"तीसरा वर्ष समाप्त हो गया और अभी आपके सात आठ अंक शेष हैं।" कुछ कहते हैं—"तुममें जब छापनेकी शक्ति ही नहीं थी, तो इतना बडा काम अपने ऊपर उठा क्यों लिया ?" कुछ कहते हैं—"तुम असमर्थ हो तो अमुक प्रेसको इसे सौंप दो।" कुछ कहते हैं—"अब श्रीकृष्णचरित्र कबसे आरम्भ होगा। बडे बूढे आखोंमें आँसू भर कर कहते हैं—"क्या हम अपने जीवनमें भागवती कथाके श्रीकृष्णचरित्रको पढ सकेंगे। इन सबका सारांश है—"हम भागवती कथाके अग्रिम खण्ड पढनेको अत्यन्त ही उत्सुक हैं। आप इन्हें शीघ्र ही छापें।"

लेखक और प्रकाशक दोनोंके लिये इससे बढ कर संसार में प्रसन्नताकी कोई बात नहीं हो सकती, कि उसके साहित्यको उसके पाठक अपनायें और उसे पढनेके लिये समुत्सुक रहें। 'भागवती कथा'का हमारी असमर्थतासे प्रचारकोंके अभावसे

हमारी व्यवहारकी अनभिज्ञतासे जैसा होना चाहिये वैसा प्रचार नहीं हुआ। अब तक लगभग डेढ सहस्र प्रतियाँ ही बाहर जाती हैं। किन्तु जितना भी स्वतः प्रचार हुआ उतना सतोष प्रद है। इसके पाठक पाठिकाओंके हृदयमें इसके लिये स्थान है। सैकडों स्थानोंमें इसकी कथायें होती हैं और बहुतसे श्रोता बडी उत्सुकतासे इसकी कथाको सुनते हैं। किन्तु प्रकाशनमें जो कठिनाइयाँ हैं, उनके कारण प्रकाशक और व्यवस्थापक विवश हो जाते हैं, इन सब कठिनाइयोंका मूल कारण है आर्थिक स्थिति 'भागवतीकथा' के प्रकाशनमें कुछ आर्थिक लाभ तो है नहीं। एक कहावत है—"ओच्छी पूँजी खसमीको खा जाती है" व्यापार जितना विस्तृत होगा, उसका प्रचार भी उतना ही होगा। वर्षमें चार पाँच सहस्रका घाटा लगा, किसीने पूरा कर दिया। इससे जो पैसे आये उसे आश्रम वाले खा गये। अगले खण्डको कागद भी चाहिये और कल अन्न भी चाहिये। कल अन्न भी नहीं लाते तो कट्रोलकी तीथि समाप्त होती है, पन्द्रह दिन फिर न मिलेगा। इसलिये पहिले अन्न लाते हे, काम रुक जाता है। प्रेस वाले बैठे तो रहेंगे नहीं वे दूसरा कार्य आरम्भ करदेते हैं। जब कागद आजाता है, कह देते हैं—" इसे करलें तब आपके काममें हाथ लगावें।"

२- दूसरे प्रयाग में प्रेस थोडे हैं, काम बहुत है, प्रेसों को अपने ही कामो से अवकाश नहीं इस लिये वे फँसा तो लेते हैं, किन्तु समय पर देते नहीं।

३- तीसरे आज कल सब प्रेसो में नये चुनाव के लिये मत-दाताओंकी सूचियाँ तथा पाठ्य पुस्तकें छप रही हैं, उनसे पर्याप्त पैसा मिलता है, इस लिये साधारण लोगों की ओर ध्यान नहीं देते।

४–प्रेसोंमें काम करने वालों के मस्तिष्क आकाश में चढ गये हैं, उनमें आत्मीयताका अभाव दिन दिन होता जारहा है। तनिकसी बात पर हडताल करेंगे, बुरी भली सुनावेंगे। कमसे कम काम करेंगे, अधिकसे अधिक वेतन चाहेंगे। शील, सकोच नम्रता, शिष्टता कुछ भी नहीं रहा। उनके मनमें यह बात भर गया है या भर दी गयी है, कि जितने काम कराने वाले हैं, ये सब धूर्त हैं श्रमिकों का रक्त चूसने वाले हैं, इन्हें जितना कर सको तग करो।" इससे काम आधा भी नहीं होता नित्य बखेडे खडे रहते हैं, समय पर काम नहीं मिलता।

५– पाँचवाँ कारण यह है, कि सकीर्तनमें सब काम अभी तक साधु शाही चल रहा है। जैसी व्यवस्था चाहिये वैसी व्यवस्था है नहीं। कोई अपना काम समझ कर करने वाला नये ढगसे योग्य व्यवस्थापक नहीं।

६– छठा कारण यह था कि हमारे खण्डोंकी पृष्ठ सख्या क्रमसे एक खण्डके पश्चात् दूसरे खण्डमें क्रम वद्ध चलती थी जैसे पचीसवाँ खण्ड ५०० पृष्ठ पर समाप्त हुआ, तो छब्बीसवाँ ५०१ से आरम्भ होगा और वह ७५० पर समाप्त हुआतो सत्ताइसवाँ ७५१ से आरभ होगा। इससे जब तक पिछला खण्ड पूरा छप न जाय तब तक अगले खण्ड छप नहीं सकते, इसलिये भी देरी होगयी। यदि सब खण्डाकी पृष्ठ सख्या पृथक् पृथक् होती, तो एक किसी प्रेसमें एक अन्य किसी दूसरे प्रेसमें इससे शीघ्रता भी होजाती और एक प्रेसमें बँधे न रहते। यही सब सोचकर हमने अब सब खण्डोंको पृथक् पृथक् बना दिया। सबकी पृष्ठ सख्या पृथक् रहेगी। अबतक तो ऐसा था, कि जहाँ १५ फरमें समाप्त हुए तहाँ कहीं भी कथा हो उसे रोक देते थे। अब जब पृथक् पृथक् खण्ड बनाये हैं, तो

प्रसङ्गोंका भी ध्यान रखा है'इसलिये अब कोई खण्ड बड़ा होगा कोई छोटा। इसमें प्रकाशकोंको भी सुविधा हो गयी, पाठकोंको भी हो गयी। २९ तक तो पाठक पढ़ ही चुके हैं, ३० वाँ प्रभातप्रेसमें छपाया है। ३१ वाँ अपने ही यहाँ भागवत-प्रेसमें छपा। ८ वाँ भी भागवतप्रेसमें ही छपा। ३२, ३३, ३४, ३५ और ३६ इन पाँच खण्डोंको वैद्यनाथ आयुर्वेदभवनके स्वामी पं० रामदयालु रामनारायणजी वैद्य लेगये हैं, वे इन्हें अपने जनवाणीप्रेस कलकत्तामें छपाकर भेजेंगे। ऐसी आशा है कि महीने दो महीनेमें ही ये सब खण्ड पाठकोंके समीप पहुँच जायँगे। अब 'भागवती कथा' नियमित रूपसे यहीं छपे इसकी बड़ी तत्परतासे व्यवस्था की जा रही है। उसे हम अभी न बतावेंगे, जब व्यवस्था होजायगी, तब बतावेंगे। अतः पाठक धैर्य करें, विश्वास रखें, हम अपनी ओरसे प्रयत्नमें कोई कोरकसर नहीं रखेंगे। उसका परिणाम क्या होगा यह तो प्रभुके आधीन है।

पाठक बहुत ही उत्सुक हैं, कि अब श्रीकृष्णचरित्र कबसे आरम्भ होगा। आगामी खण्डोंमें क्या होगा। 'कथा' के कितने भाग निकल चुके हैं, उनके सन्तोषार्थ हम अबतक के लिखे खण्डोंके सम्बन्धमें नीचे कुछ विवरण देते हैं।

पाठकोंने पढ़ा ही होगा श्रीरामचरित सत्ताईसवें खण्डसे आरम्भ हुआ था। २७, २८, २९, ३० और ३१ में श्रीरामचरित्र की कथायें हैं। ये कितनी मर्यादा और करुणा पूर्ण कथायें हैं, अब इनके सम्बन्धमें क्या कहें। इन्हें पढ़कर जिनके नेत्रोंमें अश्रु न आये हों, उनका हृदय निश्चय ही किसी विचित्र धातुका बना होगा। ३१ वें खण्डमें श्रीरामचरित्र समाप्त हो गया है। सूर्यवंश-रघुवंश के शेष राजाओंकी कथा भी इसी खण्डमें अत्यन्त संक्षेप

मे आगया है। अब चला बत्तीसवाँ खण्ड:-

३२ वाँ खण्ड

इस खण्डमें चन्द्रवंशका वर्णन आरम्भ होता है। इसमें २७ अध्याय हैं। चन्द्रदेव की चञ्चलता उनक पुत्र बुध, बुधके पुरूरवा, पुरूरवाका उर्वशी उवर्शीकी सुन्दर सरस कथायें रसिक हृदयोंका तथा वैराग्यवानोंका समान रूपसे शिक्षा-प्रद हैं। फिर जह्नु, कुश, ऋचीकवी अद्भुत मनोहारिणी कथायें हैं। भगवान् परशुरामके पावन चरत्रमें यह खण्ड समाप्त है। भगवान् परशुरामके प्रसङ्गके आठ अध्याय हैं और उन्हींका इसमें भव्य चित्र है। अब चला ३३ वाँ खण्ड :-

३३ वाँ खण्ड

इस खण्डका आरम्भ श्री विश्वामित्र चरित्रसे होता है इस मे २२ अध्याय हैं। महर्षि विश्वामित्र आयु कुवलयाश्व, अलर्क रजिरम्भ अनेना तथा नहुष आदि राजर्षियों के शिक्षाप्रद मनोहारी पुराणान्तरोंक चरित्र है। फिर महाराज ययातिका और उनकी शर्मिष्ठा और देवयानी दा पत्नियों के अत्यद्भुत चरित्र हैं। १३ अध्यायों में महाराज ययाति अत्यन्त सरस महान् वैराग्य युक्त चरित्र है। अब चला ३४ वाँ खण्ड -

३४ वाँ खण्ड

इस खण्डका आरम्भ पुरुवशीय महाराज दुष्यन्तके चरित्र से आरम्भ होता है। इसमें २८ अध्याय हैं। ७ अध्यायोंमें महाराज दुष्यन्त और शकुन्तलाकी सरस और तन्मयता कर देने वाली कथा है। फिर उनके पुत्र भरत और भरतवंशी राजा रन्तिदेव बृहद्‌क्षत्र पाचाल वंशीय राजाओंकी तथा कृप, कृपी, सवरण, उपरिचर, चेदिवंशीय राजाओंकी पावन

योगमायाके वर्णनसे लेकर श्रीदेवकी वसुदेव की कारावाससे मुक्ति तक का वर्णन इस अध्यायमें है। यह खण्ड कितना महत्व पूर्ण और उपादेय है, इस सम्बन्धमें अब हम क्या कहें। अब आता है सैंतीसवाँ खण्ड।

३७ वाँ खण्ड

यह खण्ड कुटिल मन्त्रियोंके कुमंत्रसे कंसानुयायियों द्वारा क्रूरकर्मसे आरम्भ होता है, इसमें २८ अध्याय हैं। श्रीमद्-भागवतमें नन्दोत्सवके १८ श्लोक हैं, एक एक श्लोक पर एक एक अध्याय है; ब्रजजी रहन सहन, नेग, जोग, आचार व्यवहारका विस्तारसे वर्णन है, फिर नन्दजीका कंसको कर देने मथुरा गमन और वसुदेवजीसे भेंट ये दो अध्यायोंके प्रसङ्ग हैं। पाँच अध्यायोंमें पूतनामुक्ति, शकटासुर, तृणवर्त आदि असुरों के उद्धारका वर्णन करके विश्वरूप दर्शनपर यह खण्ड समाप्त किया गया है। अब आया अड़तीसवाँ खण्ड।

३८ वाँ खण्ड

यह खण्ड राम श्यामके नाम करणसे आरम्भ होता है, इस में २३ अध्याय हैं। भगवान्‌की मनोहारिणी बाल लीलायें, मद भक्षणलीला, माखनचोरीलीला, उलूखलबन्धन लीला, तथा अत्यंत सरस सुमधुर लीलायें इस खण्ड में हैं। इस खण्ड को वात्सल्य खण्ड कहें तो अत्युक्ति न होगी। घर घर में नंदनन्दन कनुआने सरसता की सुखमयी सरिता बहाई है। अब आता है उन्तालीसवाँ खण्ड।

३९ वाँ खण्ड

फल बेचनेवाली सुखिया मालिनि पर कृपासे यह खण्ड आरम्भ होता है। इस पूरे खण्ड में २८ अध्याय हैं। गोकुल छोड़ कर गोप वृन्द वृन्दावन आगये हैं। श्री वृन्दावन में कैसी

कैसी कमनीय क्रीडायें की हैं। प्रथम उनका सरस वर्णन है। फिर वत्स, वक आदि असुरोंके उद्धार का प्रसङ्ग है। फिर बालकों के खेलोंका ग्वाल बालोंके विनोद का विचित्र क्रीडाओं का वर्णन है। अघासुर उद्धार और वन भेजने का ऐश्वर्य माधुर्य सख्यभाव मिश्रित प्रसङ्गका तेरह अध्यायोंमे वर्णन है। गोचारण तथा भगवान्की मातृभक्ति पर यह खण्ड समाप्त होता है। अब आता है चालीसवॉ खण्ड।

४० वॉ खण्ड

यह खण्ड पौगण्डावस्थाकी कुछ कमनीय क्रीडायोंसे आरम्भ होता है, इसमें सब २५ अध्याय हैं। धेनुकोद्धारके तीन अध्याय हैं। कालियदमनका प्रसग सात अध्यायोंमे है, फिर वेणुगीत, के परम सरस सुखद सस्मरण हैं और चीरहरणकी रसमयी लीलाके अनतर यह खण्ड समाप्त हुआ है। अब आता है इकतालीसवॉ खण्ड।

४१ वॉ खण्ड

यह खण्ड बुभुक्षित ग्वाल बालोंका विप्र पत्नियोंसे अन्नकी याचनासे आरम्भ किया गया है। यह प्रसङ्ग पॉच अध्यायोंमे वर्णित है। फिर गोवर्धन पूजाका प्रसङ्ग है, जो ग्यारह अध्यायोंमे है। भगवान्का वरुणलोक जाकर पिताजी को लाना और गोपोंको वैकुण्ठ दर्शनकी कथा कह कर यह खण्ड समाप्त हुआ है। इसमें अठारह ही अध्याय है। अन्य खण्डोंकी अपेक्षा यह खण्ड छोटा ही है, किन्तु किया क्या जाय! अब तो रासका प्रसङ्ग आरम्भ होगा। रासके प्रसङ्ग में इसे मिलाना तो खीरमें नमक डालनेके समान है अतः यह खण्ड छोटाही रहा। अब आरम्भ होता है ब्यालीसवॉ खण्ड।

४२ वाँ खण्ड

यह खण्ड रासेश्वरकी रासकी इच्छासे ही आरम्भ होता है। इसमें ४८ अध्याय हैं। यह खण्ड सबसे बड़ा है। इसे रास खण्ड भी कह सकते हैं। इसके दो खण्डभी हो सकते थे। किन्तु भगवान्‌की रासलीला का इतना सरस सुन्दर और चित्ताकर्षक प्रसङ्ग है, कि भावुक भक्तोंका यही जीवन है। हम इसे दो खण्डोंमें करते और भावुक भक्त अतृप्त होकर हमें शाप दे देते तबतो हम कहीं के भी न रहते। निश्चय ही जो इस रासके प्रसङ्गको आरम्भ करेंगे, उसे बिना पूरा पढ़े छोड़ नहीं सकेंगे। इन ४८ अध्यायोंमें रास का गूढ़तम रहस्य वर्णन करते हुए अन्तमें रासलीला प्रसङ्गका समाप्ती गयी है। अब आया तेतालीसवाँ खण्ड।

४३ वाँ खण्ड

यह खण्ड अम्बिका वनकी यात्रासे आरम्भ किया है इसमें २२ अध्याय हैं। सुदर्शन, शङ्खचूड तथा अरिष्ठ आदि की कथायें हैं, फिर कसकी प्रेरणासे अक्रूरजी वृन्दावन आते हैं गोपिकाओंके विरहको स्मरण करके छाती फटती है, इस खण्ड को रुदन खण्ड कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं। अक्रूर घाटपर जहाँ जलमें अक्रूरजीको भगवान्‌के दर्शन हुए हैं, वहाँ तक की कथा है। अब आया चौवालीसवाँ खण्ड।

४४ वाँ खण्ड

यह खण्ड मथुरामें रामश्यामके प्रवेशसे आरम्भ होता है। इस खण्डमें २५ अध्याय है। रजकोद्धार, वायक और माली पर कृपा, कुब्जा पर कृपा, धनुभंग कुवलया पीड़, चाणूर मुष्टिक शल, तोषलकी गति तथा मामाजीकी खेंचा खेंची पटका पटकी और विदाईकी कथा है। उग्रसेनजीका राज्याभिषेक। इन्होंनेमें

पढने जाना और दक्षिणा देकर घर लौटने तककी कथा है। अब आया ४५ वाँ खण्ड।

४५ वाँ खण्ड

यह खण्ड व्रजकी विरह व्यथासे ही आरम्भ होता है। श्रीकृष्णने सबको सदा रुलाया ही है। कोई ऐसा नहीं बचा जो इस निर्मोही कारे कुटिलके वियोगमें रोया न हो। स्वय रोकर उद्धवको बुलाना वृन्दावन भेजना वहाँ रोते हुए व्रज-वासियोंको देखकर उद्धवजीका भी रो पडना। फिर नन्दजीका रुदन, यशोदाजीका रुदन, व्रजाङ्गनाओंका रुदन, भ्रमरगीत के द्वारा प्रलाप रुदन उद्धवजीकी विचित्र दशा, फिर कुब्जाको इच्छित वर और अक्रूरजीको हस्तिनापुर भेजने तककी कथा है। इसमें २४ अध्याय हैं। एक अध्याय पढिये, भरपेट रोयिये। यदि धैर्य बँध जाय तो आगे पढिये नहीं पोथीको बन्द करके रखदो। रोते रहो, दूसर दिन फिर एक अध्याय पढो। वे बडे धैर्यवान् होंगे जो २४ दिनम एक एक अध्याय करके इन २४ अध्यायोंहो पढ लेंगे। अब आता है छियालीसवाँ खण्ड।

४६ वाँ खण्ड

यह खण्ड जरासन्धकी मथुरापुरी पर चढाईसे आरम्भ होता है। इसमें २९ अध्याय हैं, घर गृहस्थी, लडाई भिडाईका वर्णन इसमें जरासन्धसे लडते लडते जब हरि हार गये, तब रण छोड कर भाग खडे हुए। नई द्वारका पुरी बसा ली। अब तक बिना घर द्वारके इधरसे उधर मारे मारे भटकते रहे। कोई घर नहीं द्वार नहीं। घर बनाया तो घरवाली चाहिये, बिना घरवालीके घर कैसा वैसे इन काले कलूटेका विवाह कौन करे। वृन्दावनमे चोरीकी विद्या तो सीख ही चुके थे, वहाँ माखन चुराते थे, यहाँ आकर बहू

चुराने लगे। रुक्मिणीको चुरा लाया। सात इधर उधरसे बटोर लीं। आठ पटरानियोंके विवाहकी बातें इस खण्डमें हैं। ब्याह बरात, लगन और घर गृहस्थीकी छोटीसे छोटी, छिपीसे छिपी, बड़ीसे बड़ी बातें इस खण्डमें पढ़नेको मिलेंगी, गृहस्थी नर नारियोंको लाभ होगा, विरक्तोंका मनोरंजन होगा और श्रीकृष्ण कथा होनेसे मनकी अशुभ वासनायें भी नष्ट होंगी। अब आता है सेंतालीसवाँ खण्ड।

४७ वाँ खण्ड

यह खण्ड भौमासुरके उत्पातसे आरम्भ होता है। इसमें २५ अध्याय हैं। श्यामसुन्दरके सोलह सहस्र एकसौ आठ विवाह, प्रद्युम्नजीकी कथा पुत्र पौत्रोंकी वृद्धि। रुक्मिणीजीसे हँसी विनोद, पुत्र पौत्रोंके विवाह प्रसङ्ग, मार काट लड़ाई भिड़ाईसे श्रीबलदेवजी द्वारा द्विविद वध तककी कथा वर्णित है। अब आया अड़तालीसवाँ खण्ड।

४८ वाँ खण्ड।

यह खण्ड दुर्योधनकी पुत्री लक्ष्मणाको जैसे जैसे जाम्बवती तनय साम्ब हरलाये थे वहाँसे आरंभ होता है। इसमें सब २३ अध्याय हैं। संकर्षण द्वारा हस्तिनापुर कर्षण, नारद बाबा द्वारा द्वारिकाधीशका वैभव दर्शन, धर्मराजका राजसूय और जरासन्ध वधकी कथाका विस्तार किया गया है। इस खण्डमें श्रीकृष्णकी पग पग पर राजनैतिक झलक थी। साम, दान, दण्ड, भेद, छल, बल, निर्भीकता आदि सभी का इसमें वर्णन है, यह कुछ हँसीका प्रसङ्ग है। राजसूय यज्ञमें शिशुपालका वध करके पांडवोंके महान् ऐश्वर्यका वर्णन है। अब आया उञ्चासवाँ खण्ड।

४९ वाँ खण्ड।

यह खण्ड द्वारका पर शाल्यकी चढ़ाईसे आरम्भ होता है। इसमें २४ अध्याय हैं। शाल्य, दन्तवक्र, विदूरथ, बलदेवजी द्वारा बल्वल आदि के वधका वर्णन है, फिर अत्यद्भुत सुदामा चरित्र सात अध्यायोंमें वर्णित है। फिर कुरुक्षेत्रमें गोप गोपियोंसे कैसे भेंट हुई इस अत्यन्त सुखद करुणापूर्ण प्रसङ्गका वर्णन ९ अध्यायोंमें किया गया है। कुरुक्षेत्रसे गोप गोपियोंकी विदाई करके यह खण्ड समाप्त हुआ है। अब आया पचासवाँ खण्ड।

५० वाँ खण्ड।

यह खण्ड वसुदेवजीको जैसे आत्मज्ञान हुआ यहाँसे आरम्भ किया गया है। इसमें सोलह ही अध्याय हैं। यह खण्ड बहुत छोटा हो गया; क्यों कि दशम स्कन्धकी सब लीलाओंका इसमें उपसंहार ही है। सुभद्रा और अर्जुनका विवाह, राजा जनक और श्रुतदेव विप्र पर कृपा, शम्भुजी पर कृपा तथा और भी सुदर प्रसंग हैं. इस खण्डको कृपा खण्ड कहना ही उपयुक्त होगा। श्री-कृष्णचरित्रका उपसहार करते हुए यह खण्ड समाप्त हुआ है। इस प्रकार छत्तीसवें खण्डसे लेकर पचास खण्ड तक इन पन्द्रह खण्डोंमें एक मात्र श्रीकृष्णचरित्र ही है। पन्द्रह खण्ड भागवती कथाके परम महत्वके हैं; अब आया एकादश स्कन्धका ज्ञान प्रकरण यह विषय बड़ा गूढ़ है। इसे कहानियोंमें कहना कठिन है किन्तु जिसे श्रीकृष्ण ही कहें वह क्या कठिन है। यह प्रसंग बडा महत्वका है। इक्यावनवें खण्डसे यह आरम्भ होता है।

५१ वाँ खण्ड

यह खण्ड यदुकुलको विप्रों द्वारा विनाशका जैसा शाप हुआ वहाँसे आरम्भ होता है। इसमें एकीस अध्याय हैं। वसुदेव और

नारद सम्वादके अन्तर्गत नवयोगेश्वरोंका पुण्य प्रसग है वसुदेव नारदके सम्वादकी समाप्ति पर्यन्तकी कथा इसमें वर्णित है, इस खण्डको योगश्वरोपदेश खण्ड कहना युक्ति युक्त होगा। अब आता है बावनवॉ खण्ड ।

५२ वॉ खण्ड

यह खण्ड श्रीकृष्ण उद्धव सम्वादकी प्रस्तावनासे आरम्भ होता है। अवधूत दत्तात्रेयजीने चौबीस गुरु करके उनसे कौन-कौन सी शिक्षायें ग्रहणकी इसीका वर्णन इसमे है। चौबीस गुरुओंके चौबीस अध्याय है, सात अध्यायोंमें प्रस्तावना और उपसहार है। इस पर अवधूत गीता खण्ड एकतीस अध्यायोंका है। यहॉ तक भागवती कथाके १२४७ अध्याय हो गये । अब १२४८ वें अध्यायसे तिरेपनवॉ खण्ड आरम्भ होता है ।

५३ वॉ खण्ड

यह खण्ड सार सिद्धान्त तथा परम भगवद् भक्तोंके लक्षणोंसे आरम्भ होता है इसमे इक्कीस अध्याय हैं। इसमे ससारसे पार होने के सरल साधन सत्सग की महिमा हस गीता, श्रेय सिद्धिके विविध उपाय, भक्तोंका उत्कर्ष सत्सगकी महिमा, ध्यान की विधि और सिद्धियोंके सम्बन्धमे विशद विवेचनाकी गयी है। योग और प्राणायामकी अनुभूतियोंका सूक्ष्मतासे विवेचन है। यहॉ तक १२६८ अध्याय हुए । अब चला चौअनवॉ खण्ड ।

५४ वॉ खण्ड

यह खण्ड विभूति योगसे आरम्भ होता है। इसमें कितने अध्याय होंगे इसे श्याम सुन्दर ही जाने। आज मैंने १२६९ वॉ अध्याय लिखना आरम्भ किया है। इस प्रकार आज तक सब १२६९ अध्याय लिखे गये जिनमें ५३ खण्ड समाप्त हुए और ५४ वॉ चालू है।

जब तक अध्यायोंका खण्डशः क्रम नहीं लगाया था। तब पेटिकाको लिखी हुई पुस्तिकाओंसे भरी देखकर मैं अनुमान लगाता था ७०।८० खण्ड लिख गये होंगे, किन्तु जब खण्ड लगाये तो अब तक ५३ खण्ड ही हुए। एक प्रकारसे आधी पुस्तक लिखी गयी है। यदि १०८ खण्ड हुए और भगवान्ने पूरे कराये तो अभी आधे ही हुए। यह तो कथाभाग है, फिर भागवत और वेद, पुराण, दर्शन इतिहास, भागवतीस्तोत्र, भागवतमें वर्णित तीर्थव्रत, योग, भक्ति, ज्ञान आदि का दार्शनिक ढंगसे विवेचन होगा। इसमें भी ४०।५० खण्ड होंगे। क्या होगा कैसे होगा इसे तो वे सर्वान्तर्यामी श्यामसुन्दर ही जाने। अब मेरे उर प्रेरक प्रभु ने प्रेरणा की है, एक स्थानमें रहनेसे कितना भी निरपेक्ष रहो। किसीसे द्वेष न भी हो तो राग तो हो ही जाता है। परमार्थपथमें रागद्वेष ये ही तो बड़े विघ्न हैं। जीवन भर भागवत पढ़ना और लिखना यही मेरा व्यापार है। राजनीति कार्यके योग्य नहीं। और किसी प्रकारकी योग्यता नहीं। शुकके मुखसे उच्छिष्ट व्यासके वचनोंको बार बार रटते रहना और सूतजीके द्वारा जो भी सुनायी दे जाय उसे लिपिबद्ध करते जाना यही मेरा काम है। भगवान्के बहुतसे पुण्य क्षेत्र हैं कहीं भी पड़े रहना जिसने पेट बनाया है, अपनी सेवा समर्पित की है वह अपने प्रसादसे पेटको भरेगा ही यदि उसे अपना काम कराना होगा तो। न कराना हो न दें शरीरको ले जायँ। ऐसा निश्चय तो है, किन्तु अहंकारके वशीभूत होकर— मायाके चक्करमें फँसकर—इस सिद्धान्तको भूल जाता हूँ। और फिर योगक्षेमकी चिन्ता करने लगता हूँ। यहाँसे चलोगे तो कैसे निर्वाह होगा। कैसे सुविधायें होंगी यह मेरी क्षुद्रता है। विश्वासकी न्यूनता है, निर्भरताकी त्रुटि है, आत्मसमर्पणका अभाव है। इनत्रुटियोंको भी वे ही निकालेंगे, मेरे किये कराये

तो कुछ होनेका नहीं। मेरे करनेसे कुछ होता तो मैं अब तक इस राग द्वेष पूर्ण संसारमें काहेको रहता जाने क्या क्या कर डालता। किन्तु मैं तो यन्त्र हूँ। यन्त्री जैसे घुमाता है घूमताहूँ, जहाँ ले जाता है चला जाता हूँ, जो कराता है विवश होकर करता रहता हूँ। अभी त्रेपन खण्ड तक तो पाठक निश्चिन्त ही हैं। आगेकी बात वे ही द्वारकाधीश जाने जिन्होंने मथुराको उजाड़ कर द्वारका बसाई और अन्तमें अपने ही हाथों अपने कुलका संहार कराके द्वारकाको समुद्रमें डुबाकर स्वधाम पधार गये। वे किसी पर दया थोड़े ही करते हैं।इनकी आँखोंमें शील संकोच थोड़े ही है। ब्रज-वासी नर नारी कितना प्यार इस निर्मोही नटखटसे करते थे, किन्तु यह उन्हें भी छोड़ कर मथुरा चला गया, फिर आया ही नहीं। सो मेरा पाला तो इस निष्ठुरसे पड़ा है, जैसा यह नाच नचावेगा नाचूँगा, मुझे इसने खरीद लिया है जमूड़ा बना लिया है, एक भूत मन मेरे पीछे लगा दिया है। उसीकी वाणीमें यह बोलता है, इससे मैं यह निर्णय नहीं कर पाता कि यह भूत बोल रहा है। या धूत-धूत भूत सब एक ही हैं। अच्छा जो है सो है पाठक धैर्य रखें। अब तक प्रकाशनका निमित्त मैं था, अब यह किसी और के सिर पर सवार हो जायगा। उसके यहाँ कुछ कमी नहीं। कमी है हमारे भावकी सो उसे भाववश्य भगवान् पूरा करेंगे।

संकीर्तन भवन, प्रतिष्ठानपुर (प्रयाग)
बैशाख, शुक्ल, १। २००७ वि०

अपराधी—
प्रभुदत्त

जगज्जननी जानकीजीका भूप्रवेश

(७०१)

मुनौ निक्षिप्य तनयौ सीता भर्त्रा विवासिता ।
ध्यायन्ती रामचरणौ विवरं प्रविवेश ह * ॥
(श्री भा० ९ स्क० ११ अ० १५ श्लो०)

छप्पय

अश्वमेधका अश्व पकरि लव कुशने लीन्हों ।
नहि छोड्यो नहि डर समर डटिके तिन कीन्हों ॥
पुनि मुनि सँग मख गये रामकी कथा सुनाई ।
जानि तनय निज राम जनक तनया बुलवाई ।
सहमी सिकुड़ी लाजवत, मुनिपाछे श्रुति सरिस सिय ।
तनु करुणा सँग शान्तरत, चलहि रामपद धारि हिय ॥

हे भगवन् ! तुमने संसारमें प्रेमकी सृष्टि क्यों की। यदि प्रेमके बिना तुम्हारा काम नहीं चलता था तो फिर व्यर्थमें वियोगको बिच बीचमें क्यों जो दिया। वियोग आवश्यक ही था, तो फिर संयोग क्यों कराया जीनेकी इच्छा क्यों रहने दी। ये सब ही आवश्यक थे तो फिर लोकलाज मर्यादा कर्तव्य परायणता आदिके पचड़े क्यों उपस्थित किये। प्रेमीको पग-

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! पतिसे निर्वासिता सीता अपने दोनों पुत्रों को भगवान् वाल्मीकिजीको सौंपकर श्री रामचन्द्रजीके युगल चरणोंका ध्यान करती हुई पृथिवीके विवरमें समा गई ।

पग पर इनके द्वारा पिमन पडता है । प्रेम ऐसा राजयोग है कि यह जीवन भर छूटता नहीं नेहका नाता टूटता नहीं, प्राण निकलते नहीं घुट घुट कर मरना पडता है। तडप तडप कर जीवन बिताना पडता है मान अपमान लोकापवाद सभी कुछ प्रेमास्पदकी प्रसन्नताके लिये सहन करने पडते हैं। छुईमुईसे सुकुमार हृदयमें जब अपना ही प्रेमास्पद पाषाणसे निर्दयता पूर्वक प्रहार करता है तो हाय! उन्हे भी सहना पडता है। दैवकी कैसी विडम्बना है। कैसा यह कटकाकीर्ण पथ है कैसी इसकी वक्र गति है कैसी प्रेमकी अटपटा चाल है। रोनेमें भी सुख और हँसनेमें भी उल्लास है। इसमें दु ख होता है या सुख कुछ कह नहीं सकते। सुख होता तो सब आँसू क्यों बहाते निरन्तर रोते क्यों रहते। दुख होता तो सभी करुण प्रसगोंको इतने उल्लासमे बार-बार क्यों सुनते। कवि इसीको बार बार वर्णन क्यों करते। अत कह नहीं सकते प्रेमजन्य विरहमें सुख होता है या दु ख।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान् वाल्मीकिके आश्रममे कुश लवका जन्म हुआ। मुनिने शास्त्रीय विधिसे उनके सब संस्कार किये। वे अश्विनीकुमारोंके समान सुदर थे। शुक्ल पक्षके चन्द्रमाके समान सभी आश्रमवासियोंको सुख पहुँचाते हुए प्रतिदिन बढने लगे। महामुनि वाल्मीकिने उन्हे समस्त धनुर्वेद पढादिया। समस्त दिव्यास्त्रका प्रयोग उपसहार आदि उन्हे विधिवत सिखादिया। उन्हें दिव्य धनुष अक्षय तूणीर, ढाल, तलवार तथा कवच मुनिने दिये। जिस समय कवच पहिन कर ढाल तलवार बाँधकर धनुबाण धारण करके पीठ पर तूणीरोंको लटका कर दोनों भाई साथ साथ चलते तो ऐसे प्रतीत होते मानों वीररस-

ने ही दो रूप धारण करलिये हों। सीताजी उन्हें देखती तो उन्हें भ्रम होजाता मानों साक्षात् श्रीरामचन्द्रजी ही आरहे हों। दोनों बच्चोंको देखते ही माँको धनुषयज्ञकी याद आजाती। धनुष भंगके समय श्रीराम भी ऐसे ही थे। ऐसी ही उनकी उठन बैठन बोल चाल और चितवन थी। दोनों बच्चे आकर मातासे लिपट जाते और बड़े प्यारसे माँ कह कर पुकारते। तब सीताजी-का हृदय भर आता और वे उनके मुखको चूम लेतीं। बच्चे पूछते—"माँ! हमारे पिता कौन हैं ?"

जानकी आँखोंमें आँसू भर कर कहतीं—"बेटा! तुम्हारे माता पिता दोनों ही भगवान वाल्मीकि हैं। मैंतो तुम लोगोंकी धाय हूँ। दयालु मुनिने मुझे भोजन पर तुम लोगोंके लालन-पालनके लिये रख लिया है।"

बच्चे कहते—"नहीं माँ! तुम झूठ बोलती हो। तुम ही हमारी प्यारी माँ हो। तुम ही हमारी सच्ची जननी हो। किन्तु माँ! अमुक ऋषिकुमार कहते थे—'तुम्हारे पिता बड़े निर्दयी हैं, उन्होंने तुम्हारी माँको घरसे निकाल दिया है?' क्या हमारे पिता यथार्थमें निर्दयी हैं, क्या उन्होंने यथार्थमें तुम्हें घरसे निकाल दिया है ?"

यह सुन कर माताके धैर्यका बाँध टूट जाता. किन्तु अपनेको सम्हाल कर कहतीं—ना बेटा ऐसे नहीं कहते हैं। तुम्हारे पिता निर्दयी नहीं हैं। वे मनुष्य तो हैं नहीं। वे तो देवता हैं। कभी तुम पर दया करेंगे।"

फिर बच्चे पूछते हैं— माँ! तू पिताजीकी चर्चा करते ही दुखी होजाती है, रोने लगती है. तुझे कोई मानसिक पीड़ा होती है, अतः हम तुमसे कभी भी पिताजीके सम्बन्धमें न पूछा करेंगे।"

इस प्रकार बच्चे अत्यन्त ही लाड चावसे बढने लगे। जानकीजी उन दोनों सुन्दर सुकुमार, तेजस्वी पराक्रमी बालकोंको क्षत्रिय वेषमें निहार कर प्रसन्न रहतीं किन्तु उनके मनमें तो सदा श्रीरामचन्द्रजीकी मन मोहनी मूर्ति नृत्य करती रहती। वे सदा उन्हीं की चिन्तामें निमग्न बनी रहतीं।'

इधर श्रीरामचन्द्रजी सीताजीके विरहमें दुखी हुए, यज्ञ याग करके काल यापन करने लगे। मुनियोंकी आज्ञासे भगवान्ने बहुतसे अश्वमेध यज्ञ किये थे। शत्रुघ्नजीने लवणासुरको मार कर जब मथुरामें अपनी राजधानी बना ली। इसके उपरान्त भगवान्की इच्छा राजसूय यज्ञ करनेकी हुई। उन्होंने अपनी इच्छा सभामें समस्त सभासद तथा छोटे भाइयोंके सम्मुख प्रकटकी। इसे सुनकर हाथ जोड़ कर भरतजी बोले—"प्रभो आप हमारे स्वामी हैं, हम आपके आज्ञाकारी अनुचर हैं आप जो आज्ञा देंगे उसका पालन तो हम करेंगे ही, किन्तु मेरी क्षुद्र बुद्धिमें राजसूय जैसा अति हिंसात्मक यज्ञ आपको न करना चाहिये। सब राजाओंको मार काट अथवा अधीन करके तभी राजसूय यज्ञ किया जाता है। राजा तो सब प्रेमसे ही आपके वशमें हैं। फिर क्यों अकारण युद्ध किया जाय। राजसूयका नाम सुनते ही मानों राजा चिढ जाते हैं वे सोचते हैं— हमारे सम्मुख अमुक राजा सम्राट् कैसे बने। आप तो बिना राजसूयके ही सबके हृदयसम्राट् हैं फिर राजाओंको भडकाना उचित नहीं। और भी तो बहुतसे पुण्य प्रद यज्ञ याग हैं।"

यह सुनकर भरतजीकी बड़ाई करते हुए श्री रामचन्द्रजी बोले—"भरत! तुम बड़े ही बुद्धिमान् तथा मेरे परम प्रिय हो। तुम्हारा कहना यथार्थ है। अच्छी बात है, मैं तुम्हारे कहनेसे

राजसूयका विचार छोड़ता हूँ। क्योंकि उचित बात बालक भी कहे, तो उसे मान लेना चाहिये। किन्तु अश्वमेध यज्ञमें तो कोई दोष नहीं। इससे तो बड़े२ पापोंसे मनुष्य छूट जाते हैं। ब्रह्महत्या लगने पर इन्द्र भी अश्वमेध करके पापसे विमुक्त होगये थे। और भी सहस्रों राजे महाराजे अश्वमेधके द्वारा यशस्वी होकर परम पुण्यके भागी बने हैं।'

भरतजीने कहा— हाँ महाराज! अश्वमेध करें। राजाओंके लिये यह तो गौरवकी बात है। इस यज्ञमें यथेष्ट दान धर्म कीजिये ब्राह्मणों तथा अतिथि अभ्यागतोंका सत्कार कीजिये सबको सुख दीजिये।"

यह सुनकर भगवानने अश्वमेध यज्ञ करनेकी आज्ञा दी। स्थान स्थानसे वेदज्ञ ब्राह्मण बुलाये गये। सरयूके तट पर एक विस्तृत मैदानमें यज्ञशालाका निर्माण होने लगा। अश्वशालामें एक उत्तम लक्षणों वाला अश्व चुना गया। उसकी विधिवत् पूजा करके श्रीरामचन्द्रजीने उसे छोड़ा। उसकी रक्षाके लिये शत्रुघ्नजी-को नियुक्त किया तथा भरतजीके पुत्र पुष्कल, हनुमानजी तथा सुग्रीवजीको भी उनके साथ किया। चतुरंगिणी सेनाको साथ लिये हुए शत्रुघ्नजी घोड़ेके पीछे पीछे चले। घोड़ा स्वच्छन्द गति-से जिधर जाता, उधर ही शत्रुघ्नजी सेना सहित उसका अनुगमन करते। वह घोड़ा अङ्ग, वङ्ग कलिङ्ग सौराष्ट्र मगध, पौंड्र, उत्कल गुर्जर पाड्य, द्रविण, महाराष्ट्र मत्स्य, सूरसेन, कुरु जांगल आदि अनेकों देशोंमें भ्रमण करता ब्रह्मावर्त प्रदेशमें आया। स्वेच्छासे विचरण करता हुआ अश्व जब गङ्गातट पर भगवान वाल्मीकि मुनिके आश्रमके समीप पहुँचा तो उसे कुशके छोटे भाई लवने देखा। लव बहुत से ऋषिकुमारोंके साथ वनमें अग्निहोत्रके

लिये समिधा लेनेको आये हुए थे। उन्होंने जब सुंदर घोड़े स्वच्छन्द घूमते देखा तो वे ऋषिकुमारोंसे बोले— 'भाइयो! देखो यह कैसा सुन्दर घोड़ा है। इसके माथे पर यह कैसासुन्दर सुवर्ण पत्र टँगा है। चलो इस घोड़ेको पकड़कर पढ़े। इस पत्रमें क्या लिखा है। तुम लोग डरना मत।"

यह कह कर ऋषिकुमारोंको वहीं छोड़कर लव धनुष बाण धारण किये हुए निर्भय होकर उस घोड़ेके समीप गये। उन्होंने नकरीके बच्चेके समान घोड़ेका कान पकड़ कर उसका सिर झुकाया और सुवर्णपत्र पर स्पष्ट अक्षरोंमें लिखे हुए वाक्योंको पढ़ा। पत्रम लिखा था— यह अयोध्याधिप श्रीरामचन्द्रजीके अश्वमेधका अश्व है। जो सच्चे क्षत्रिय हो वे इस घोड़ेको पकड़ें अन्यथा मेरे सम्मुख मस्तक झुकावें इस बातको पढ़ कर लवकी भृकुटियाँ चढ़ गईं। वे क्रोधसे दाँतोको काटते हुए अपने आप ही कहने लगे— यह ऐसा घमंडी कौन राजा है जो संसारमें अपनेको ही सर्वश्रेष्ठ क्षत्रिय समझता है। क्या हम क्षत्रिय नहीं हैं। क्या हमने अपने गुरुदेव भगवान वाल्मीकिसे दिव्य अस्त्रोंकी शिक्षा प्राप्त नहीं की है। यह राजा तो वस्तु ही क्या है यदि स्वर्गाधिप इन्द्र भी आजाय तो रणमें वह भी हमसे नहीं जीत सकता। मैं इस घोड़ेको पकड़ता हूँ। इसके रक्षक शत्रुघ्न देखें मेरा क्या करते हैं। अयोध्याधिप श्रीरामचन्द्रको भी विदित होजाय कि संसारमें और भी कोई क्षत्रिय है।" यह कह कर लवने उस घोड़े को पकड़ लिया और एकवृक्षमें कस कर बाँध दिया।"

घोड़ेको अपहरण करते देख कर मुनि बालक लवसे कहने लगे— 'अरे, कुमार! तुम ऐसा दुस्साहस क्यों कर रहे हो। तुम्हें पता नहीं यह अयोध्याधिप श्रीरामके अश्वमेधका घोड़ा है।

वे वडे बलवान् हैं। इन्द्र भी उनके घोड़ेको पकड़नेका साहस नहीं कर सकता। तुम बालसुलभ चञ्चलता छोड़ो। अभी घोड़ेको छोड़कर इसके पीछे पीछे आनेवाले रक्षकोंसे क्षमा माँग लो नहीं तो बड़ा अनर्थ हो जायेगा।"

लवने ऋषिकुमारोंको घुड़कते हुए कहा—'चलो हटो तुम लोग डर पोक हो। यह तो भइया, क्षत्रियों ही का काम है। तुम ठहरे ब्राह्मण। ब्राह्मणके तो लड्डू पूड़ी हलुआ चाहिये। सो तुम जाओ आश्रममें जाकर माल उड़ाओ। मैं तो इस घोड़ेको पकड़ूँगा, अवश्य पकड़ूँगा। जो मुझसे लड़ने आवेगा उसे मैं अपने दिव्य अस्त्रोंसे परास्त करूंगा। मुझे भी तो भगवान वाल्मीकिने धनुर्वेदकी शिक्षा दी है। मै युद्धके अवसरको कैसे जाने दूँ।' लवकी बात सुनकर ऋषिकुमार चुप होगये। इतनेमें ही अश्वके रक्षक सैनिक आगये। ऋषियोंके बालक चुप चाप एक ओर खड़े होगये। उनके मनमें कुतूहल होरहा था, कि देखें अब क्या होता है।

उसी समय सैनिकोंने गरज कर कहा—"किसके सिर पर मौत नाच रही है, कौन विना मृत्युके मरना चाहता है, श्रीराम-चन्द्रजीके यज्ञीय अश्वको किसने बाँध रखा है?'

यह सुनकर लवने क्रोध करके कहा— हमने घोड़ेको पकड़ा है। राम हों या शत्रुघ्न हम किसीको तृणके समान भी नहीं समझते क्या संसारमें एक रामचन्द्रजी ही क्षत्रिय है क्या शत्रुघ्न ही लड़ना जानते हैं। यदि उनमें शक्ति हो तो हमसे लड़कर अश्वको छुड़ा लेजायँ।'

छोटेसे बच्चेके मुखसे ऐसी वीरता पूर्ण बातें सुनकर सभी सैनिक हँसने लगे। वे आपसमें कहने लगे– देखो इसे ही छोटे-मुँह बड़ी बात कहते हैं" यह बालक है तो ऋषि आश्रममें किन्तु कोई क्षत्रिय जानपड़ता है। एक वृद्ध सा सैनिक बोला— 'बालक क्या है साक्षात् वीर रस प्रतीत होता है। इसकी आकृति प्रकृति सब श्री रामचन्द्रजीकी सी ही दिखाई देती है। ऐसे ही कमल दलों के समान सुहावने लोचन हैं। वैसा ही वृषभ के समान स्कन्ध हैं। कैसी विशाल छाती है धनुष बाण लिये यह साक्षात इन्द्रपुत्र जयन्तके समान प्रतीत होता है। बालक ही जो ठहरा, बालकोंमें स्वाभाविक ही चंचलता होती है। इसी बालसुलभ चांचल्यसे इसने अश्वको पकड़ कर बाँध लिया है। इसकी बातोंपर ध्यान मत दो। घोड़ेको खोलकर चल दो बालकोंके तो सभी अपराध क्षमा ही कर दिये जाते हैं।"

वृद्धकी बात सुनकर बहुतसे वीर वृक्षमें बँधे उस वाजिको विमुक्त करनेका उद्योग करने लगे। लवने जब देखा, ये सैनिक तो मेरा तिरस्कार करके घोड़ेको लेजाना चाहते हैं, तब तो वे लाल लाल आँखें निकाल कर धनुष पर क्षुरप्रनामक वाण चढ़ा कर, क्रोधमें भर कर बोले—"सेवको सावधान ! सैनिको साहस मत करो। जो मेरे अश्वको छूएगा उसके मैं हाथ काट दूँगा।"

सैनिकोंने लवकी बात पर ध्यान ही नहीं दिया। हंसकर टाल दिया और वे घोड़ेको खोलने लगे। अब तो लव से नहीं रहा गया। उन्होंने क्षुरप्रों वाणों द्वारा सब सैनिकों के बात की बात में हाथ काट दिये। हाथों के कट जाने से वे सब योद्धा रोते चिल्लाते शत्रुघ्न जी के समीप गये और बोले प्रभो! एक छोटेसे बालक ने घोड़ेको पकड़ लिया है, जब हम घोड़ेको खोलने चले, तो उसने हमारी यह दशा कर दी। प्रभो! या तो वह साक्षात् वीररस है

या यज्ञमें विघ्न करने इन्द्र ही बालक का वेष बनाकर आया हुआ है। सौन्दर्यमें यह श्रीरामके समान है। बल पराक्रममें उसकी समानता किसीसेकी ही नहीं जासकती। आप शीघ्रही कोई प्रबन्ध करें अथवा स्वयही लडने जायँ। यह बालक उपेक्षणीय नहीं है।"

यह सुनकर शत्रुघ्नजी चिन्तामें पड़ गये। एक बालकमें इतना साहस कैसे हो सकता है। सम्भव है इन्द्रही हो' किन्तु इन्द्रका भी श्रीरामके घोड़ेको पकडनेका साहस नहीं। जो भी कोई हो मैं अपने विश्वविजयी सेनापति वीरवर कालजित्को उस बालकको पकड़नेकेलिये भेज रहा हूँ।"

सेना सहित सेनापति कालजित्ने देखा बालक अविचल भावसे धनुष पर बाण चढ़ाये खड़ा है और सैनिकोंके आगमनकी बाट जोह रहा है। उसे युद्धके लिये उद्यत देखकर सेनापति कालजित्ने कहा—' बच्चे! तुम कौन हो? देखनेमें तो तुम बड़े वीर प्रतीत होते हो। तुम्हारी आकृति तो हमारे महाराजके समान है, किन्तु तुममें बुद्धि नहीं। कैसे भी वीरपुत्र क्यों न हो, वह बालक पनेकी चचलता कहाँ जाय। श्रीरामचन्द्रजीके अश्वको पकड़कर तुमने लड़कपन ही किया है। तिसपर भी दूसरा यह अपराध कि सैनिकोंके हाथ काट लिये है। अस्तु कोई बात नहीं। बालक जानकर मैं तुम्हे क्षमा किये देता हूँ। तुम घोड़ेको छोड़ दो और शीघ्रही भाग जाओ। यदि हमारे स्वामी शत्रुघ्न आगये तो तुम्हे पकडकर अयोध्यापुरी लेजायँगे। मैं उनका प्रधान सेनापति कालजित् हूँ।"

यह सुनकर सूखी हँसी हँसते हुए दृढ़ताके स्वरमें लव बोले—"सुनिये सेनापति महोदय मेरी बात! वीरोंकी अवस्था नहीं देखी जाती। उनमें तो वीरताकी ही प्रधानता है। तुम्हारे स्वामी शत्रुघ्नको मैं तृणके समान भी नहीं समझता। तुम्हारा नाम काल-

जित् है, तो मेरा नाम लव है। तुम्हारा काल तो मैं सम्मुख खड़ा हूँ। मुझे यदि तुमनेजीत लिया, तब तो तुम्हारा कालजित् नाम यथार्थ है। यदि मुझे न जीत पाये तो तुम्हारा नाम व्यर्थ ही है। मैं यदि लवमें तुम्हें न जीतलू तो लव नहीं। आजाओ हमारे तुमारे दो दो हाथ होजायँ।'

बच्चेकी ऐसी साहस पूर्ण बातें सुनकर कालजित् सहम गया। बात टालते हुये उसने कहा— तुम किस कुलके हो, क्या तुम्हारा गोत्र है? तुम्हारे पिताका नाम क्या है। तुम मरना क्यों चाहते हो? क्यों इतनी बड़ी सेनासे समर करनेका साहस कर रहे हो?"

लवने कहा— तुम्हें मेरे कुल गोत्रसे क्या लेना। मुझे विवाह तो करना नहीं जो अपने कुल गोत्रका परिचय दूँ। मुझे तो युद्ध करना है। युद्धमें वीरता ही वीरका प्रत्यक्ष परिचय करा देती है।"

कालजित्ने कहा—"भाई! हमारा तुम्हारा युद्ध उपयुक्त नहीं। तुम पैदल हो मैं रथ पर हूँ।"

उपेक्षाके स्वरमें लवने कहा—"कोई बात नहीं क्षणभरमें मैं तुम्हारे रथको छिन्न भिन्न किये देता हूँ। फिर हम तुम दोनों ही पैदल होजायँगे। मैं पृथिवी पर खड़ा रहूँगा, तुम धराशायी हो जाओगे। अच्छी बात है सम्हलो। देखो यह बाण आया।" यह कहकर लवने एक तीखा बाण कालजित्के ऊपर छोड़ही तो दिया। बाण आकर कालजित्की कनपुटी पर लगा। उसके लगते ही वह व्याकुल होगया। उसे बड़ा क्रोध आया। क्रोधमें भर कर वह भी लवको लक्ष्य करके लक्षों बाण छोड़ने लगा। लवका तूणीर तो अक्षय था। वह भगवान् वाल्मीकिका दिया हुआ था।

उसके बाण कभी चुकतेही न थे। लव बाणोंकी वर्षा करके सैनिकों को आहत करने लगे। उन्होने क्षण भरमें कालजित्के रथको तोड दिया। अब तो कालजित् घबडाया उसने तुरन्त एक बडा मद मत्त हाथी मगाया। हाथी पर चढकर वह युद्ध करने लगा। लवने देखा यह तो बहुत ऊचा होगया। इसलिये दौडकर उन्होंने अपनी तलवारसे हाथीकी सूड काट दी। सूँडके कटनेसे हाथी चिग्घाड मार कर भागने लगा। लवने उसके बड बडे दातोको कसकर पकड लिये और अत्यन्तही लाघवसे बड कौशलके साथ दातो पर पैर रख कर वे हाथीके ऊपर चढ गये। वहा मूर्छित पड कालजित्के मुकुटको उन्होने तोड दिया और बडोमेसे धरतीपर फेंक दिया। पृथवीमे गिरतेही वह सज्ञाशून्य हो गया। सभी सैनिक भागने लगे। अब लव हाथीसे नीचे उतर कर अन्य सैनिकोंका सहार करने लगे। इतनेमही कालजित् पुन खडा होगया और वह युद्ध-के लिये उद्यत हुआ। कालजित्को युद्धके लिये उद्यत देखकर लव उसके समीप आये और दो बाण मार कर उसे प्राण शून्य बना दिया। सेनापतिके मरतेही सम्पूर्ण सेनामें भगदड मच गई। वे सब दौडकर शत्रुघ्नजीके समीप आये और कालजित्की मृत्यु का समाचार सुनाया।

कालजित्का मरण सुनकर शत्रुसूदन शत्रुघ्नको परम विस्मय हुआ। वे निर्णय न कर सके कि यह बालक कौन है। अबके उन्होंने भरतपुत्र पुष्कलको हनुमानजीके सहित बलकसे लडने भेजा। पुष्कलजीने देखा वालक बडा ही अवस्थाका है, बडा तेजस्वी और सुन्दर है। उनको स्वाभाविक ही बालकके प्रति आकर्षण हुआ। उनके मनमें बार बार यह बात आती, कि दौड कर इसके चरण चूमलू। किन्तु जो शत्रुरूपमे युद्ध करने सम्मुख

खडा है उसके सम्मुख सिर झुकाना क्षत्रियके लिये कायरता है। यही सोचकर वे बोले—'वीर वर ! मेरा नाम पुष्कल है मैं महाराजा श्रीरामचन्द्रजीके अनुज भरतजीका पुत्र हूँ । आपसे युद्ध करने आया हूँ, किन्तु आप भूमि पर खडे हैं, मैं रथमें बैठा हूँ, इस प्रकार युद्ध शोभा नहीं देता। मैं आपको एक सुन्दर सुसज्जित रथ देता हूँ। उसपर बैठकर आप मुझसे युद्ध करें।"

यह सुनकर लव बोले—'पुष्कल ! देखो, हम क्षत्रिय हैं। हम दान किया करते हैं। लेते नहीं शत्रुके दिये रथपर चढकर युद्ध करना वीरको शोभा नहा देता । तुम चिन्ता मत करो। क्षण भरमें तुम्हें भी मैं रथ हीन किये देता हूँ । सम्हलो।" यह कह कर लवने पुष्कल पर बाण छोडे । पुष्कल बडीदेर तक वीरता पूर्वक युद्ध करते रहे किन्तु वे लवके प्रहारोंको सहन न कर सके। कुछही कालमें हृदयमें बाण लगनसे वे मूर्छित होकर भूमिमे गिर पडे। हनुमान्जी उन्हें तुरन्त उठा कर शत्रुघ्नजीके समीप लेगये।

पुष्कलको भी मूर्छित देख कर शत्रुघ्नजीके आश्चर्यकी सीमा न रही। उन्होने सोचा—'बालक रूपमें कहीं कालही तो नहीं आगया है। ये बली हनुमान् तो कालको भी जीतने वाले हैं। अत वे पवन तनय से बोले— अंजनीनन्दवर्द्धन हनुमानजी ! आप उस बच्चे पर दया न करें। वह तो बडा भयानक प्रतीत होता है। आप उसे अपनी गदासे मार डालें।"

शत्रुघ्नजीकी आज्ञा पाकर हनुमान्जी बडे वेगसे उछलते कूदते किल किल शब्द करते हुए लवके समीप गये। जातही उन्होने पर्वतके शिखरोंसे बडे २ वृक्षोंसे लव पर प्रहार करना आरम्भ किया। वे ऊंचे ऊँचे फल फूल वृक्षोंको जडसे उखाडते

और लवके सिरमें दे मारते। लव भी उन्हें लव मात्रमें अपने दिव्य बाणोंसे काट कर गिरा देते। इस प्रकार बहुत देर तक भीषण युद्ध होता रहा। अन्तमें हनुमान्‌जी भी उसके दुस्सह प्रहारोंको न सह सकनेके कारण मूर्छित होकर भूमि पर गिर गये।

शत्रुघ्नजीने जब पवन तनयके मूर्छित होनेका वृत्तान्त सुना, तो उनका धैर्य छूट गया। वे तुरन्त ही अस्त्र शस्त्रोंसे सुसज्जित होकर समर भूमिमें आये। उन्होंने देखा सिंह शावकके समान सैनिक वेषमें वीर वर लव खड़े हैं और सेनाके आनेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं तो शत्रुघ्नजीको परम विस्मय हुआ। बच्चेको देखकर वे समझ गये यह श्रीरामचन्द्रजीका ही पुत्र है। जिस समय मैं लवणको मारने जारहा था, उस समय भगवती सीताने दो पुत्रों को प्रसव किया था। अब तक उनको इतना बड़ा होजाना चाहिये। इसकी आकृति, प्रकृति चलन चितवन सब श्रीरामचन्द्रजीके ही समान हैं किन्तु यह तो अकेला ही है। शत्रु बनकर समरमें सम्मुख खड़ा है। इस पर दया कैसे की जा सकती है। चाहे अपना पिता सगा पिता ही क्यों न हो क्षत्रिय युद्धमें उसके सम्मुख भी सिर नहीं झुकाता। पिता पुत्रके साथ भाई भाईके साथ युद्ध करता है। यही सब सोचकर वे बड़े स्नेहसे बोले— वीर वर ! तुम कौन हो ? किस वंशमें तुम्हारा जन्म हुआ है। तुम्हारे माता पिताको धन्य है जिन्हें तुम्हारे जैसा पुत्र प्राप्त हुआ। तुम सचमुचमें सौभाग्यशाली हो जो समरमें विजय श्रीने तुम्हारा वरण किया। किन्तु मेरा नाम शत्रुघ्न है मेरे सम्मुख तुम विजयी नहीं होसकते।'

लवने गंभीरतासे कहा— राजन ! व्यर्थ बकवाद करनेसे

गया। महामुनि वाल्मीकिकी विद्या और आशीर्वादके प्रभावसे वह लवके प्राणोंको तो न ले सका किन्तु उससे वे मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर गये। लवको मूर्छित देख कर शत्रुघ्नजी परम प्रसन्न हुए। उन्होंने शीघ्रता पूर्वक रथसे उतर कर लवको उठा लिया और रथमें बाँध दिया।"

मुनि बालक जो समीपमें खड़े खड़े युद्ध देख रहे थे। लवको बँधा देख कर वे दौड़ते हुए आश्रममें गये। भगवान वाल्मीकि उस समय आश्रममें थे नहीं। वे गङ्गाजीकी किसी निभृत निकुञ्जमें ध्यान मग्न थे। बालकोंने शीघ्रता पूर्वक जानकीजीके समीप जाकर हाँफते हुए कहना आरम्भ किया—"माँ! माँ! देखो, तुम्हारे पुत्र लवको एक राजाने बाँध लिया।"

चकित चकित दृष्टिसे जानकी ऋषिकुमारोंकी ओर देखती हुई बोली—"भैया! लवने उस राजाका क्या बिगाड़ा था।

बच्चाने अपनी जानकारी दिखाते हुए कहा—"सीता माता! यह कोई बहुत बड़ा राजा है। उसके संग बहुत बड़ी सेना है। बहुतसे घोड़े हैं बड़े बड़े पहाड़से हाथी हैं। रथोंकी तो लगार बँधी हुई है। उसका मान सम्मान भी बहुत है उसीके घोड़ेको तुम्हारे पुत्र लवने पकड़ लिया। फिर बहुतसे लोग उससे लड़ने आये। लवने वीरता पूर्वक उन सबका सामना किया बहुतोंको मार गिराया। फिर यह राजा आया। राजाको भी घायल कर दिया। फिर उसने उठकर एक बाण मार कर लवको मूर्छित करके अपने रथमें बाँध लिया। भगवान वाल्मीकि भी आश्रममें नहीं है।"

सुनकर सती माता परम दुखित हुई। वे रोती हुई कहने लगी—'हाय! यह कैसा निर्दयी राजा है जिसने मेरे फूल जैसे बच्चे को बाँध लिया। बच्चा पर इतना क्रोध करना चाहिये! मेरा पुत्र कुश भी यहाँ नहीं है। नहीं तो वही अपने छोटे भाई लव को छुड़ा लाता।"

माता इस प्रकार रुदन कर ही रही थी कि उसी समय कुश भी कहीं से आगए अपनी जननी को रोते देख कर कुश को अत्यंत ही दुःख हुआ। उन्होंने माता को प्रणाम करके पूछा— माँ तुम इतनी अधीर क्यों हो तुम अपने दुःख का कारण मुझे बताओ। जननी! मैं सब कुछ देख सकता हूँ किन्तु तुम्हें दुखित नहीं देख सकता। अम्मा! किसने तुम्हारे हृदय को पीड़ा पहुँचाई है!

कुश की बात सुनकर सीता माता ने कहा—'बेटा तुम्हारे छोटे भाई लव को किसी राजा ने बाँध रखा है। तुम शीघ्र ही जाकर उस राजा से अपने भाई की रक्षा करो।"

इतना सुनते ही कुश का क्रोध सीमा को पार कर गया। वे अपनी माता को धैर्य बँधाते हुए बोले—"जननी! तुम चिंता मत करो। मैं अभी जाता हूँ। उस राजा को उसके किय का फल चखाता हूँ अपने भाई लव को उसके बन्धन से छुड़ाता हूँ और भाई के सहित शीघ्र ही तुम्हारी सेवा में लौट कर आता हूँ।"

इतना कहकर कुश अपना धनुष बाण तथा अक्षयतूणीर लेकर क्रुद्ध सिंह की भाँति कुपित हुए ऋषि पुत्रों के बताये मार्ग से समर भूमी में गये। वहाँ उन्होंने सहस्रों सैनिकों को धराशायी देखा। किसी के हाथ कट गये थे, किसी के सिर फट गये थे। किसी के सिर धड़ से पृथक् हो गये थे, कोई मर गये थे। कोई अधमरी पृथवी पर पड़े पड़े बिल बिला रहे थे। कुमार लव शत्रुघ्न जी के रथ में बँधे हुए थे। जिस समय कुश समरभूमि में पहुँचे उसी समय लव की मूर्छा दूर हुई। अपने को शत्रुघ्न के रथपर बँधा देखकर तथा युद्ध भूमिमें अपने बड़े भाई कुश को देख कर लव के क्रोध और उत्साह का ठिकाना नहीं रहा। वे बन्धनों को बल पूर्वक काट कर तुरन्त रथ से नीचे कूद पड़े और अपने बड़े भाई के चरणों में आकर पड़ गये। कुश ने अपने छोटे भाई लव को उठा कर छाती से लगाया। वे दोनों एक से ही प्रतीत होते थे। शत्रुघ्न जी दोनों को देख कर समझ गये, अवश्य ही ये श्री राम चन्द्र जी के पुत्र हैं। बिना भगवान् के वीर्य के ऐसा दुर्धर्ष युद्ध और कौन कर सकता है। इन्हें युद्ध में कोई पराजित नहीं कर सकता, ये बड़े ही बुद्धिमान, वीर और उत्साही हैं। ये अपने अमोघ बाणों से किसी भी मुख्य वीर को मारते नहीं। मूर्छित करके छोड़ देते हैं। इनके साथ युद्ध करने में मुझे बड़ा सुख मिलता है। इनकी रणचातुरी को देख कर मेरे रोम रोम खिल जाते हैं। मैं इन दोनों से युद्ध अवश्य करूँगा।

क्षत्रिय युद्ध से किसी भी दशामें पराङ्मुख नहीं होता ।" यह सोच कर शत्रुघ्न जी उन दोनों भाइयों से समर करने लगे। इन दोनों वीरों ने शत्रुघ्न की सम्पूर्ण सेना के छक्के छुड़ा दिये जितने मुख्य मुख्य वीर थे सभी को बाण मारकर मूर्छित कर दिया। शत्रुघ्न पुष्कल सुग्रीव हनुमान सुषेण तथा अन्यान्य वीराग्रगणियों को अचेतन बनाकर पृथिवी पर सुला दिया। मोहनास्त्र छोड़कर सभी को माहित कर दिया।

जब सभी मूर्छित हो गये तो लव ने बड़ा उत्सुकता से कहा भैया देखो! माता जी को दिखाने के लिये कुछ चिन्ह तो लेतेचलें कुश ने लव की बात का अनुमोदन किया। बाल सिंह के भाँति उछलते कूदते दोनों भाई प्रथम शत्रुघ्न जीके समाप गये। उन के मुकुट का बहुमूल्य मणि उन्होंने निकाल ली।

लव ने कहा— भैया! इस भरतपुत्र पुष्कल का किरीट बड़ा सुंदर है। मेरे नाप का ही है। इसे मैं लिये लेता हूँ।"यह कह कर मूर्छित पुष्कल का किरीट लव ने लेलिया। फिर उन्हें जो भी आभूषण तथा शस्त्र सुंदर लगे उन को भी आपने अधिकार मे कर लिया। सम्मुख उन्होंने सुग्रीव और हनुमान् को मूर्छित देखा और कहने लगे—'ये दो वानर बड़े सुन्दर हैं। इन्हें आश्रम को पकड़ ले चलें। मुनि बालक इन्हें पाकर परम प्रसन्न होंगे। इनकी पूछ को खींच खींच कर वे खेला करेंगे। इस प्रकार कहकर उन दोनों ने सुग्रीव और हनुमान को बाँध कर घोड़े का पूछ में लटका दिया। फिर घोड़े को लेकर दोनों भाई आश्रम की ओर चल दिये। आश्रम में पहुँच कर इन्हों ने सब प्रथम अपनी माता भगवती सीता के पदपद्मो में प्रणाम किया।

और अत्यन्त ही उल्लास के साथ कहने लगे—माँ माँ। हम उस राजा को हरालाये। और उस का घोड़ा छीन लाये। अम्मा! तुम घोड़े को देखो कैसा अच्छा! ऐसा ही एक और मिल जाय तो हम दोनों भाई उस पर चढ़ा करेंगे। और मैया! हम दो बंदर भी पकड़ कर लाये हैं। वे बड़े अच्छे हैं उनसे हम खूब खेला करेंगे। और शस्त्र भी उस राजा के सैनिकों से छीन कर लाये हैं। अम्मा! तुम घोड़े को चलकर देखो। मुझे तो वहीं अच्छा लगता है। उसके भालपर एक सुवर्ण का पट्टा है। उसपर लिखा है अयोध्या का कोई रामचन्द्र नामक राजा है उसी के अश्वमेध का यह घोड़ा है। उसका कोई भाई शत्रुघ्न है वही उसको रक्षा मे था। हम उसे मूर्छित करके घोड़े को छीन लाये अम्मा! हमने अच्छा काम किया न ?"

यह सुनकर जानकी जी की आँखों मे आँसू आ गये और पुत्रों को डाँटती हुई बोलीं—'हाय! तुम लोगों ने यह क्या अनर्थ कर डाला। जिनका तुम नामले रहे हो, वेहा तो तुम्हारे पिता हैं शत्रुघ्न तुम्हारे सब से छोटे चाचा है। यह तुमने अच्छा काम नहा किया। बन्दर कोन हैं मुझे शीघ्र ही उन्हें दिखाओ।"

यह सुनकर बच्चे सहम गये वे अपनी माता को लेकर बाहर आये। सुग्रीव और हनुमान् जी घोड़े की पूँछ से बँधे हुए थे। भूमि मे घिड़रने के कारण उनका शरीर छिल गया था। यह देखकर माता शीघ्रता से बोलीं—'तुम दोनों बड़े चचल हो। अरे, पागलो! तुम इन दोनों को जानते नहीं। ये दोनों विश्वविजयी वीर हैं। ये बड़े वानर राज सुग्रीव हैं। दूसरे पवन तनय हनुमान् हैं जिनका यश तुम नित्य ही रामायण मे गाया करते हो। इनके मेरे ऊपर बड़े बड़े उपकार हैं। इनके सामुख तो मैं सिर भी ऊँचा नहीं कर सकती।

तुम इन्हें साधारण वानरों की भाँति बाँध लाये हो। छिः छिः तुम ने यह बड़ा बुरा काम किया। छोड़ो छोड़ो इन्हें तुरन्त खोल दो।

यह कहकर जगदम्बा जानकी सूर्य नारायण की ओर देखकर बोलीं—"हे चराचर जगत् के साक्षी! सूर्य देव! यदि मैं मनसा वाचा कर्मणा श्री राम चन्द्र जी की ही अनुगामिनी होऊँ

मैंने मन से भी कभी परपुरुष का चिंतन न किया हो, तो शत्रु की समस्त सेना के मूर्छित और मृतक व्यक्ति जीवित हो जायँ।"

माता जी का इतना सोचना था कि सेना में सब सैनिक निद्रा पुरुषों की भाँति सोते से उठ खड़े हो गये। जिनके अंग कट गये थे, वे पुनः उनमें जुड़ गये। हनुमान जाम्बवान सुग्रीव जी भी मूर्छा भंग होने से उठकर खड़े हो गये। हाथ जोड़ कर उन्होंने सम्मुख खड़ी सीतामाता को प्रणाम किया।

माता जी ने कहा—"देखो भैया! इन बालकों की चंचलता पर तुम लोग ध्यान न देना। बड़ी प्रसन्नता की बात है, कि यहाँ वन में भी मैं तुम दोनों को कुशल पूर्वक देख रही हूँ और कल भैया, मैं तो परित्यक्ता हूँ। मेरे स्वामी ने ही मुझे छोड़रखा है। जिसमें उन्हें प्रसन्नता हो उसी में मुझे प्रसन्नता है। हनुमान् तुम मुझे लंका से छुड़ाकर क्यों लाये वहाँ मर जाते तो। फिर ये दुख तो न देखने पड़ता। अब भैया मैं मर भी नहीं सकती। इस वन में भगवान् वाल्मीकि की कृपा के सहारे ही मैं अपने दिन काट रही हूँ। इन नन्हे नन्हे बच्चों का मुख देखकर ही जी रही हूँ। यही सोचती हूँ मेरे बिना ये तड़फेंगे। नहीं तो अब तक मैं कब की मर गई होती।"

सीता जी को इस प्रकार दुखित देख कर सुग्रीव और हनुमान् रोने लगे। हनुमान् बोले —"माता जी! यह सब भाग्य की विडम्बना है। आप के हृदय में श्री रामचन्द्र जी सदा निवास करते हैं और राम चन्द्र जी के चित्त में आप सदा यहाँ रहती हैं। आप दोनों में पल भर का भी वियोग नहीं। यह आप लोक को दिखाने के लिये, संसार में करुणा की सरिता बहाने के लिये ऐसी लीलायें कर रही हैं। सौभाग्य की बात है कि आज हम आपको पुत्र वती देख रहे हैं। लव और कुश से पराजित होने पर हम प्रसन्नता ही है। स्वामी से तो सेवक सदा पराजित ही रहता है। ये हमारे स्वामी के स्वरूप हैं, उनकी प्रतिकृति हैं, राम की प्रत्यक्ष आत्मा हैं। ऐसे वीर पुत्रों को प्रसव करके आप यथार्थ में वीर प्रसविनी माता हुई। शीघ्र ही ये हमारे स्वामी होंगे। अब हम आप आज्ञा दें। शत्रुघ्न जी हमारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। वे दिन दूर नहीं जब हम आपको पुनः श्री रामचन्द्र जी के साथ देखेंगे।' यह कहकर दोनों ने माता जानकी की प्रदक्षिणा की और लव कुश के दिये हुए यज्ञीय अश्वको लेकर वे सेना में आये

तब तक शत्रुघ्न जी तथा समस्त सैनिकों की मूर्छा दूर हो चुकी थी। अश्वसहित सुग्रीव और हनुमान को देखकर शत्रुघ्न लज्जित हुए और सकुचाते हुए बोले — ये दोनों बालक बड़े शूर वीर हैं। इन्होंने तो हम सब का पराभव कर दिया। तुमको यह अश्व कैसे मिला?'

इस पर सब वृत्तान्त सुनते हुए सुग्रीव बोले— राजन्! इस में लज्जा की कोई बात नहीं। इन बालकों में ऐसा बल होना ही चाहिये। क्यों कि ये भगवान् श्री रामचन्द्र के वीर्य से

सीता माता के उदर से उत्पन्न हुए है ये हमारे स्वामी हैं। स्वामी से तो सेवक सदा हारा ही हुआ होता है।"

यह सुनकर शत्रुघ्न जी मन ही मन बड़े प्रसन्न हुए। वे फिर आश्रम में नहीं गये। वहीं से यज्ञ के घोड़े को लेकर अयोध्या पुरी को लौट आये। घोड़े को सकुशल लौटा देखकर श्री राम चन्द्र जी परम प्रसन्न हुए। उन्होंने विधिवत यज्ञ को पूर्ण किया। ब्राह्मणों और याचकों को मन माने दान दिये। विशाल यज्ञ अत्यंत ही धूमधाम के साथ समाप्त हुआ। यज्ञ की समाप्ति पर सबने अवभृथस्नान किया और सब अपने अपने घर लौट गये।

भगवान् का कोई शत्रु राजा तो रह ही नहीं गया था। सभी उनके अधीन थे। युद्ध का अवसर ही नहीं आता था। सीता जी के वियोग के कारण श्री राम चन्द्र जी के दिन कटते ही नहीं थे। उन्हें पल पल काटना भारी हो जाता। सीता जी के प्रेम को वे प्रयत्न करने पर भी न भुला सके जितना ही वे भुलाने का प्रयत्न करते उतना ही उनका अधिक स्मरण होता (अयोध्या के वे समस्त महल सीता जी की स्मृति दिलाते। इस भावना में पहिले ही पहिले विवाह के उपरान्त विदेह कुमारी मिली थी। यहाँ उसके साथ ऐसी तेसी बातें हुई थी। इन सब प्रसंगों को याद करके श्री राम चन्द्र जी। अत्यंतही दुखित होते। उन्होंने सोचा कुछ दिन अयोध्या छोड़कर अन्यत्र रहें।"नैमिषारण्य पुण्य भूमि है. वहाँ ८८ हजार मुनि निरन्तर तपस्या करते रहते हैं और सहस्रों मुनि सदा आते जाते रहते हैं। वह यज्ञ का प्रधान थल है। वहाँ चलकर अश्वमेध यज्ञ करें। इससे मन भी

बहलता रहेगा। समय भी कट जायगा।" यह सोचकर भगवान् ने नैमिषारण्य म अश्वमेध यज्ञ करने की आज्ञा देदी। अब क्या था वहाँ गोमती नदी क तट पर यज्ञ की धूम धाम के साथ तैयारियाँ होने लगीं। सेवकों ने पहिले जाकर १० योजन लम्बी चौडी भूमी यज्ञ के लिये एक सी की। गड्ढों का भरा, ऊँची भूमि को काट कर समतल किया। जब भूमि एक सी होगई तो वहाँ हजारों लाखों फूँस की कुटियाँ बनाई गई। बहुत सुन्दर सुन्दर डेरे तम्बू लगागये। उनके चारो ओर कनाते लगाकर उनकी परिधि बनाई गई। देश देश के राजा महाराजा ऋ को निमन्त्रण भेजे गये। अयोध्या जी से अन्नादि सब सामग्री गाडी घोड़ा ऊँट तथा बैलो से लाद कर भेजी जाने लगी लाख बलो मे सुन्दर वासमती चावल भरकर चले लाख बोरे गेहूँ दस हजार बोरे जौ चावल तिल लेकर घोडे खच्चर बैल चले। बडे बडे कुप्पे में धनभर कर लाखो ऊँटो पर लद कर चले। इसी प्रकार मूँग उडद अरहर, नमक, मिर्च, धनिया जीरा राई हलदी खटाइ मैथी, हींग काली मिरच सोंठ, अजमोद तेजपात जावित्री छोटी बडी इलायची, पीपल सोंफ आदि मसाले बोरों में भरकर चले। गुड, शकर चीनी बूरा, खांड मिश्री आदि गुड के बने पदार्थ लाखों बोरो मे भरकर गाड़ियों में लद कर चले। सुवर्णकी अशर्फी मुहर, सोना चाँदी मोती मूँगा मणि माणिक आदि सुन्दर रेशमी थैलियों में भरकर लोहे की गाडियों म लद कर सैनिकों की रेख देख में चले। यज्ञ के उपयोगी सभी सामग्री विपुल मात्रा में भेजी जाने लगी। पक्के कुए बनाकर उनमें घृत भरा जाने लगा। उन पर लोहे के ढक्कन लगे थे। बडे बडे काठ के गाठे पर लाकर उनमे दही दूध भरा गया। उनमें काठ के पनाले लगे

हुए थे। उनके नीचे पात्र रख दो स्वतः ही भर जायँ, चावल डाल दो स्वयं खीर तयार होजाय। सहस्रों भोजनालय बनाये गये। सभी लोगों को यज्ञ के लिये निमंत्रित किया गया। यज्ञ कराने वाले ऋषि मुनियों को निमंत्रण भेजा गया। जो जीविकार्थ पर देश चले गये थे, ऐसे लोगों को भी समाचार भेज कर बुलायागया। सपत्नीक ब्राह्मणों को आह्वान किया। बाजा बजाकर जीविका चलाने वालो को खेले दिखाने वाले नटनर्तकों को स्तुति करने वाले सूत मागध वन्दियों को, नाटक करने वाली मडलियों को गीत गाने वाले गाय कों को, मल्लों और योद्धाओं को, कथा वाचक और उपदेश कों को नामकीर्तन और ढक कीतन करने वाले कीर्तन कारों को तथा अन्यान्य मनोरंजन करने वाले भड तथा बहुरू पयों को बुलाया गया। यज्ञ का समाचार सुन कर दूर दूर से ऋषि मुनि ब्राह्मण, अभ्यागत, याचक तथा सभी वर्ण के लोग नैमिषारण्य की ओर जाने लगे।

भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न जी की स्त्रियाँ भी पालकियों मे बैठकर चलीं सुवर्णमयी सीता भी सजाकर सत्कार पूर्वक लेजाई गई। ब्राह्मण गण यज्ञ की सामग्री तथा पूजन की सामग्री सम्हलवा कर ले जानेलगे। धूप, कपूर, चन्दन, गुग्गुल, खस, नागर मोथा, छार, छबीला केशर कस्तूरी आदि बोरे के बोरे ब्राह्मणों के साथ गाडियों पर भेजे गये। सुवर्ण चाँदी, ताँबा, काँसा, लोहा, लकडी तथा मिट्टी के छोटे बड़े सहस्रों बर्तन ऊँटों और खचरों पर लद कर चले। रेशमी सूती ऊनी सहस्रों थान थान कपडे यज्ञ सम्बन्धी कार्यों के लिये भेजे गये। साराश यह है कि उपयोगी सभी सामग्रियाँ जो वहाँ भेजी जा सकती थीं,

गद वाहनों पर भेजी गई। जो नित्य म गानी की वस्तु थी जैसे दूध, दही फल फूल माला साक भाजी कुशा समिधा तुलसी, विल्वपत्र।

पञ्चगव्य आदि का प्रबन्ध नहीं किया गया। पंक्ति बद्ध शिविर बनाये गये। व्यापारियोंको दुकानें अलग बसाई गईं। आगत राजाओं के आवासस्थान अलगबनाये गये उन सब में भोजन की सामग्री जल तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं का पृथक् पृथक् प्रबन्ध था। प्रकाश का प्रबन्ध अति उत्तम था। रात्रि में दिन सा प्रतीत होता था। सफाई और स्वच्छता का वहाँ अत्यधिक ध्यान रखा जाता था। अयोध्या जी से बहुत से झाड़ू लगाने वाले सफाई करने वाले यहाँ आये थे। थोड़े ही दिनों में नैमिषारण्य में अयोध्या के ही समान पुरी बस गई। चाहें जो आवश्यक वस्तु ले लो जीव-नोपयोगी किसी वस्तु का वहाँ अभाव नहीं था। वशिष्ठ, वामदेव जावालि तथा कश्यप आदि बड़े बड़े ऋषि महर्षि जो अश्वमेधादि यज्ञों के विशेषज्ञ माने जाते थे, जिन्होंने बड़े बड़े राजाओं के अनेकों अश्वमेधादि यज्ञ कराये हैं, उन्होंने विधिवत् यज्ञ मंडप आदि की रचना की। शुभलक्षणों वाला परम सुंदर अश्व छोड़ा गया। अब के लक्ष्मण जी उसके रक्षक बनकर गये। घोड़ा छोड़ कर श्री राम जी नैमिषारण्य में आकर निवास करने लगे। यज्ञ सम्बन्धी और कार्य होते रहे। श्री राम चन्द्र जी बड़े बड़े गायकों क सभामें बैठ कर गान सुनते, शास्त्र चर्चा होती, कथा वाचक आ आकर पुरानी कथायें कहते। इस प्रकार यज्ञ का कार्य बड़ी धूमधाम से होने लगा। उस यज्ञ में कोई ऐसा नहीं था, जिसका श्री राम चन्द्र जी के सेवकों ने सत्कार न किया हो।

सुग्रीव, हनुमान्, विभीषण भरत, शत्रुघ्न तथा अन्यान्य राज महाराजे स्वयं अपने हाथों में सभा का सेवा करते थे। श्री रामचन्द्र जी की आज्ञा थी, जो भी आकर जिस वस्तु की याचना करे, उसे उस वस्तु को तत्काल दो। यथेष्ट परिणाम में दो जब तक वह नहीं न करे, तब तक देते ही रहो। कोई हमारे यहाँ विमुख होकर न जाय।"

भगवान् के सेवक ऐसा ही करते थे। वे निरंतर कहते रहते थे—'जिसे जिस वस्तु की आवश्यकता हो, कहदो। जिसे जो लेना हो ले जाओ जिसे जो खाना हो यहाँ खाओ कच्ची, पक्की, फलाहारी जैसी रसोई रुचि कर हो वैसी पाओ। जिसे सूखी सीधा सामग्री चाहिये वह सेवकों से जितना चाहो उठवा लेजाओ। साराश यह कि यह कोई भी

भारी प्रशंसा सुन कर भगवान् वाल्मीकि जी अपने शिष्य शिष्य तथा साथी साधुओं के सहित यज्ञ देखने के लिये पधारे। उनके साथ छः कड़े थे, जिनमें अग्नि होत्र की अग्नियाँ तथा आवश्यक सामग्री थी। महामुनि वाल्मीकि के साथ उनके दोनों प्रिय शिष्य कुश और लव भी थे। उन दोनों को मुनि ने समस्त रामायणकाव्य संगीत सहित याद करा दिया था। वे ताल, मूर्छना, लय तथा स्वर के साथ रामायण का गान करने में परम निपुण थे। वह पूरा महाकाव्य उन्हें कंठस्थ था। मुनि एक एकान्त कुटी में आकर चुप चाप उतर गये। सेवकों ने तुरंत उनके रहने का सब प्रबन्ध कर दिया भोजन की समस्त सामग्रियाँ उनके समीप पहुँचा दीं। मुनि ने अग्नि होत्रादि नित्य कर्म किया और रात्रि में यज्ञ की बातें सुनते हुए सुख पूर्वक विश्राम किया।

प्रातः काल नित्य कर्मों से निवृत्त होकर महामुनि वाल्मीकि जी ने अपने दोनों प्रिय शिष्य कुश और लव को बुलाया वे विनयी बालक हाथ जोड़े हुए गुरु के सम्मुख उपस्थित हुए। मुनि ने अत्यंत ही प्यार से कहा—पुत्रो। तुम इस महा यज्ञ में अपना सुंदर काव्य सभी को सुनाओ। यहाँ बड़े बड़े राजे महाराजे तथा प्रतिष्ठित पुरुष आये हुए हैं। संसार के कोने कोने से दशों दिशाओं से राजा महाराजा गुण महित-व्या कलाकार यहाँ एकत्रित हुए हैं। तुम सुन्दर स्वर से ताल और लय के साथ इस महाकाव्य को सुनाओ। जहाँ ब्राह्मण ठहरे हैं, जहाँ बाजार लगा हैं, जहाँपर कारीकर काम करते हैं, जहाँ राजा लोग ठहरे हुए हैं सब स्थानों में जा जा कर मेरे रचे इस महाकाव्य को सुनाना। सुनाने में

सुग्रीव, हनुमान्, विभीषण भरत, शत्रुघ्न तथा अन्यान्य राज महाराजे स्वयं अपने हाथों से सभी की सेवा करते थे। श्री रामचन्द्र जी की आज्ञा थी, जो भी आकर जिस वस्तु की याचना करे, उसे उस वस्तु को तत्काल दो। यथेष्ट परिणाम में दो जब तक वह नहीं न करे, तब तक देते ही रहो। कोई हमारे यहाँ विमुख होकर न जाय।"

भगवान् के सेवक ऐसा ही करते थे। वे निरंतर कहते रहते थे—'जिसे जिस वस्तु की आवश्यकता हो, कहो। जिसे जो लेना हो ले जाओ जिसे जो खाना हो यहाँ खाओ कच्ची, पक्की, फलाहारी जैसी रसोई रुचि कर हो वैसी पाओ। जिसे सूखी सीधा सामग्री चाहिये वह सेवकों से जितना चाहो उठवा लेजाओ। साराश यह कि वह कोई भी किसी वस्तु के अभाव का अनुभव नहीं करता था। कल्प वृक्ष के समान इच्छित पदार्थ श्रीराम के यज्ञ में सब को मिल रहे थे। लाखों वर्षों की आयुवाले ऋषि महर्षि कहते थे' हमने बहुत से यज्ञ देखे हैं, किन्तु अतिथियों का इतना आगत स्वागत इतना सत्कार इतना अधिक दान हमने किसी भी यज्ञ में नहीं देखा सभी अपने को वहाँ एक दिव्य लोक में अवस्थित अनुभव करते थे।

ऋषि मुनियों के लिये ऐसा प्रबन्ध था कि जो भी किसी नये आये हुए ऋषि मुनि को देखता। वहीं उनके सत्कार के लिये दौड पडता है। स्वागताध्यक्ष को पता भी न चलता तब तक उनके ठहरने, खाने पीने का सभी प्रबन्ध होजाता मुनियों के रहने की कुटियाँ एकान्त मे बनाई गई थीं। उन में तपस्वियों के योग्य सभी सामग्रियाँ एकत्रित कर दी थीं।

यज्ञ बडी धूमधाम से हो रहा था। उस यज्ञ की बडी

ार। प्रशंसा सुन कर भगवान् वाल्मीकि जी अपने शिष्य शिष्य तथा साथी साधुओं के सहित यज्ञ देखने के लिये चले। उनके साथ छ कड थे जिनमें अग्नि होत्र की अ- तयाँ तथा आवश्यक सामग्री थी। महामुनि वाल्मीकि के साथ नक दोनों प्रिय शिष्य कुश और लव भी थे। उन दोनों को मुनि ने समस्त रामायणकाव्य संगीत सहित याद करा दिया था। वे ताल, मूर्छना, लय तथा स्वर के साथ रामायण का गान करने में परम निपुण थे। वह पूरा महाकाव्य उन्हें कंठस्थ था। मुनि एक एकान्त कुटी म आकर चुपचाप उतर गये। सेवकों ने तुरत उनके रहने का सब प्रबन्ध कर दिया भोजन की समस्त सामग्रियाँ उनके समीप पहुँचा दी। मुनि ने अग्नि होत्रादि नित्य कर्म किया और रात्रि में यज्ञ की बातें सुनते हुए सुख पूर्वक विश्राम किया।

प्रात काल नित्य कर्मों से निवृत्त होकर महामुनि वाल्मीकि जी ने अपने दोनों प्रिय शिष्य कुश और लव को बुलाया वे विनयी बालक हाथ जोडे हुए गुरु के सम्मुख उपस्थित हुए। मुनि ने अत्यत ही प्यार से कहा—पुत्रो। तुम इस महा यज्ञ में अपना सुन्दर काव्य सभी को सुनाओ। यहाँ बड बडे राने महाराने तथा प्रतिष्ठित पुरुष आये हुए हैं। संसार के कोने कोने से दशो दिशाओं से राजा महाराजा गुण सहित क्या कलाकार यहाँ एकत्रित हुए हैं। तुम सुन्दर स्वर स ताल और लय के साथ इस महाकाव्य को सुनाओ। जहाँ ब्राह्मण ठहरे हैं जहा बाजार लगा है, जहाँपर कारीकर काम करते हैं, जहाँ राजा लोग ठहरे हुए हैं सब स्थानों म जा जा कर मेरे रचे इस महाकाव्य को सुनाना। सुनाने म

प्रमाद मत करना। सुनाते सुनाते थक जाओ तो बैठकर तनिक विश्राम लेना रसीले फलों को खाकर अपने श्रम को मिटाना। भूख लगने पर ही फलों को खाना। खा खा कर गान करना। सरस, सुगंधित फलों को खाने से तुम्हारे कंठ पुनः सुंदर होजाया करेगा। गाते समय संकोच मत करना ऋषियों के यहाँ अधिक देर तक ठहर कर गाना। श्री रामचन्द्र जी के निवास स्थान पर भी जाना। वहाँ अत्यंत मधुर कंठ से गान करना। राजा रामचन्द्र तुम्हें गाने को बुलावें तो शिष्टता के साथ उनके समीप जाना। वे तुम्हारे पिता हैं। इस लिये उनसे कोई अशीष्टता का व्यवहार मत करना। उन्हें यह भी मत बताना कि हम आपके पुत्र हैं। वे तुम्हारा परिचय पूछें तो इतना ही कहदेना हम वाल्मीकि जी के शिष्य हैं। श्री राम तुम्हें कुछ धन दें तो कभी मत लेना। नम्रता के साथ कह देना हम वन में रहने वाले मुनि हैं हमें धन से क्या प्रयोजन! नित्य २० सर्ग गाना। यह सुर स्वर वाली दो वीणायें हैं इन्हें बजाकर स्वरोंमें स्वर मिलाकर गाना। गाते समय भूल मत जाना,

इस प्रकार मुनि ने अपने प्यारे शिष्य कुश और लव को भाँति भाँति की शिक्षायें दीं। गुरु की शिक्षाओं को शिरोधार्य करके वे बच्चे गाते हुए आगे बढ़े। उस समय उनकी शोभा बड़ी ही अपूर्व थी। दोनों का रूप रंग स्वभाव व्यहार, शील संकोच एक साथ वे दोनों की सुन्दर छोटी छोटी सुनहरी जटायें थीं। वे वायु में बिखर कर उनके मुख मंडल पर हिलती हुई अत्यंत ही शोभा दे रहीं थीं। दोनों ही पीले पीले वस्त्र पहिने थे। दोनों के ही हाथ में वीणा थी. दोनों के ही कंठ सुरीले थे, दोनों ही एक स्वर में मिलकर

गा रहे थे. उनके स्वर इस प्रकार मिले हुए थे, दूर से सुन कर कोई यह नहीं कह सकता था कि दो कुमार गा रहे हैं। उनकी चाल ढाल बड़ी ही सुन्दर थी, उनकी वीणा में चितवन में गायन में उठ न बैठन में आकर्षण था उन दोनों के पैर एक साथ ही उठते थे। वे कभी ताल स्वर से बाहर नहीं जाते थे। सहस्रों नर नारी बालक, युवा। वृद्ध उन्हें चारों ओर से घेर लेते। वे सब उनका गायन सुनकर धन्य धन्य कहते। वे एक स्थान से दूसरे स्थान में जाते। लोग वहीं उनके पीछे लगे चले जाते उनके गान की सर्वत्र धूम मच गई। गायक आश्चर्य चकित रह गए। ब्राह्मण विस्मित हुए, राजा ओं की प्रसन्न ता का ठिकाना नहीं रहा रामचन्द्र जी की बीती हुई घटना प्रत्यक्ष सी प्रतीत होने लगीं। दोनों कुमार गाते गाते श्री राम चन्द्र जी के द्वार पर पहुँचे।

श्री रामचन्द्र जी ने इन बालकों को देखा देखते ही उन का हृदय भर आया इनका गायन सुनकर तो वे आत्म विस्मृत हो गये। इतनी छोटी अवस्था में संगीत के समस्त नियमों का सावधानी से पालन करते हुए तालस्वर के साथ ये बालक गानकर रहे हैं, यह देखकर श्रीराम चन्द्र जी परम प्रसन्न हुए। लक्ष्मण जी के द्वारा उन बालकों को बुलाकर भगवान् ने पूछा—"क्या तुम लोग हमें गाना सुनाओगे।"

कुश ने विनीत भाव से कहा—"क्यों नहीं, महाराज की आज्ञा होगी तो अवश्य सुनावेंगे।"

यह सुनकर भगवान् ने राजसभा में सभी को बुल वाया। पुराण जानने वाले पंडितों को व्याकरण के ज्ञाता बड़े बड़े वैयाकरणों को, ज्योतिष विद्या के आचार्य ज्योतिषियों

को, गणितज्ञों को वृद्धब्राह्मणों को, संगीतमर्मज्ञों को रस शास्त्र के ज्ञाता रसिकों को, ललितकलाओं के कलाकारों को वाचकों को ऋषि मुनियों को चातुर्वर्ण के लोगों को यहाँ तक कि बालकों और स्त्रियों को भी उस काव्य श्रवणार्थ बुलाया गया। सभी को यथायोग्य बैठने के लिये आसन दिया गया। सब के बैठ जाने पर दोनों भाइयों ने निर्भय होकर अत्यन्त ही सुरीली वाणी से गायन आरम्भ किया। गाते गाते वे तन्मय होगये। श्रोताओं के नेत्र झर झर झर-रहे थे। वे आनन्द में विभोर हुए आत्म विस्मृत से बने जा रहे थे। गाते गाते विरिह जाते आनन्द के उद्रेक में तैरने और उतरने से लगते। श्रोता चित्र लिखे के समान चुपचाप होकर सुन रहे थे।

उस समय सभा में ऐसी शान्ति थी, कि कोई वेग से साँस भी लेता तो वह सुनाई देती। सभी के चित्त को उन बालकों ने आकर्षित कर लिये। आदि से लेकर उन्होंने २० सर्ग गाये। गुरु की आज्ञा नित्य २० सर्ग ही गाने की थी, अतः २० सर्ग गाकर वे चुप हो गये। उनके गायन से श्री रामचन्द्र जी अत्यन्त प्रभावित हुए। नगर निवासी तथा दर्शक कहने लगे—"ये तो श्री राम जी की प्रतिकृति ही हैं। यदि ये मुनियों के से वस्त्र न पहिने होते, तो इनमें और श्रीरामजी में कोई अन्तर ही नहीं। श्री रामजी का भी इनके प्रति कैसा सहज स्नेह है।।

बालक जब रामायण गाकर चुप हो गये तब श्रीरामजी ने अपने छोटे भाई भरत से कहा—'भरत! इन परम गुणी ऋषि कुमारों को ९-९ सहस्र के सुवर्ण के सिक्के शीघ्र ही दे दो। इनके अतिरिक्त भी जो ये वस्तुएँ माँगे वे भी इन्हें दे दो।"

श्री रामचन्द्र जी की आज्ञा पाकर भरत जी १८ हजार सुवर्ण मुद्रायें ले आये और इन बालकों को देने लगे। बालकों ने विनीत भाव से कहा—"राजन्! हम वनवासी मुनि हैं, इन सुवर्ण मुद्राओं को लेकर क्या करेंगे! हमें कुछ भी नहीं चाहिये।

त्याग से पुरुष का आदर बढ़ता है। ग्रहण की अपेक्षा त्याग में अधिक आकर्षण है। इतने छोटे बच्चों की ऐसी निस्पृहता देखकर श्री रामचन्द्र जी को मन ही मन बड़ी शांति हुई। उन्होंने अत्यन्त ही स्नेह से सम्पूर्ण ममता बटोरकर उन बालकों से कहा— बच्चो! यह अत्यंत सुंदर काव्य तुमने किससे पढ़ा? किसने इसकी रचना की। तुम किनके शिष्य हो? यह काव्य कितना बड़ा है? जिनसे तुमने यह काव्य पढ़ा है वे मुनि कहाँ रहते हैं, इस समय कहाँ हैं?"

कुश ने कहा— प्रभो! इस महाकाव्य की रचना भगवान् वाल्मीकि ने की है। यह सब से पहिला लौकिक छन्दों में काव्य है, इसीलिये इसका नाम आदिकाव्य है। इस में आपका चरित है इसीलिए इसका नाम रामायण है मुनि ने इसे ६ काण्डों में समाप्त किया है। सातवाँ उत्तर काण्ड पीछे बनना है। इस में २४ हजार श्लोक हैं। इसके पढ़ने से चतुर्वर्ग की प्राप्ति होती है। इसके रचयिता भगवान् वाल्मीकि आपके यज्ञ में आये हुए हैं। वे ऋषियों की कुटियों के समीप एकान्त स्थान में ठहरे हुए हैं।"

लव कुश की बातें सुनकर श्रीरामचन्द्रजी परम प्रसन्न हुए वे महातेजस्वी तपोधन महात्मा वाल्मीकि मुनि के समीप बच्चों के साथ गये। उनकी विधिवत् पूजा करके

श्री राम ने उनके तप को, शिष्यों को आश्रम के पशु पक्षी और वृक्षों की कुशल पूछी। मुनि ने भी महाराज रामचन्द्र के राज्य परिवार कोष सेना अमात्य तथा भाईयों की कुशल पूछी। तदन्तर श्रीरामजी ने हाथ जोडकर कहा—'ब्रह्मन्! आप पधारे यह मेरा अहो भाग्य। आपकी पद धूली में यह पंडाल परम पावन बन गया। महामन! आपने जो यह काव्य बनाया है यह बड़ा ही अलौकिक है। इसकी रचना अलौकिक ढग से की है। यह तो समाधि भाषा में आपने सब घटनाओं को प्रत्यक्ष देखकर लिखा है। इन बच्चों का कंठ भी बड़ा मधुर है। मैं आपके साथ तथा समस्त ऋषि मुनियों के साथ इस सम्पूर्ण महाकाव्य को आपके इन सुयोग्य शिष्यों के मुख से सुनना चाहता हूँ। कल से आप भी सभा में कष्ट किया करें।"

यह सुनकर भगवान् वाल्मीकि प्रसन्न हुए और बोले 'रघुनन्दन! आज मेरा श्रम सफल हुआ। जो रचना राम को प्रिय है, वही तो वास्तव में रचना है। जिस रचना में राम का रूप, राम का यश राम का चरित राम का नाम का महत्व वर्णित है उसी रचना को रसग्राही रसिक महानुभाव प्रशंसा करते हैं। लेखक की अपने कृति का सर्वश्रेष्ठ पारिश्रमिक यही है कि उसकी कृति की विद्वान् लोग प्रशंसा करें। कलाकार की कला की कलामर्मज्ञ यदि बड़ाई करें तो उसका परिश्रम सफल हो जाता है। कल मैं आप की सभा में अवश्य आऊँगा। बच्चे सब के सम्मुख नित्य २० सर्गों का गायन करेंगे।';

यह सुनकर श्री रामचन्द्र जी प्रसन्न हुए। वे मुनि को प्रणाम करके तथा सेवकों को सभी प्रकार की सेवा करने का आदेश देकर अपने निवास स्थान को चले गये।

दूसरे दिन फिर सभा लगी। कुश लव के संगीत की सर्वत्र प्रशंसा फैल गई थी। अब यज्ञ में जितने खेल तमासे होते थे, सभी बन्द हो गये। सभी सब कार्यों को छोड़ कर कुश लव का संगीत सुनने राजा राम की सभा में आने लगे। श्री रामचन्द्र जी भी राजसिंहासन छोड़ कर मुनियों के बीच में साधारण पुरुषों की भाँति संगीत सुनते। लव और कुश छोटे होने के कारण ऊँचे मंच पर बिठाये जाते जिससे सभी उन्हें देख सकें दूर दूर तक बैठे लोग सुन सकें। इससे यह दिखाया, कि पुत्रों के योग्य होने पर बुद्धिमान राजा स्वयं ही उनके लिये सिंहासन छोड़ कर प्रथक् हो जाते हैं।

इस प्रकार नित्य ही रामायण का गान होता सभी श्रोता उस श्रुति मधुर, सुंदर काव्य को बड़ी उत्कंठा से श्रवण करते। उसमें नवों रसों का वर्णन था। उसके पद सुंदर थे, अर्थ गांभीर्य अलौकिक था। सुनते ही श्रोता समझते थे। सम्पूर्ण रामायण को सुनकर श्री रामचन्द्रजी तथा समस्त श्रोता समझ गये, कि ये लव कुश सीता के पुत्र हैं। रामायण में इन सब का भी वर्णन आया था। इस अश्वमेध तक का वृत्तान्त उस में गाया गया था। आगे मुनिने सुनाने को मना कर दिया।

अंतिम दिन भगवान् वाल्मीकि सभा में नहीं आये। तब भगवान ने सब सभासदों के सम्मुख अपने छोटे भाई

लक्ष्मण से कहा—'सौमित्रे! तुमने रामायण में सुना है, ये दोनों सुंदर कुमार बच्चे तो सीता के ही है। इस काव्य के श्रवण करने से तो प्रतीत होता है, सीता सर्वथा शुद्ध है।"

यह सुनकर सभी श्रोता एक स्वर में बोल उठे—"ये दोनों हमारे स्वामी हैं। ये रघुवंश की कीर्ति बढ़ाने वाले हैं। ये भगवती सीता के पुत्र हैं। सीता माता सर्वथा शुद्ध हैं। उनका निष्कासन घोर अन्याय है। हम इस यज्ञ में जगज्जननी जानकी का दर्शन करना चाहते हैं।"

यह सुनकर शत्रुघ्न जी हाथ जोड़ कर खड़े हुए और बोले—'जब मैं मधुवन लवण को मारने जा रहा था, तब एक रात्रि के लिये मुनिवर भगवान् वाल्मीकि जी के आश्रम पर ठहरा था। उस दिन सीता माता ने मेरे रहते ही इन दोनों यमज पुत्रों को उत्पन्न किया था। ये सीता जी के ही पुत्र हैं। सभी देखरहे हैं

जिन्होंने उनके सम्बन्ध में बुरी बात कही हो उनकी जिह्वा गिर जाय।"

फिर हनुमान् जी खड़े हुए। उन्होंने कहा—"रघुनन्दन! ये अवश्य आपके पुत्र हैं। संसार मे आज तक कोई मुझे पराजित नहीं कर सका। किन्तु इन दोनों बच्चों ने हमारी समस्त सेना का संहार कर दिया। हम सब को मूर्छित बना दिया हमें साधारण वानरों की भाँति घोड़े की पूछ से बाँध कर ये आश्रम में ले गये। वहाँ सीता माता ने हमें छुड़ाया उन्होंने रोते रोते हम से कहा—'मेरे स्वामी ने मुझे अपनी कीर्ति की रक्षा के लिये बिना अपराध छोड़ दिया है। मै तो उन्हीं की हूँ यदि उन की कीर्ति रक्षा मे मेरा उपयोग हो, तो इससे बढ़कर मेरे लिये सौभाग्य की क्या बात है अपने पति के लिये मैं सभी प्रकार की विडम्बना सहन करने को तैयार हू।" सुग्रीव जी ने भी हनुमान् जी की बातों का खड़े होकर समर्थन किया।

सब की बात सुनकर रुँधे हुए कंठ से भगवान् श्रीराम लक्ष्मण जी से बोले— सुमित्रानन्दवर्धन लक्ष्मण! भाई सभी की सम्मति है, तो तुम भगवान् वाल्मीकि के समीप जाओ यदि वे उचित समझें तो सीता को यहाँ बुलावें। सीता सबके सम्मुख अपनी शुद्धता की शपथ दे।"

यह सुन कर सभी हाय! हाय करने लगे। आपस मे कहने लगे। श्रीरामचन्द्रजी वैसे तो अत्यंत ही कोमल स्वभाव के हैं, किन्तु न जाने सीता के लिये इतने कठोर क्यों होगये हैं। जो गंगाजल के समान विशुद्ध हैं वे सब के सम्मुख अपनी विशुद्धता की शपथ कैसे देंगी, सभी

लोग सीता जी की प्रशंसा करने लगे और लव कुश के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने लगे ।

लक्ष्मण जी भगवान की आज्ञा शिरोधार्य करके भगवान वाल्मीकि के निवास स्थान पर आये और आकर बोले प्रभो ! सभा प्रजा के लोगों की इच्छा से श्रीरामजी सीता को भरी सभा में सब के सम्मुख देखना चाहते हैं यदि आप उचित समझें और आज्ञा दें तो जानकी यहाँ आवें आप अपने किसी शिष्य को भेज कर सीता जी को अपने समीप बुला लें ।"

भगवान् वाल्मीकि ने कहा— सीता तो शुद्ध है । श्री राम तो नरनाट्य कर रहे हैं । अच्छी बात है जैसी उनकी इच्छा । जिसमें उन्हें प्रसन्नता हो । यह सीता की विडम्बना है उसका सबसे बड़ा अपमान है। किन्तु पतिव्रता स्त्री पति की प्रसन्नता के लिये सब कुछ सहन करती है । राम की इच्छा है तो सीता बुलाई जाय किन्तु शिष्य के द्वारा नहीं। सीता को तुम ही छोड़ आये हो तुम ही राम के उसी रथ को लेकर जाओ और उसे बुलालाओ । वह आ जायेगी मेरा ऐसा ही विश्वास है।"

मुनि की आज्ञा शिरोधार्य करके लक्ष्मण रथ लेकर स्वयं ही महामुनि वाल्मीकि के आश्रम पर गये । वहाँ तपस्वियों से घिरी हुई वल्कलवस्त्र पहिने राम विरह में दुबली हुई सीता जी बैठी थीं । लक्ष्मण जी ने दूर से ही भूमि में लोट कर उन्हें प्रणाम किया ।

लक्ष्मण जी को देखकर सीताजी ने कहा—' रामानुज लक्ष्मण ! कहो भैया ! तुम कुशल हो न ? तुम्हारे स्वामी तो अच्छी तरह से हैं न ? तुम्हारा यज्ञ तो भली भाँति

हा रहा है न ! कुलपति भगवान् वाल्मीकि भी अपने शिष्यों सहित तुम्हारे यज्ञ को देखने गये हैं वे तो सब मुनियों के सहित कुशल हैं न ? तुम रथ में चढ़कर कहा जा रहे हो ? मुझ अभागिनि की तुम्हें कैसे याद आगई तुम मार्ग भूल करतो इधर नहीं चले आये ?"

लक्ष्मण जी ने रोते रोते कहा— माँ ! तुम मुझे लज्जित मत करो ! सेवक का धर्म बड़ा कठोर होता है । मैं राजा राम के कठोर शासन के कारण आपके दर्शन भी नहीं कर सका । श्री रामचन्द्र आपको देखना चाहते हैं । वे देश देशान्तरो के राजाओं के सम्मुख समस्त ऋषि मुनियों के सम्मुख तथा प्रजा के आबाल वृद्ध नर नारियों के सम्मुख आपको विशुद्ध सिद्ध करना चाहते हैं ?

यहसुनकर आँसू पोछती हुई सीता जी बोलीं—
"सुमित्रानंदवर्धन लक्ष्मण ! अब मुझे तुम्हारे स्वामी क्या देखेंगे । अब तो मैं धर्म अर्थ तथा काम से हीन होकर भिक्षुकी बन कर इस वन में अपना जीवन बिता रही हूँ । मेरे द्वारा उन की कौन सी सेवा होगी । सोने की सीता से वे अपना यज्ञ पूर्ण करें मैं अब कैसे यज्ञ मंडप में उन की बगल में बैठ सकती हूँ । बाहर से आये हुए राजाओं के सम्मुख मैं कैसे मुँह दिखाऊँगी । मेरे पिता भी यज्ञ मे आये होंगे, उनके सामने मैं कैसे जा सकूँगी । लक्ष्मण ! मुझे लज्जित करने यहाँ क्यों ले चलते हो । विवाह के समय श्री रामचन्द्र जी की जो मनमोहनी मूरति हृदय पटल पर अंकित होगई है, वह मरणपर्यन्त मिट नहीं सकता । उसी का निरंतर चिंतन करती हुई राम नाम

का जप करती हुई तपस्या के द्वारा अपने शरीर को त्याग दूँगी। अब मुझे क्या खिलौना बनाते हो क्या महाराज ने मेरे लिये आज्ञा दी है?"

लक्ष्मण जी ने कहा — देवि! मुझे श्रीरामचन्द्र ने आप के लिये तो आज्ञा दी नहीं। भगवान् वाल्मीकि के लिये कहा था— 'वे उचित समझें तो सीता जी को बुलालें।" मुनि ने मुझ से कहा— तुम जाओ और सीता आना चाहें तो ले आओ।" उनकी ही आज्ञा से मैं यहाँ आया हूँ। अब आप जो आज्ञा देंगी वह करूँगा मेरा काम तो सब का आज्ञा पालन करना है। सब भाइयों में मैं ही ऐसा अभागा हूँ जो ऐसे कठिन कार्य मुझे ही करने पड़ते हैं।"

यह सुनकर अत्यंत ही दीनता के स्वरमें जानकी जी बोलीं— मेरे प्यारे देवर! देखो, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ। महाराज की आज्ञा होती तो मुझे सिर के बल आना ही पड़ता। अपनी इच्छा से मैं वहाँ जाना नहीं चाहती। वहाँ मुझे अब मत ले चलो। स्त्री का मुख्य प्रयोजन पुत्रोत्पत्ति ही है। सो श्रीराम का यह प्रयोजन सिद्ध हो ही चुका उनके तेज से दो पुत्र हो ही चुके। वे तुम्हारी यज्ञ में हैं ही। उन्हें यदि वे विशुद्ध समझें तो अपने समीप रखलें। मैंने धाय की भाँति लालन पालन करके उन्हें इतना बड़ा कर दिया है। अब वे राज काज के योग्य बन गये हैं महाराज के कार्यों में सहायता देंगे। अब मुझे तो यहीं पड़ी रहने दो। कभी सुन लेना सीता मर गई तब तुम दो आँसू बहालेना। अब मेरी यह अंतिम भेंट समझो। देवर! मैं तुम्हें दोष नहीं देती। मेरे भाग्य का दोष है।

जैसे मैं श्रीरामको आज्ञा के आधीन हूँ वैसे ही तुम हो। तुम जाकर महाराज के चरणों में मेरा प्रणाम कहना यज्ञ में पधारे हुए पूज्य जनोंको मेरी ओर से चरणवन्दना करना मेरी देवरानियों मे कुशल पूछना। अपने बच्चोंसे मेरा प्रेम आशीर्वाद कहना। कुश लव से कह देना, अपने बाप के पास रहें। मेरी वे याद न करें। मैं तो उनकी धाय थी।"

इतना सुनते ही लक्ष्मण रोने लगे। उनकी हिचकियाँ बँध गईं। वे बालकोंकी भाँति फूट फूट कर रुदन कर रहे थे। उन्हें सान्त्वना देते हुए सीताजी कहने लगीं "लक्ष्मण! तुम पुरुष होकर भी इतने अधीर होते हो। देखो. मैं अबला होकर भी अपने हृदयको पत्थर बना कर अपने पतिके वियोगको इतने दिनोंसे सहन कर रही हूँ। जाओ, भगवान तुम्हारा भला करें। सब से मेरा संदेश अवश्य कह देना।"

यह सुनकर लक्ष्मण जी ने जानकी को प्रणाम किया, उनकी प्रदक्षिणा करके रथ पर चढ़ कर वे श्री राम के समीप आये। वहाँ आकर उन्होंने सब वृतान्त सुना दिया सुनकर श्रीराम जी स्तम्भित हो गये कुछदेर तक गंभीरता पूर्वक सोचते रहे और अंतमें बोले—"लक्ष्मण! तुम फिर से जाओ। अब के सीता को मेरा संदेश सुनाना। कहना "देवि! वनमें रहकर तपस्या के द्वारा तुम मुझे ही तो पाना चाहती हो। मेरे अतिरिक्त तुम्हारी और कोई अन्य गति है क्या? गर्भावस्था में वन जाने की तुमने ही इच्छा प्रकट की थी। तुमने ही कहा था मैं वन में तपसियों की

तपस्विनी मुनिपत्नी उन्हें पहुँचाने दूरतक गईं । वे बार-बार कहतीं— सीते ! अब कब तुमसे भेंट होगी । अब तो तुम फिर रानरानी बनोगी अब फिर इस वन में काहे को आओगी फिर तो तुम हमें भूल ही जाओगी । जानकी सब की बात सुनतीं और रोतीं उनकी वाणी रुक गई थी, वे एक शब्द भी नहीं बोल सकती थीं । आश्रम से बाहर आकर उन्होंने फिर एक बार समस्त आश्रम को अतिप्रणाम किया और रथ पर चढ गईं । लक्ष्मण जी ने रथ लाकर भगवान वाल्मीकि मुनि के आवास पर खड़ा कर दिया । कुश लव अपनी माता को आई देखकर दौड कर रथ के समीप पहुँच गये और माँ माँ कहकर उनसे लिपट गये ।

सीताजीने लजाते हुए पहिले भगवान् वाल्मीकि को प्रणाम किया फिर समस्त मुनियों की चरणवन्दना करके एक ओर सिकुड़ी सिमटी सी बैठ गईं । लक्ष्मण सीताजी को उतार कर मुनिकी आज्ञा लेकर चले गये। श्रीराम चन्द्र जीसे जा कर उन्होंने सब समाचार निवेदन किया श्रीराम चन्द्रजी ने आज्ञा दी। सीता कल मुनि के साथ भरी सभा में आवे और अपनी शुद्धता के सम्बन्धमें सब के सम्मुख धर्मपूर्वक शपथ ले। सेवकोंने यह संदेश भगवान् वाल्मीकि के समीप पहुँचा दिया। तपोधन महर्षिने इसे सहर्ष स्वीकार किया। आज लव कुशने बड़े उल्लास के साथ माताजी को यज्ञ के सब समाचार सुनाये और यह भी कहा—"पिताजीने हमारा गायन बड़े प्रेमसे सुना और हमें बहुत बहुत प्यार किया।"

मुनिपत्नियोंकी पूजा करूँगा। मैंने तुम्हारा इच्छा के अनुसार ही तुम्हें वन में भेजा था अब बहुत दिनों तक तुमने मुनि पत्नियों की सेवा की। वन में निवास करके वहाँ का आनंद भी लिया अब मैं ही तुम्हें पुनः बुला रहा हूँ तुम आओ। मैं मन से तो तुम से सदा सन्तुष्ट ही हूँ। मेरा तुम्हारे प्रति पूर्ववत् ही प्रेम है यही नहीं। तुम्हारी तपस्या व्रत तीर्थसेवन दान धर्म, दया दाक्षिण्य तथा त्यागके कारण वह प्रेम और भी अधिक बढ़गया है। पतिव्रता पत्नियोंकी पति ही गति है पति ही उनके सर्वस्व हैं वे घर में रहें या वन में पति ही उन के आराधनीय हैं। अब तुम्हें मैं बुला रहा हूँ। भगवान् वाल्मीकि के साथ तुम निःसंकोच मेरे समीप आओ।"

लक्ष्मणजी ने श्रीराम की बातोंको ध्यानपूर्वक सुना। उन्हें धारण किया और उनकी आज्ञामें पुनः ज्योंके त्यों रथ पर बैठकर भगवान वाल्मीकि के आश्रम पर आये। पुनः लक्ष्मण को आया देखकर सीता जी समझ गईं अब तो चलना ही होगा। लक्ष्मण जी ने हाथ जोड़ कर स्खलित वाणी से डरते डरते श्री रामचन्द्रजी का सम्पूर्ण संदेश सुनाया उनका शरीर काँप रहा था नेत्रों से निरंतर जल बह रहा था सीता जी उनकी विवशता तथा आत्मग्लानिका अनुभव कर रही थीं। उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया इतना ही कहा— अच्छा चलती हूँ।"

वहाँ से जाकर उन्होंने कुल के अधिष्ठातृ देव को प्रणाम किया आश्रमके पालतू मृगों को प्यार किया वृक्षों और सतृष्ण नयनों से प्यारा वट वृक्ष तपस्वियों की चरणवन्दना की बराबर वाली मुनि पत्नियों से मिल भेंटकर वे चलने को उद्यत हुईं उनका हृदय भर रहा था।

तपस्विनी मुनिपत्नी उन्हें पहुँचाने दूरतक गईं । वे बार-बार कहतीं—'सीते ! अब कब तुमसे भेंट होगी ! अब तो तुम फिर राजरानी बनोगी अब फिर इस वन मे काहे को आओगी फिर तो तुम हमें भूल ही जाओगी । जानकी सब की बात सुनतीं और रोतीं उनकी वाणी रुक-गई थी, वे एक शब्द भी नहीं बोल सकती थीं । आश्रम से बाहर आकर उन्होंने फिर एक बार समस्त आश्रम को अतिप्रणाम किया और रथ पर चढ़ गईं । लक्ष्मण जी ने रथ लाकर भगवान वाल्मीकि मुनि के आवास पर खड़ा कर दिया । कुश लव अपनी माता को आई देखकर दौड़ कर रथ के समीप पहुँच गये और माँ माँ कहकर उनसे लिपट गये ।

सीताजीने लजाते हुए पहिले भगवान् वाल्मीकि को प्रणाम किया फिर समस्त मुनियों की चरणवन्दना करके एक ओर सिकुड़ी सिमटी सी बैठ गई । लक्ष्मण सीताजी को उतार कर मुनिकी आज्ञा लेकर चले गये। श्रीराम चन्द्र-जीसे जा कर उन्होंने सब समाचार निवेदन किया श्रीराम चन्द्रजी ने आज्ञा दी । माता कल मुनि के साथ भरी सभा में आवें और अपनी शुद्धता के सम्बन्धमें सब के सम्मुख धर्मपूर्वक शपथ दे मेरठने यह संदेश भगवान् वाल्मीकि के समीप पहुँचा दिया । तपोधन महर्षिने इसे सहर्ष स्वीकार किया। आज लव कुशने बड़े उल्लास के साथ माताजी को यज्ञ के सब समाचार सुनाये और यह भी कहा—"पिता-जीने हमारा गायन बड़े प्रेमसे सुना और हमें बहुत बहुत प्यार किया।"

यह सुनकर सीताजी को परमसंतोष हुआ। प्रातःकाल हुआ। ऋषि नित्यकर्मों से निवृत्त हुए, इधर श्री रामचन्द्र जीने भी आज सभी ऋषि मुनि राजामहाराजाओं और प्रजाके सभी वर्गों के लोगोंको विशेष रूप से बुलाया सभा खचाखच भर गई थी। उसमें किसी को आनेकी रोकटोक नहीं थी। सब के स्थान बने हुए थे, सभी उत्सुकता पूर्वक सीताजी के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे।

सद्समाजनसमूह में एक बड़ा भारी कोलाहल सा मच गया। मानों अगाध समुद्रमें ज्वारभाटा हो, कुछ लोग उचक उचक कर देखने लगे कुछ खड़े होगये, कुछ चिल्लाने लगे बैठ जाओ बैठ जाओ, राजसिंहासनके समीप वशिष्ठ, वामदेव, जाबालि, काश्यप, विश्वामित्र, दीर्घतपा, दुर्वासा, पुलस्त्य, शक्ति, भार्गव, वामन मार्कण्डेय, मौद्गल्य, च्यवन, शतानन्द, भरद्वाज, गौतम, सुप्रभ, नारद, पर्वत, तथा अन्यान्य ऋषि महर्षि देवर्षि राजर्षि तथा मुनि पुत्रों शिष्यप्रशिष्योंमे घिरे हुए बैठे थे उन सबने सम्मुख देखा प्रचेता के परम तेजस्वी पुत्र भगवान् वाल्मीकि गम्भीरता के साथ राजसभा में प्रवेश कर रहे हैं, उनके आगे आगे कुश और लव दोनों वच्चे हाथमें वीणा लिये हुए रामायण का गान कर रहे हैं वे उत्तर कांड के उसी प्रसग का गान कर रहे हैं, जिसमें सीता जी का परित्याग किया गया था, लक्ष्मण उन्हें निर्जन वन में छोड़ रहे हैं और जानकी जी रोकर पतिदेव के प्रति अपनी भक्ति प्रकट कर रही हैं, मुनि के शांत गभीर मुखमंडल पर

एक अपूर्व आभा छिटक रही है। वे अपने तेजके कारण सूर्य के समान प्रकाशित हो रहे हैं। कुश और लव तन्मयता के साथ वीणा की ध्वनि में अपना स्वर मिलाकर निर्भय होकर गा रहे हैं, मुनि के पीछे

लज्जा से सहमी सिकुड़ी सीताजी हाथ जोड़े हुए आरही हैं। वे किसी की ओर दृष्टि उठाकर देखती नहीं। हृदय में रामरूप का चिंतन करती हुई, मुख से शनैः शनैः राममंत्र का जप करती हुई तथा नेत्रों से अविरल अश्रु बहाती हुई सीताजी मुनि का अनुगमन कर रहीं थीं।

वे ऐसी लगती थीं मानो ब्रह्माजी के पीछे श्रुति जा रही है, अथवा बृहस्पति के पीछे पतिवियोगसे दुखी शची देवी जारही हों अथवा साक्षात् सनाथ शान्तरस के पीछे करुणा जा रही हो। सीताजी को देखकर सभी साधु साधु करने लगे सभी रोने लगे कोई रामके धैर्यकी प्रशंसा करने लगे कोई दोनोंके प्रेमका ही गुणगान करने लगे चित्रों में से भरत लक्ष्मण और शत्रुघ्न की पत्नियाँ अपनी जिठानी को तापसी वेषमें देखकर फूट फूट कर रोने लगीं। राजमहल की स्त्रियाँ ढाढ मारकर रोने लगीं, उस सभा मे कोई भी ऐसा नहीं था जिसका धैर्य न छूट गया हो, केवल एक श्रीरामचन्द्रजी ही ऐसे थे, जो अत्यंत गम्भीरता के साथ निर्विकार चुप चाप बैठे थे, मुनि के आदर में तथा जगज्जननी के सत्कार के लिये सभी उठकर खडे हो गये। श्रीरामचन्द्रजी ने सिंहासन से उठ कर मुनि का स्वागत किया उन्हें बैठ ने का सुंदर आसन दिया। मुनि दोनो बालकों को सम्मुख बिठाकर सब मुनि यों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करके बैठगये। सीताजी मुख ढके रोती हुई कुछ टेढी होकर मुनि के सिंहासन को पकडे हुए पीछे खडी थीं उन्होंनें मन ही मन अपने आरा-ध्यदेव के चरण कमलो मे प्रणाम किया वे घूँघट मे से श्री रामचन्द्रजी के दर्शन करना चाहती थीं, किन्तु निरंतर आँसुओंमे भरे रहने के कारण वे भली भाँति श्रीरामचन्द्र जी को देख न सकीं। मुनिने दोनों बच्चों से कहा— 'पुत्रो ! तुम अपने पिता को जाकर प्रणाम करो।" मुनि की आज्ञा पाकर दोनों बच्चे सिंहासन के समीप गये।

और सिर झुकाकर श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में प्रणाम किया। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् ने उन बच्चोंका स्पर्श नहीं किया बच्चे आकर पुनः मुनिके चरणोंमें बैठ गये ।

पीछे रोती हुई खड़ी माता को देख कर मुनिने भर्राई हुई वाणीमें कहा—"बेटी! बैठ जाओ।

मुनि की आज्ञा पाकर वृक्षों के नीचे ही मुनि के चरणों में सीता जी बैठ गईं। वे निरंतर भूमिकी ही ओर निहार रहीं थीं। अपने अँगूठे के नख से पृथ्वी को कुरेद रहीं थीं। मानों अपने लिये विवर खोज रही हों। कोलाहल के शान्त होजाने पर तथा सब के यथायोग्य बैठ जाने पर वृद्ध मुनि अपने सिंहासन पर ही उठ कर खड़े हो गये। मुनि को खड़ा देखकर कोलाहल सर्वथा शांत हो गया। उस समय यदि एक सुई भी गिर पड़े तो उसका भी शब्द सुनाई दे। सभी बड़ी उत्सुकता से महामुनि भगवान् वाल्मीकि के मुख की ओर निहार रहे थे, सभी उनके मुख से सीता जी के सम्बन्ध में सुनने को अत्यधिक लालायित थे। मुनि ने श्रीरामचन्द्र जी को सम्बोधित करके मेघ गंभीर वाणी में अपना अभिप्राय व्यक्त करना आरंभकिया।

मुनि बोले—"राघव! यह तुम्हारी धर्मपत्नी सीता है। यह पवित्र है निर्दोष है। यह धर्म चारिणी तथा तपस्विनी है इसने बड़े बड़े व्रतों का पालन किया है आपने लोकापवाद के भय से इसका परित्याग किया है। यद्यपि आपको भी इसकी पवित्रता में किसी प्रकार का संदेह नहीं, फिर भी लोक दृष्टि से आपने इसका परित्याग किया है। जब यह गर्भिणी थी, तब इसका लक्ष्मण द्वारा मेरे आश्रम के समीप त्याग किया गया था। इसने मेरे आश्रम में रहकर धर्म पूर्वक जीवनव्यतीत किया है इन दोनों बालकों को जन्म दिया है ये धर्म पूर्वक आप के पुत्र हैं। सीता विशुद्ध है, इसमें कोई दोष नहीं। सब

मेरा नाम वाल्मीकि है, मैं गंगातटपर रहता हूँ। प्रचेताका दशवाँ पुत्र हूँ। मैंने अपनी स्मृतिमें कभी हँसीमें भी झूठ बोला हो इस बातका मुझे स्मरण नहीं है। मैंने सहस्रों वर्षों तक घोर तपस्या की है। मुझे मेरी तपस्याका फल न मिले यदि सीताकी पवित्रतामें कोई सन्देह हो। मुझे उन नरकोंकी प्राप्ति हो जो झूठ बोलने वालोंको मिलते हैं यदि सीतामें कोई दोष हो तो। मैंने मनसा वचसा तथा कर्मणा कभी कोई पाप नहीं किया है। इस धर्माचरणका मुझे कुछभी फल प्राप्त न हो यदि सीता पापिनी हो तो। मैंने बड़े २ यज्ञ और अनुष्ठानोंको किया है। वे सब निष्फल होजायँ यदि सीतानिष्पाप न हो तो, मैं भूत भविष्य तथा वर्तमानकी सभी बातोंको अपनी तपस्याके प्रभावसे जाननेमें समर्थ हूँ। सीता को जब पहिले ही पहिले मैंने अपने आश्रमके निकट देखा था, तभी मैंने समाधिके द्वारा इसकी पवित्रता जान ली थी इसीलिये मैंने इसे अपने आश्रममें आश्रय दिया। रघुवीर! सीता धर्मचारिणी है। दशरथपुत्र! तुम्हारे पिता मेरा बड़ा सम्मान करते थे। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ सीता गंगाजलके समान पवित्र है। यह आपको ही अपना इष्टदेव तथा सर्वस्व समझती है। यह स्वयं भी आपको सबके सम्मुख अपनी पवित्रताका विश्वास दिलावेगी।"

इतना कहकर मुनि आसन पर बैठ गये।

मुनिके बैठजाने पर हाथ जोड़े हुए श्रीरामचन्द्रजी सिंहासनसे उठे। वे डर रहे थे। उनका शरीर काँप रहा था, उनके शब्द स्पष्ट नहीं निकलते थे। वे भगवान् वाल्मीकिको सम्बोधन करके सीताजीकी ओर देखते हुए बोले—"प्रभो! आप जो कह रहे हैं, वह सर्वथा सत्य है। आपके वचनों पर मुझे पूर्ण विश्वास है। चाहे

सूर्य पश्चिममें उदय होजाय चन्द्रमा अग्नि उगलने लगे जल अपनी शीतलताके गुणको छोड़दे यह सब सभव भी होसकता है किन्तु आप असत्य भाषण करें यह सभव नहीं। मुनिवर ! मैं अत्यन्त ही अभागा हूँ जो आप जसे तपोधन सीताकी शुद्धताके सम्बन्धमें मेरे सम्मुख इतनी बडी बडी शपथें कर रहे हैं। स्वामिन ! मैं यह भलाभाँति जानता हूँ मेरी पत्नी पतिव्रता है इसमें कभी कोई दोष नहीं आया है । लकामें वैदेहीने देवताओंके सम्मुख अग्निमें प्रवेश करके अपनी पवित्रता प्रकट की थी। देवताओंके कहनेसे मैं अपनी पापरहित पत्नीको घर ले आया था। फिर भी अपनी निजजनताके कारण लोकापवाद के भयसे मैंने इसका परित्याग कर दिया। आप चाहते तो इस अपराधके कारण मुझे शाप देकर भस्म कर देते, किन्तु आपने मेरे इस अपराधकी ओर ध्यान नहीं दिया । मुझे क्षमा कर दिया और धर्मचारिणी जनकनन्दिनीको आश्रय प्रदान किया । यह आपकी ही चरणछायामें रह कर धर्मपूर्वक रहती रही। आप तो इसके पिता के हो । मेरे तो आप पितासे भी बढकर हैं। प्रभो अपने पिताजीकी गोदमें बैठ कर हमने आपके उपदेश सुने हैं । पिताजी जब हमें आपके चरणोंमें डाल देते थे तब आप हमें स्नेहपूर्वक गोदीमें उठा लेते थे । हमारा मुख चूमकर हमें प्यार करते थे। आप तो मेरे पिताके भी पूजनीय हैं । मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य करता हूँ । लोकापवाद से डर कर ही मैंने पतिप्राणा अयोनिजा जानकीका परित्याग किया है। ये दोनों मेरे ही पुत्र हैं इसे मैं भली भाँति जानता हूँ। मैंने सीता को न कभी अशुद्ध समझा है न अब ही समझता हूँ। फिर भी मैं उसी सीताको ग्रहण कर सकता हूँ, जिसे

सभी शुद्ध कहे। एकके मनमें भी इसके प्रति सन्देह रह जायगा, तो मैं इसे ग्रहण न करूँगा। सीता सब के समुख अपनी शुद्धता का शपथ दे। सब इसे शुद्ध मानलें तो यह मेरी पुनः वैसी ही धर्मपत्नी हो सकती है।'

श्रीरामचन्द्रजीकी ऐसी कठोर बातें सुनकर सभी हाय हाय करने लगे। सभी का चित्त दुखित हुआ। सभी रोनेलगे। तब वाल्मीकिजी ने सामने गुड़िया की भाँति सिमटी सुकुड़ी सीता से सरलता पूर्वक कहा—'बेटी! तुम सबके सामने अपनी पवित्रता के सम्बन्ध में शपथ लो। संसार समझ जाय तुम सर्वथा शुद्ध हो।"

लज्जाके कारण जिनका सिर ऊपर उठता ही नहीं था, जो आत्मग्लानि के कारण किसीको अपना मुख दिखाना नहीं चाहती थी, संकोचके कारण जो गड़ी सी जारही थीं, विवशता के कारण जो अपने अंगोंमें ही विलीन होनेका प्रयास कर रही थी वे भूमिनन्दिनी वैदेही उठीं। वे काषाय वस्त्र पहिने थीं। जो बड़े कष्टसे उठ सकी थी। मुनिके चरणोंमें प्रणाम करके वे श्रीरामचन्द्रजीकी ओर बढ़ीं। दर्शक अपलक नेत्रोंसे सीताजी को ही निहार रहे थे। कुछ आगे बढ़ कर भूमिमें सिर टेक कर दूरसे ही जानकीने अपने हृदय धन श्रीरामके चरणोंकी वन्दना की फिर वे उत्तरकी ओर मुख करके खड़ी हुईं। श्रीराम पूर्वाभिमुख बैठे थे। भगवान् वाल्मीकि मुनिका मुख पश्चिमकी ओर था। बीचमें दक्षिणकी ओर पीठ करके जानकीजी खड़ी थीं। उनके पैर लड़खड़ा रहे थे। उनके दोनों हाथ जुड़े हुए थे। वायुके कारण उनके काषाय वस्त्र हिल रहे थे। उनके कमलके समान बड़े बड़े नेत्र जलसे भरे हुए थे। वे अपने पुत्रसे कुछ दूर खड़ी

थीं। उन्होंने किसीको सम्बोधित नहीं किया भूमिकी ओर निहारती हुई वे रुक रुक कर बोलीं—'यदि मैंने श्री राघवको छोड़ कर कभी स्वप्नमें भी मनसे भी परपुरुषका चिंतन किया हो तो, हे देवि! हे विष्णुपत्नि हे माता पृथिवी! मुझे अपनी गोदमें लेलो। इस संसारमें ऐसा कोई नहीं जिसकी बुराई कोई न करता हो। एक व्यक्तिने भी मुझे मनसे भी दोषी ठहराया तो श्रीराम मुझे ग्रहण न करेंगे। यह निंदाप्रिय संसार रहने योग्य नहीं है। यदि मेरे ऊपर वास्तवमें झूठाही कलंक लगाया हो तो मुझे अपने भीतर स्थान दो। यदि मैं सर्वदा, सर्वत्र सब अवस्थाओंमें मनसे, वचनसे कर्मसे श्री रामको ही पूजा करती होऊँ श्रीरामके अतिरिक्त मैं किसीको भी मनसे न चाहती होऊँ तो माँ अब मुझे सदाके लिये समेट लो। हे धरणी! तुम सबको धारण करने वाली हो। अंतमें सबको गति तुम ही हो। सब तुम्हारे ऊपर ही उत्पन्न होते हैं, तुममें ही मिल जाते हैं। यदि मैं रामको ही अपना इष्ट आराध्य सर्वस्व समझती हूँ, तो मुझे पवित्र पुत्री समझ कर अपना लो।"

इसी प्रकार सीताजी भूमिकी ओर देख कर ये बातें कर रही थीं। उसी समय सबने एक आश्चर्य जनक दृश्य देखा। सीताके सम्मुख ही सबके देखते देखते पृथिवी फट गई। उसमें-से एक सुवर्णमय रत्नोंसे खचित दिव्य सिंहासन प्रकट हुआ। सभीको उस अद्भुत सिंहासनको देख कर परम विस्मय हुआ। बड़े बड़े फणिधर नाग जिनके मस्तक पर मणियाँ चमक रही थीं वे उस सिंहासनको उठाये हुए थे। उसी समय दो दिव्य हाथ निकले जिन्होंने सती साध्वी सीताको अत्यन्त ही स्नेहसे उठाकर सिंहासन पर बिठाया। सिर झुकाये सिंहासन पर

बैठी हुई देवी सीताकी शोभा ऐसी ही हुई मानों वे संसारकी अधिष्ठात् देवी हो। शनै शनै सिंहासन भूमिमें खिसकने लगा। लव कुश अपनी माताको भूमिमें जाते हुए देख कर दौडे। सीता जीने वहींसे मुनिका सम्बोधन करके कहा—'पिताजी! आप इन बच्चोंको सम्हालें। रोते हुए मुनिने बच्चोंको पकडा आकाश से निरंतर पुष्पोंकी वर्षा हो रही थी। भगवती सीता उन पुष्पोंसे ढक गईं। सब लोग साधु साधु धन्य २ कहने लगे। बहुतसे

मूर्छित हो कर गिर पडे। बहुतसे विकल हो कर रोने लगे। आकाशमें देवता दुदुभि बजाते हुए कह रहे थे—देवि! तुम धन्य हो तुम्हारा शील और पातिव्रत अनुकरणीय है। सबके देखते देखते सिंहासन पृथिवीमें समाने लगा। सबके धैर्यका बाँध टूट गया। श्रीरामचन्द्रजी सीताजीको पकडने दौडे तब तक वे माता पृथिवी में प्रवेश कर चुकी थीं। उनकी चोटीके कुछ बाल थे।

भगवान् ने उन्हें ही पकड़ा। उससे अलसी का वृक्ष उत्पन्न हो गया, जो संसार में सीता जी के भूप्रवेश का प्रतीक है। आज सीता जी प्रकट रूप से पृथ्वी पर नहीं हैं किन्तु उस सीता के वृक्ष को पाकर पशुओं के लिये हरा चारा लाने वाले पशुपालक बड़े प्रसन्न होते हैं और कहते हैं।

सीता माता मोहनी। करदे मेरी चौंहनी।

छप्पय

राम सभा महँ शपथ प्रचेता सुत ने कीन्हीं।
सुर नर ऋषि मुनि सबनि विशुद्धा सीता चीन्हीं॥
पाइ राम रुख सीय धरा तैं बोलीं वानी।
पति परायणा मोइ जननि! यदि तुमने जानी॥

तौ अपने ई उदर महँ, करहु लीन अपनाहु अब।
सुनत भूमि फाटी तुरत, धँसी सीय लखि दुखित सब॥

—:*:—

सीताजी के लिये भगवान् का शोक

(७०२)

तच्छ्रुत्वा भगवान् रामो रुन्धन्नपि धिया शुचः।
स्मरंस्तस्या गुणांस्तांस्तान्नाशक्नोद् रोद्धुमीश्वरः॥
स्त्रीपुंप्रसङ्ग एतादृक्सर्वत्र त्रासमावहः *।
अपीश्वराणां किमुत ग्राम्यस्य गृहचेतसः॥
(श्री०भा० ६ स्क० ११ अ० १६ १७श्लो०)

छप्पय

निरखि विकल रघुनाथ भये साहस सब छूट्यो।
पुरुषारथ अब नश्यो धैर्य को दृढ पुल टूट्यो॥
प्रेम सहित ढिँग बैठि मातु सम कौन खवावे।
हाय? प्रिये! कहँ गईं कौन अब सीख सिखावे॥
को रम्भा के सरिस मुख देहि बात किहि सँग करूँ।
जीऊँ काको मुख निरखि, क्रोड वदन काको धरूँ॥

हमारा प्रेमी हमारे साथ रहे तो नित्य साथ रहने से उसका महत्व मालूम नहीं पडता, वह हमें साधारण व्यक्ति ही प्रतीत होता है। उससे जब वियोग होजाता है, तो पीछे पीछे उसके गुणों का स्मरण होता है। उसकी स्मृति में हृदय रोता है। स्नेह का स्रोत उमडने लगता है।

श्री शुकदेव जी कहते हैं—"राजन्! सीताजी के विवर प्रवेश का समाचार सुनकर भगवान् रामचन्द्र जी दुःखित हुए। उन्होंने अपने शोक को बुद्धि के द्वारा रोकना चाहा किन्तु ईश्वर होने पर भी वे रोकने में समर्थ न हुए। सीताजी में बहुत से गुण थे उन के सब गुणों को जब स्मरण हो आते तब वे विकल हो जाते। यह स्त्री पुरुषों का सम्बन्ध ऐसा ही सर्वत्र दुःख देने वाला ही है। जब इतने बडे बडे ईश्वर भी इस चक्कर में पड कर विकल हो जाते हैं तब अन्य गृहासक्त विषयी पुरुषों की तो कथा ही क्या है।

मिलन की उत्कट इच्छा होती है। मिलने पर प्रथम कैसे मिलेंगे क्या क्या बातें कहेंगे किस प्रकार उलहने देंगे कैसे उससे हृदय से हृदय सटा कर मिलेंगे इसी प्रकार की धुनाधुनी होती है। मिलने पर वे सभी बातें भूल जाती हैं। मुख से वाणी नहीं निकलती, अंग शिथिल हो जाते हैं, केवल हृदय से घनीभूत भाव पिघल कर जल बन कर नयनों के द्वारा बहने लगता है. यदि उससे सदा के लिये वियोग हो जाय, तब तो साहस छूट जाता है। धैर्य का सुदृढ़ सेतु टूट जाता है। जिसके मिलन में जितना ही अधिक सुख होता है, उसके बिछुड़ने में उतना ही दुख होता है इस संयोग वियोग की शृंखला के ही कारण संसार चक्र घूम रहा है। संयोग के सुख में राग और वियोग के दुःख में द्वेष न हों तो सभी मुक्त ही न हो जायँ, फिर संसार के आवागमन में फँस कर प्राणी पग पग पर त्रास का सामना क्यों करें। क्यों वे फिर फिर जन्म लें, फिर जन्म लें, फिर फिर काल के कवल बनें। स्त्री पुरुष सम्मिलन की इच्छा से ही मिथुनधर्म में अनुरक्ति होने के कारण ही संसृति है, क्लेश है, आवागमन जन्म मरण का दुःख है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! सीताजी सहसा भूविवर में समागई। श्री राम मुनि के सिंहासन के डंडे को पकड़ काष्ठ की मूर्ति के समान खड़े थे। वे कुछ निर्णय ही न कर सके। सीता के वियोग के कारण उनके अन्तः करण में तूफानसा उठ रहा था। वे क्रोध और रोष के कारण काँप रहे थे। प्रियतमा के अन्तर्हित हो जाने के कारण निरंतर रो रहे थे। अपनी विवेक बुद्धि के द्वारा बढ़े हुए कोप को रोक ने का प्रबल प्रयत्न कर रहे थे, किन्तु वे अपने

को रोक न सके । जानकी के प्रेम के बाहुल्य के कारण वे अपने भाव को पचाने में समर्थ न हुए । ईश्वर होकर भी वे अपने पर आप पर नियन्त्रण न कर सके । वे क्रोध में भर कर बाण तानकर, पृथिवी को सम्बोधन करके बोले— धरा ! तुम सबको धारण करने वाली कहाती हो मेदिनी ! तुम्हारा निर्माण अशुद्ध मेद के द्वारा हुआ है वसुन्धरे ! तुम ने बहुत से धन को अपने भीतर धारण कर रखा है । मेरा धन तो मेरा प्रिया ही थी । तुम ने मेरी प्रिया का अपन मे क्यों छिपा लिया है तुम जानती नहीं मैं उसे कितना प्यार करता हूँ । राक्षसराज रावण उसे लङ्का मे लेगया था, उसे परिवार सहित मार कर मैं वहाँ से सीता को ले आया । फिर पाताल से लाना मेरे लिये कौन कठिन है । मैं सीता के बिना रह नहीं सकता या तो तुम मेरी सीता को मुझे देदो नहीं तो मुझे भी ले चलो जहाँ मेरी प्राणवल्लभा है । भूदेवी ! मैं तुम्हे क्षमा नहीं कर सकता । तुम ने यदि मेरी बात न मानी तो मैं वन, पर्वत, नद, नदी, नगर तथा सम्पूर्ण प्राणियों सहित तुम्हें पलट दूँगा । टुकड़े टुकड़े करके तुम्हें बखेर दूँगा सीता तुम्हारे ही उदर मे उत्पन्न हुई थी वह तुम्हारी पुत्री थी, किन्तु उसके पालक पिता जनक ने धर्म पूर्वक उसे मुझे दे दिया था । अब तुम्हारा उस पर कोई अधिकार नहीं । वह मेरी है, उसके नाते से ही तुम मेरी माता के समान हो । सास समझ कर ही मैं तुम्हारा सम्मान करता हूँ, तुम्हारे ऊपर बाण नहीं छोडता किन्तु तुम मेरा अपमान कर रही हो, मेरी बात पर ध्यान नहीं दे रही हो-

मेरी बात पर ध्यान नहीं दे रही हो । मैं तुम्हें बिना मारे छोड़ नहीं सकता तुम्हें रसातल पहुँचा दूँगा। प्रलय के समान संसार में जल ही जल कर दूँगा। मैं अपने रोष को रोक ने में सर्वथा असमर्थ हूँ । मैं अपने भावों का संवरण नहीं कर सकता सीता को पाने के लिये सब कुछ कर सकता हूँ । तुम्हें मेरी बातों को उपेक्षा न करनी चाहिये अविलम्ब मेरी सहधर्मिणी को लौटा देना चहिये। मेरे बाण-अमोघ हैं, मेरी शक्ति अपार है मेरं बल की थाह नहीं । मैं सब कुछ करने में समर्थ हूँ। सीता जहाँ भी होगी, वहीं से मैं उसे लौटा लाऊँगा । मेरे बाणों का वेग कोई नहीं सह सकता। मेरे सम्मुख समर में कोई खड़ा नहीं रह सकता । मैं सीता के लिये पागल हो रहा हूँ । मैं किसी की न सूनूँगा । सीता को प्राप्त करके ही विश्राम लूँगा। इस प्रकार क्रोध में भरकर श्री रामचन्द्रजी पृथिवी को भर्त्सना करने लगे और वे धनुष पर बाण चढ़ा कर पृथिवी को रसातल में भेजने को उद्यत हो गये ।

श्री रामचन्द्र जी को क्रोध करते देख, लोक पिता मह भगवान् ब्रह्मा ब्रह्मलोक से उतर कर तुरंत ही नैमिषारण्य में आये। वे हंस पर बैठे ही बैठे आकाश में से कहने लगे—"राम! राम! महाबाहो! आप यह क्या कर रहे हैं आप यह कैसा अलौकिक नरनाट्य कर रहे हैं । प्रभो! आप अपने सरस्वरूप का स्मरण करें । आपने ही तो सूकरावतार धारण करके रसातल में गई इस पृथिवी का उद्धार किया था, अब आप इसे पुनः रसातल में क्यों भेजना चाहते हैं । प्रभो ! आप तो रक्षक हैं. प्रतिपालक हैं ।

संहार का काम तो आपने शंकर को दे रखा है। उत्पत्ति का काम आप ने मुझे सौंप रखा है। आप सनातन सच्चिदानन्द घन सर्वेश्वर हैं। सीता सदा आपके साथ है। उन से भला कभी पल भर को भी आपका वियोग हो सकता है। अभी प्रलय का समय नहीं है। आप क्रोध को छोड़ दें। जानकी नाग लोक में सुखी है। वे स्वर्ग में पुन आपको प्राप्त होंगी। आप इन कुश लव का प्रेमपूर्वक पालन करें। इनसे अपना आगे का वृत्त सुनें, प्रभो! अब आपकी लीला संवरण करने का भी समय सन्निकट हो आ चुका है।"

इतना कहकर भगवान् ब्रह्मा अपने सत्यलोक को चले गये। श्रीरामचन्द्र जी अत्यंत दुखी हुए। उन्होंने अपने रोष को रोका। वे निरंतर रोते ही रहे। यज्ञ समाप्त करके वे अवध पुरी में आये। सीता के बिना उनका चित्त सदा उदास रहता था वे बड़े कष्ट से अपनी प्रिया के बिना समय को काटते थे।

यह सुनकर आँसू पोंछते हुए शौनक जी बोले—"सूत जी! भगवान ने ऐसी करुणा पूर्ण लीला क्यों की। भगवान् होकर भी उन्हें अपनी प्राणप्रिया पत्नी का इस प्रकार वियोग सहना पड़ा। भगवान को कर्म बन्धन तो है नहीं। फिर वे जीवन भर दुखी क्या रहे। क्यों एक तुच्छ धोबी के पीछे उन्होंने अपने आनन्द को किरकिरा बना दिया। अज्ञानी लोग तो अटसट बकते ही रहते हैं उन्हें बकने देते। आनन्दमें सीताजी के साथ विहार करते। जब इच्छा होती उनके साथ स्वधाम को सुख से पधारते।

इस प्रकार स्वयं भी सदा दुखी रहे और श्रोता वक्ता पाठक और लेखकों को भी दुखी बना गये।"

यह सुन कर गंभीरता पूर्वक सूतजी बोले—"महाराज, भगवान् को क्या सुख दुखः वे तो कर्मबन्धन दुख सुख सभी से परे हैं। सीता तो उनकी नित्य शक्ति हैं। उनका उनसे कभी क्षणभर के लिये भी वियोग संभव नहीं। यह तो वे प्राणियों का अन्तः करण शुद्ध करने के निमित्त हृदय की कालिख को करुणा के वारि से धोने के निमित्त ऐसी करुणा पूर्ण लीलायें किया करते हैं। जिससे हृदय का मैल पानी बन कर नेत्रों से निकल जाय। वे अपने प्रत्येक चरित्र से जीवों को शिक्षा देते हैं।

शौनक जी ने कहा—"इस करुणा पूर्ण कथानक से क्या शिक्षा मिल सकती है।"

सूतजी बोले—"महाराज! यही शिक्षा कि मनुष्य विवाह के लिये कितने उतावले बने रहते हैं। बहू का नाम सुनते ही उनके हृदय में गुद गुदी होने लगती है। आज तक इतने विवाह हुए कोई कहदे कि विवाह करके, हमें सदा सुख ही मिला। क्षण भर का सुख सा प्रतीत होता है, नहीं तो दुख ही दुख है। इस कारे मूँड वाली के साथ रह कर किस पुरुष ने सुख पाया है। इस दाढ़ी मूँछों वाले दो पैर के जन्तु के साथ रह कर कौन स्त्री सर्वथा सुखी हुई है। मुनियो! आप लोग इस विवाह के चक्कर से भले बचे। भगवान् की आप पर बड़ी कृपा है। यदि बहू रूपी बेड़ी आपके भी पैरों में पड़ी होती तो यहाँ आने द

से इस प्रकार सहस्रों वर्षों तक निश्चिन्त होकर भगवान् की रसीली कथायें न सुनते रहते । फिर तो तेल ला नम क ला, हल्दी ला लकड़ी ला, चुरीला, बीछियाला, बेंदीला, सुरमाला, साड़ीला, और न जाने क्या क्या लाला जी जी होत रहते । कथा के लिये अवकाश ही न मिलता । कथा में बैठते भी तो चिंता लगी रहती, कल घर वाली कह रही थी मेरी साड़ी फट गई है मुझे एक हार बनवादो मेरे सिर में दर्द रहता है कोई दवा मँगा दो मुझे वाण सी दिखादो ।" शरीर कथा में रहता मना राम इधर उधर वह को चिंता में लगे रहते । मुनियो ! स्त्रियों के साथ में यदि कुछ सुख भी है तो क्षण भर के लिय जिह्वोपस्थ का सुख है और नहीं तो चिन्ता ही चिन्ता है । लड़की लड़के हुए तो उनके लालन की चिन्ता । लड़की लड़के हुए तो उनके लालन पालन की चिन्ता । महाराज ! आप लोग कभी उस चिन्ता का अनुभव कर ही नहीं सकते जो सयानी लड़की के पिता को होती है । लड़की बोलती नहीं । वह संकोच के कारण सम्मुख भी कम आते हैं । किन्तु पिता भीतर घुरता रहता है । रात्रि में उसे नींद नहीं आती । भोजन उसे अच्छा नहीं लगता किसी प्रकार योग्य वर लड़की के लिये मिले । यही दुःख उसे पीड़ा देता रहता है जिनसे बातें करना पाप है, उनसे विनय करनी पड़ती है उनकी १० बातें सुननी पड़ती हैं । बेटी का बाप होने से सबके सम्मुख सिर नीचा रखना पड़ता है । घर में घुसते ही घरवाली कहती—'तुम कुछ चिन्ता नहीं करते लड़की कितनी सियानी हो गई है । पास पड़ोसी मुझे थूकते

हैं। न कहने के योग्य बातें कहते हैं। तुम विचार ही नहीं करते।' क्या कहें उस समय स्त्री पर बड़ा क्रोध आता है, यह कहती है तुम्हें चिंता नहीं मैं चिंता में घुला जाता हूँ घर मिट्टी का तो बनाया नहीं जाता। ऐरे गहरे पच कल्यानी के हाथों तो लड़की दी ही नहीं जा सकती अच्छा घर हो, कुलीन घर हो। वह मिले तो विवाह हो। विवाह को चाहिये धन। धन मेरे पास है नहीं। माँगने से धन कौन देता है। धन देने की वस्तु भी नहीं। जिसे प्राणों की बाजी लगाकर बड़े बड़े कष्ट से पैदा किया जाता है, उसे यों ही स्वेच्छा से कौन दे सकता है। धन तो दबने से ही दिया जाता है। मुझ में बल नहीं, तेज नहीं प्रभाव नहीं लोगों को प्रसन्न करने की कला नहीं फिर मुझे धन कौन दे।" इस प्रकार विवाह के पहिले ही माता पिता को कितनी चिंता होती है। विवाह होते ही माता पिता को भूल जाते हैं। एक दूसरे को सुखी करने की स्वयं सुखी रहने की चेष्टा करते हैं, किन्तु सुख कहाँ। स्त्री अत्यंत सुंदरी हुई तो उस की रक्षा की चिंता कुरूपा हुई तो स्वयं भी निराशा और लोगों की विडम्बना सहनी पड़ती है वह अलग गुणवती हुई तो उसके संकेत पर नाचना पड़ता है। निर्गुण हुई तो रात्रि दिन झीकना पड़ता है, आज्ञाकारणी हुई तो उसके मोह में फँसना पड़ता है, लड़ाकू हुई तो नित्य झगड़ा झंझट, मारपीट का सामना करना पड़ता है। सारांश कि सुख किसी प्रकार नहीं। रोगिणी हुई तो रात्रि दिन उसकी सेवा सुश्रूषा में लगा रहना पड़ता है। मंडन प्रिया हुई तो वस्त्रा भूषणों के जुटाने की ही चिंता बनी रहती है। कर्कशा हुई तो उसका वियोग खलने लगता है। इसलोक में रहने से

लोक लाज का भी ध्यान रखना ही पडता है। साराश यह कि यह स्त्री पुत्रसग ऐसा है कि सर्वत्र त्रास है, स्त्री से किस को सुख मिला। साधारण लोगों की बात छोड दीजिये ईश्वरों की ही बात लीजिये। शिव जी ने सोचा सती के साथ सुख से समय बितावेंगे। सती आई कुछ दिन रहीं उन्होंने आते ही शिव जी की स्वतत्रता म विघ्नडाला बोलीं—मुझे मेरे बाप के घर ले चलें।" लाख मना किया किन्तु त्रिया हठ ही जा ठहरी नहीं मानी। भोले बाबा कुछ कडे पड गये। सती रानी तुनक कर अकेली ही भाग गई वहाँ बाप ने बात भी न पूछी आध में जल मरी। अब तो शिवजी की बुरी दशा होगई। मृतक सती के शव को पीठ पर लाद कर पागलों की भाँति नाचने गाने और रोने लगे। तीनों लोक काँप उठे। विष्णु भगवान् ने बाचतीचवा करके उस सती शव के टुकडे टुकड करके फेंक दिये। कुछ जलादिये भोले बाबा नगे हो गये सती का चिता भस्म को लगाकर शोक में रोते रहे।

विष्णु भगवान् को लक्ष्मी जी से कुछ कम दुख नहीं हुआ है। जालधर भी समुद्र म से उत्पन्न हुआ था और लक्ष्मी जी भी उसी में से निकली थीं। जलधर सब को पीडा देने लगा। विष्णु भगवान् उसे मारने चले। लक्ष्मी जी मार्ग रोककर खडी हो गईं। देखो, महराज! तुमने मेरे भाई पर हाथ छोडा तो फिर या तो मैं ही हूँ या तुम ही हो।"

क्या करते बिचारे बोले—"अच्छी बात है नहीं मारूँगा! बहू के पीछे साले से हारना पडा। फँस गये। बोले—'वर माँग भैया।" वह बोला—" तुम मेरे घर में ही रहो। पहिले घर ज माई बन कर समुद्र में रहते थे अब साले की राजधानी में रहना

पड़ा। बहूरानी जैसे नचावे वैसे नाचना ही पड़ता है। फिर वृन्दा के कारण जो कुछ हुआ भगवान् को जैसा जैसा क्लेश सहना पड़ा सभी जानते हैं। बात बढ़ाने से क्या लाभ, लक्ष्मी जी अब गले बँध गई, तो भगवान् को निभाना ही पड़ता है, नहीं तो उस चंचल महिला से उन्हें कोई सुख नहीं। उलटे नित नई बातें सुननी पड़ती हैं। अहल्या के साथ गौतम जी की जैसी दुर्दशा हुई सभी जानते हैं। कश्यपजी की इन दश पुत्रियोंने कैसी छीछालेदर हुई। चन्द्रमा को बहूरानी के पीछे ही कोढ़ी होना पड़ा। कोई कह दे बहू से किसी को सुख हुआ है ब्रह्माजी को अपना शरीर ही वाणी देवी के पीछे छोड़ना पड़ा। किन्तु ऐसी अन्ध परम्परा चल गई है, कि इतना सब होते हुए भी कोई मानता नहीं विवाह किये बिना।

यही दशा स्त्रियों की है। इन पुरुषों ने स्त्रियों के साथ कौन सा अच्छा वर्ताव किया है। अपने स्वार्थ के लिये ये स्त्रियों से सब काम लेते हैं, यहाँ तक की उन्हें अवसर आने पर गिरवी रखदेते है। जिस सीता ने अपना सर्वस्व श्रीराम के चरणोंमें समर्पित कर दिया। उसे श्रीराम ने एक धोबी की बात पर घर से उसी प्रकार निकाल फेंका जिस प्रकार दूध में से मक्खी निकाल दी जाती है। अहल्या पर भूल अपराध बन गया, उसे पत्थर ही बना दिया। हजारों वर्ष पाषाण प्रतिमाबनी पड़ी रही। सूर्पणखाने प्रेम का प्रस्ताव किया था उससे बदले उसे नकटी बूची बना दिया। इसलिये न स्त्री से पुरुष को कभी सुख मिला न पुरुष को स्त्री से। मिले भी कैसे ? सुख तो चैतन्य में है। जिस रूप को देखकर स्त्री पुरुष पर पुरुष स्त्री पर परस्पर में आसक्त होते हैं वह रूप तो बाह्य है, मांस, मेदा, रक्त हाड़मांस के कारण है।

जिन नेत्रों पर मनुष्य मरते हैं उनमें है क्या बाल, हाड, मास, रक्त, स्तन मास के पिंड हैं। इनमें जो सुख का अनुभव करते हैं वे भूल करते हैं बालू में घी खोजते हैं। इसी लिये स्त्री पुरुषों के प्रसंग में सुख नहीं दुख ही दुख है। जो इस शरीर को अनित्य क्षणभंगुर समझकर आत्मा से प्रेम करते हैं वे सुखी होते हैं।

श्रीरामचन्द्र जी का सीता जी से आत्मिक ही सम्बन्ध था। उसमें वियोग की म भावना हा नहा। शरीर का सम्बन्ध तो अनित्य है, क्षण भगुर है दु ख दायी है। इसी बात की शिक्षा देने के लिये श्रीरामचन्द्रजीने यह विरहनाट्य किया नहीं तो वास्तव मे देखा जाय तो उन सुखस्वरूप भूमा पुरुष को क्या दुख क्या सुख ? कैसा वियोग कैसा सयोग। वे तो सच्चिदान द घन नित्य, शुद्ध बुद्ध मुक्त तथा आन द की राशि हैं। सीता तो सूर्य और प्रभा के समान सदा उनके साथ ही है।

यह सुनकर शौनक जी ने कहा— हाँ सूतजी! यह सब भगवान् की लीला है, क्रीडा है अब आगे क्या हुआ उस कथा को सुनाइये।

सूतजी आह भर कर बोले—'अब महाराज! आगे क्या हुआ। आगे तो सब खेल ही समाप्त हो गया। अच्छा सुनिये आगे की कथा कहता हूँ।

छप्पय

सुनि विधि रघुवर शोक लोक अपने तें आये।
करि विनिति बहु भाँति सीय सर्वस्व मनाये॥
त्यागि तुरत सब शोक बात ब्रह्मा की मानी।
'यज्ञ पूर्ण करि गये दुखित रोवत रजधानी॥
सिय वियोग हिय धारि कैं, राज काज सबई करत।
भूले भटके से रहत, नयन नीर भर भर झरत॥

प्रभुलीला संवरणकी प्रस्तावना

(७०३)

तत ऊर्ध्वं ब्रह्मचर्यं धारयन्नजुहोत्प्रभुः ।
त्रयोदशाब्दसाहस्रमग्निहोत्रमखण्डितम् ॥ *
(श्रीभा० ९ स्क० ११ अ० १८ श्लो०)

छप्पय

बरष सहसदशतीनि राजऋषि राम बिताये ।
एक दिवस मुनि विकट निकट रघुवरके आये ॥
लखन आगमन कह्यो राम मुनि तुरत बुलाये ।
इत उत शंकित चकित निरखि मुनि वचन सुनाये ॥
अति रहस्य मय बात इक, कहहुँ ताहि प्रभु चित धरहिँ ।
बीच आइ कोई सुनहिः ताको निश्चय वध करहिँ ॥

कालस्वरूप भगवान्‌का विधान पहिलेसे ही बना रहता है। कब तक इस प्राणीको पृथिवी पर रहना है, कब इसका किस स्थानमें, किसके द्वारा, कैसे किस समय पर अंत होना है। ये बातें सहसा नहीं होजाते। जन्मसे पहिले प्रारब्ध बन जाती हैं। प्रभु भी अवतार लेनेके पूर्व ही निश्चय कर लेते हैं, कितने दिन अवनि पर रहना है कहाँ कहाँ पर क्या कार्य करना

---

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! इसके अनन्तर भगवान्‌ने तेरह हजार वर्षों तक अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते हुए निरन्तर अग्निहोत्र किया।"

हैं । कब अपनी लीलाको संवरण करना है । ये सब तो उनकी सुनिश्चित योजनायें हैं । जैसे बड़े आदमियोंका भोजनका शयनका, भजन पूजनका सब समय बँधा रहता है । उन्हें स्मरण रहता है, फिरभी सेवकोंका यह कर्तव्य होता है, वे स्वामीको स्मरण दिलाते रहें । क्यों कि सेवा करनाही तो सेवकका धर्म है । सेवक आज्ञा नहीं देता, शिक्षा नहीं देता आग्रह नहीं करता । नम्रता पूर्वक जता देता है । स्वामी इससे सेवक पर प्रसन्न ही होता है । भगवान्को जो करना होता है, उसकी भूमिका पहिले ही बाँधते हैं । जो नाच नाचना होता है, उसके अनुसार रूप पहिलेही बना लेते हैं । इसीको कार्यकी प्रस्तावना कहते हैं ।

सूतजी शौनकादि ऋषियोंसे कहरहे हैं—"मुनियो ! सीताजी भूविवरमें समा गईं । स्वायंभूब्रह्माजीके कहनेसे सच्चिदानंदघन श्रीराम शान्त हुए वे अवधपुरीमें आकर राज्य करने लगे । शत्रुघ्नजी तो मथुरामेंही रहते थे । उनके लिये भगवान्की ऐसी ही आज्ञा थी शेष लक्ष्मण और भरतजी अयोध्यामेंही रहकर उत्तम श्लोक श्री रामचन्द्रजीकी उपासनामें निरंतर लगे रहते थे । भगवान् नित्यही सावधानीके साथ अग्निहोत्र करते थे । उनकी अग्निहोत्रकी अग्नियाँ सदा पूजित और सुसज्जित रहती थीं । प्रजाके साथ सदा वे न्याय किया करते थे । प्रजाकी प्रसन्नता के लिये वे सब कुछ करनेको तत्पर थे । त्रेतायुगमें वर्णाश्रम धर्मकाही प्राधान्य था । उस समय घोर तप करना ब्राह्मण और क्षत्रियोंकेही लिये विहित समझा जाता था । सत्युगमें केवल ब्राह्मणही तप कर सक्ते थे । क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र स्वधर्म पालन करते हुए अपने अपने कर्मोंमें लगे रहे । त्रेतामें ब्राह्मण क्षत्रिय दोनोंको ही तपका अधिकार प्राप्त था । द्वापरमें वैश्यों

को भी तप करनेकी छूट थी, कलियुगमें सभी वर्णोंके लोग तप करसकते हैं। यों सदाचार पूर्वक रहकर भगवान्की भक्ति तो सभी कालमें सभी युगोंमें सभी वर्ण, सभी आश्रमके स्त्री पुरुष करसकते हैं। ये विधान ऐसे ऐसे तपके लिये ही हैं। जिनके द्वारा मनुष्य प्राकृत नियमोंका उल्लङ्घन करके सशरीर स्वर्गादि लोकोंको जासकते हैं। युगके विरुद्ध आचरण करना युगावतारके विरुद्ध आचरण करना है। अवतारोंके अनेक भेद हैं। कोई कल्पावतार होते हैं, कोई मन्वन्तरावतार, कोई युगावतार कोई कोई अंशावतार, कलावतार आवेशावतार तथा बहुतसे करणावतार होते हैं। चारों युगोंमें सदा उन उन युगोंके अवतार होते हैं। जैसे कपिलजी सत्ययुगके युगावतार हैं। जब जब सत्ययुग आवेगा कपिल भगवान् अवतरित होकर ज्ञानका प्रसार प्रचार करेंगे। श्री राम त्रेताके युगावतार हैं। जब जब त्रेतायुग आवेगा तब तब श्री राम अवतरित होकर अवनिपर वर्णाश्रम धर्मकी मर्यादाको स्थापित करेंगे। सत्ययुगमें धर्म अपने चारों पैरोंसे पूर्ण स्वस्थ रहता है। तप, शौच, दया और दान ये ही धर्मके चार पैर हैं। त्रेतामें धर्मके तीनही पैर रह जाते हैं। तप कम हो जाता है। द्वापरमें दया और दान दो ही पैर अवशिष्ट रहते हैं। कलियुगमें केवल दान या सत्य एक ही पैर रह जाता है वह भी अंतमें नष्ट होजाता है। इसीके अनुसार अवतार भी होते हैं। सत्ययुगमें तपकी प्रधानता होती है, तप ही उस युगका प्रधान धर्म है अतः भगवान् तपस्वी कपिलके रूपमें अवतार लेकर तपका प्रचार प्रसार करते हैं। त्रेतायुगमें वर्णाश्रम धर्मकी मर्यादा पवित्रताकी आवश्यकता होती है। इसी लिये मर्यादा

पुरुषोत्तम राम अवतार लेकर दृढ़ताके साथ मर्यादाका पालन करते हैं। मर्यादा भङ्ग न हो, इसके लिये न करने योग्य कार्योंको भी करते हैं। सीताजीके त्यागमें केवल मर्यादाकी ही तो प्रधान कारण है। नहीं तो, वे क्या जानते नहीं थे सती सीता परम पवित्र हैं, किन्तु मेरे आचरणसे अन्य स्त्रियोंके सम्मुख बुरा आदर्श उपस्थित न हो इसी डरसे शुद्ध होने परभी सीता-को त्याग दिया और उसके लिये कठोर बन गये। द्वापरमें धर्मके धर्मके तप और शौच ये दो पाद निर्बल बन जाते हैं, केवल दया दान दो पैर ही सबल होते हैं। उस समय वैदिक यज्ञ यागोंका विस्तार कम होजाता है। तान्त्रिक पूजा पद्धतिका प्रचार अधिक होता है। लोगोंकी बुद्धि अल्प हो जाती है वे अधिक ज्ञानको धारण करनेमें असमर्थ हो जाते हैं, इसी लिये भगवान् व्यास बन कर वेदोंका विभाग करते हैं, पुराणोंका प्रचार करते हैं। व्यास देव द्वापर युगके अवतार हैं। प्रत्येक द्वापरमें व्यासजीका अवतार होता है। कलियुगमें तप, शौच तथा दया ये धर्मके तीनों पाद नष्ट प्रायः हो जाते हैं

करते हैं। उनमें सीताजीका परित्याग अत्यन्त ही कठोर है। ऐसा ही एक निर्दयतापूर्ण कार्य श्री रामने एक शूद्र तपस्वीकी हत्या करके किया था।

शौनकजीने पूछा—"सूतजी! भगवान्ने शूद्र तापसकी हत्या क्यों की?"

इसपर सूतजी बोले—"महाराज! सुनिये मैं इस कथाको संक्षेपमें सुनाता हूँ। एक दिन एक तेजस्वी वृद्ध ब्राह्मण अपने एक मृतक पुत्रको लेकर श्री रामचन्द्रजीके द्वार पर आया और रोता २ बोला—"राघव! मेरा यह छोटा सा बच्चा मेरे सामने ही अकालमें काल कवलित कैसे हो गया। बापके सम्मुख बेटा का मरना तो पापका फल है। मैंने तो अपनी स्मृतिमें कभी कोई पाप किया नहीं। निश्चयही यह राजाके पापका परिणाम है। जिस राजाके राज्यमें अधर्म अन्याय होता है, उसीके राज्यमें अकाल मृत्यु आदि मर्यादा हीन काय होते हैं। इसलिये आप या तो मेरे पुत्रको जिलादें, नहीं तो मैं अपनी स्त्रीके साथ आपके द्वार पर अनशन करके प्राणोंका परित्याग करदूँगा। तब तुम ब्रह्महत्याको लेकर सुखी होना।"

इतना सुनतेही भगवान् घबरा गये। उन्होंने तुरन्त आठ वेदज्ञ विधान वेत्त विद्वानोंकी एक निर्णय समिति बनाई। मार्कण्डेय, मौद्गल्य, वामदेव, कश्यप, कात्यान, जाबालि, गौतम और नारद ये आठ उस समितिके सदस्य थे। भगवान्ने तुरन्त ही उनसे अपना सहेतुक निर्णय देनेकी प्रार्थनाकी। उस समितिके संभवतया नारदजी ही सभापति थे। अतः सबसे पूँछ ताँछ कर उन्होंने निर्णय दिया—"राघव! आपके राज्यमें युगधर्मके विरुद्ध एक शूद्र सशरीर

स्वर्ग जानेके लिये उग्र तपस्या कर रहा है। उसीकी घोर तपस्याके कारण वातावरण अशांत होगया है। वह शूद्र तपस्वी कलियुगमें ऐसी तपस्या करता तो न्याय युक्त था। जैसी तपस्या वह अब कर रहा है वैसी यदि सत्ययुगमें क्षत्रिय भी करता तो वह दंडनीय समझा जाता। रामचन्द्र! समय समयकी रागिनी ही शोभा देती है। जाड़ेमें ही कंवल और ऊनी कपड़े सुखकर होते हैं। जेष्ठ वैशाखकी कड़ी धूपमें इन्हें पहिने तो कष्ट होगा। देखने वालोंको भी बुरा लगेगा। राजा प्रजासे कर लेता है, अत: उसके पुण्य पापका भी भागी होता है। इसलिये यह आपकाही दोष समझा जायगा। उस शूद्रको घोर तपसे निवृत्त करें न माने तो उसे मार दें। तभी यह बालक जीवित हो जायगा।"

इतना सुनते ही भगवान्ने तुरंत अपना वायुयान पुष्पकविमान मंगाया और उस पर चढ़ कर शरसे सम्बूकके समीप पहुँच गये। वह एक सुंदर सरोवरके समीप उलटा लटक कर घोर तप कर रहा था। रामचन्द्रजीने उसका परिचय पूछा उसने सब बात सच सच बता दीं श्रीरामने कहा—"भैया! यह युगधर्मके विरुद्ध है।" उसने कहा—"राघव! मैं सत्यप्रतिज्ञ हूँ, झूठ नहीं बोलता मेरी मेरी हठ है मैं बिना मरे इसी शरीरसे सीधा स्वर्ग जाना चाहता हूँ।" रामचन्द्र अब क्या करते। तुरन्त उन्होंने चमचमाता खड्ग निकाला। हाथ काँपने लगे। भगवानने कहा— अरे हाथ! जब तैंने दोष रहित सीताको लोकरंजनके लिये सदाको निकल दिया तब फिर तू इस तपस्वी पर क्यों दया करता है, तू तो अत्यन्त कठोर है।" इस प्रकार मनको समझाकर भगवान् मनमें सोचने लगे—"ये लोग इसे तपस्या करके स्वर्ग जानेके विरुद्ध हैं तो तपसोको सशरीर स्वर्ग न जाने

दें। मैं इसे स्वर्गसे भी बढ़ कर मोक्ष देता हूँ। मेरे अस्त्रसे मरकर सभी मेरे परमधामको ही जाते हैं। इसे मैं तुरन्त ही अपने धामको भेजता हूँ। यह सोचकर खड्गसे उसका सिर धड़से पृथक् कर दिया। शम्बूक भगवन्के भुवन मोहन रूपके दर्शन करते करते तनु त्याग कर भगवद्धामको चला गया।"

यह सुनकर शौनकजीने पूछा—"सूतजी सबरी भी तो शूद्रा थी। उसे भगवान्ने क्यों नहीं मारा इस विचारे शूद्रने तो कोई पाप भी नहीं किया था। तपस्या ही कररहा था। भगवान्का भजन ही तो करता था। ऐसा अन्याय भगवान्ने क्यों किया ?"

यह सुनकर सूतजी हँस पड़े और हँसते २ बोले—"अब महाराज! न्याय अन्याय तो ये भगवान् ही जानें। क्या न्याय है क्या अन्याय है। परन्तु आप ध्यान पूर्वक देखें। बहुतसी बातें किसी समय अच्छी समझी जाती हैं, वे ही दूसरे समय बुरी। पहिले राजा लोग द्यूत खेलना धर्म समझते थे। युद्धको और द्यूतको कोई ललकारे तो वहाँ जाना धर्म समझते थे। धर्मके अवतार युधिष्ठिर इसी मान्यताके पीछे बन बन भटकते रहे। आज यदि कोई शकुनिकी भाँति अन्यायसे पासे फेंक कर किसी का धन अपहरण करले तो उसे कारावासमें कालयापन करना होगा। मध्ययुगमें विदेशोंमें धर्माचार्यके विरुद्ध बातें कहने वाले जीवित जला दिये जाते थे। आज उनके मुख पर विरोध करें कोई कुछ कह नहीं सकता। इसी प्रकार युगधर्म सदासे रहा है, अब भी है और आगे भी रहेगा। सबरी नीचे अग्नि जलाकर उलटी लटक कर कायक्लेश युक्त तपस्या तो करती ही नहीं थी। वहतो दीनता धारण करके भगवान्की भक्ति करती थी। उनके नामका स्मरण करती है। मनुष्य ईर्ष्या धन और प्रतिष्ठाके लिये

ही किया करता है। अच्छी अच्छी कुलीन स्त्रियाँ हमारे ही वर्ग-लोगोंको मिलें सम्पूर्ण भूमिके उपभोक्ता हम ही हों, सबसे श्रेष्ठ हम ही समझे जायँ। ये भाव, प्रभावशाली व्यक्तियोंके होते हैं। जो इनमें विघ्न डालता है भाग घटाना चाहता है, अपना भी अधिकार जमाना चाहता है तो दूसरे दलके लोग उसका अन्त करदेना चाहते हैं। उन्हें पकड़ कर कारावासमें बन्द करदेते हैं। बहुतोंके प्राण ले लेते हैं। जिसने दीनता धारण करली है, अपने को चराचरका सेवक माने बैठा है, उससे कौन विरोध करेगा। इसीलिये भगवद्भक्तिमें सभीका अधिकार है। सब कालमें सब दशाओंमें सभी लोग सदा भगवद्भक्ति कर सकते हैं। स्वर्ग तो एक प्रकारका प्रतिष्ठा है। वह भी बन्धन है। भगवान् तो बन्धन को काटने वाले हैं। अतः शम्बूकको मारकर उस ब्राह्मणको भी प्रसन्न कर दिया और उसका भी कल्याण कर दिया। भगवान्‌के सभी कार्यमें सभी का हित छिपा रहता है। हम अपने अज्ञानवश उसे अनुभव नहीं करते।"

"प्रभो ! एक कुत्ता आपके दर्शन करना चाहता है। उसका एक अभियोग है।"

भगवानने कहा—"लक्ष्मण ! तुरन्त उसकुत्तेको बुला लाओ। जो राजा दुखियोंके दुःख नहीं सुनता, उसे नरक जाना पड़ता है।"

यह सुनकर लक्ष्मण तुरन्त गये और उस कुत्तेको साथ लेकर आये। कुत्ते ने रोते रोते मानवी भाषामें कहा—"प्रभो ! इस ब्राह्मणने मुझे बुरी तरहसे मारा है। मारते २ मेरी कमर तोड़ दी है। मैंने न उसका कोई अपराध किया, न उसकी किसी वस्तु में मुँह ही डाला।"

भगवानने उसे बुलवाया और उससे पूछा। उसने सच सच कह दिया—"प्रभो इसने मेरा कोई अपराध तो किया नहीं था, यह मेरे सामने जीभ निकाल कर साँस ले रहा था। मुझे किसी बात पर क्रोध आरहा था, वह मैंने इसके ऊपर निकाला। एक लाठी मार दी, कमर टूट गई होगी। इसके लिये आप मुझे जो दंड दें वह स्वीकार है।"

यह सुनकर भगवान् एक निर्णय समिति बनाने लगे, कि यह समिति जो दंड निश्चय करे वह इस ब्राह्मणको दिया जाय। इतनेमें ही कुत्ता बोला—"प्रभो आप मेरी प्रथम सम्मति सुन लीजिये, तब निर्णय समिति नियुक्त कीजिये। मैं इसके लिये एक दंड बताये देता हूँ।"

भगवानने उत्सुकताके साथ कहा—"हाँ, हाँ, अच्छा तुम ही बताओ इसे क्या दंड दिया जाय ?"

कुत्ता बोला—"प्रभो ! इन्हें अमुक मठका मठाधीश महन्त बना दिया जाय।"

यह सुनकर सभी हसने लगे और बोले— यह दड हुआ या पुरष्कार। उस मठम लाखोंकी सम्पत्ति है। सहस्रों रुपयोंकी आय है उसका महन्त बनकर तो यह सुखोपभोग करेगा।"

कुत्ते ने कहा—"यही तो महाराज में चाहता हूँ। पूर्व जन्ममें में भी एक मठका मठाधीश महन्त था। बडे सुदर सुदर माल उडाता था। चेले चेलियोंसे चमर ढुवावता था। घर घर खाता फिरता था और छिप कर पाप करता था। उसीके परिणाम स्वरूप मेरी कमर तोडी गई। टुकडे २ को तरसता हूँ। महन्त बननेमें सुख कहाँ। वडा बनना बहुत बुरा है। बडे बननेमें बडा कष्ट है। पहिले पानीमे भिगोते हैं फिर फूलते हैं, फिर उनकी चमडी उधेली जाती है, शिल बट्टे से पीसे जाते हैं। गरम तेलमें तले जाते हैं, तब जाकर बडे बनते हैं। लोग उन्हें गप्पसे खाजाते हैं। देखनेमें इन बडे पेट वालोंको सुख है। वास्तवमें ये बडे दुखी हैं। आप इन्हे मठाधीश बना दें।"

भगवान्ने कुत्तेका निर्णय स्वीकार किया और उसे बडी धूमधामसे हाथी पर चढा कर एक बडे मठका मठाधीश बना दिया। इस प्रकार भगवान नित्य नई नई लीलायें करते रहते थे।

एक दिनकी बात है, एक महर्षि राजद्वार पर आया। वह बडा ही तेजस्वी, प्रकाश मान्, प्रभावशाली तथा गभीर था। आते ही उसने गभीरताके साथ लक्ष्मणसे कहा—"कुमार! मैं महामहिम परम तेजस्वी महर्षि अतिबलका दूत हूँ। श्रीरामचन्द्रजी-से मिलना चाहता हूँ। महाराजकी मेरे लिये क्या आज्ञा है आप शीघ्र ही उनसे जाकर निवेदन करें।"

"बहुत अच्छा, ब्रह्मन! मैं अभी जाता हूँ" इतना कह कर

लक्ष्मण तुरन्त राजारामचन्द्रजीके निकट गये और बोले—"प्रभो ! महर्षि अतिबलके दूत एक परम तेजस्वी तपस्वी आपसे मिलने आये हैं, उनके लिये क्या आज्ञा होती है ?"

महर्षिका आगमन सुनकर श्रीरामने कहा—"तुरन्त ही उन ऋषिको मेरे समीप ले आओ।"

आज्ञा पाते ही लक्ष्मणजी पुनः आये और आदर सहित बोले—"पधारिये महाराज आपको बुला रहे हैं।"

लक्ष्मणकी बात सुनकर अतिबल महर्षिके शिष्य उनके पीछे पीछे राजमहलमें गये। श्रीरामचन्द्रजीने उठकर उनका आदर किया। पाद्य अर्घ्य देकर उनकी पूजा की। सुवर्ण के सिंहासन पर सादर बिठाकर सरलताके साथ श्रीरामचन्द्रजीने कहा—"ब्रह्मन् ! आपका स्वागत है। मैं आपका अभिनन्दन करता हूँ। मेरी यह जाननेकी उत्कट इच्छा है, कि महर्षि अतिबलजीने मेरे लिये क्या सन्देश भेजा है। आप जैसे तेजस्वी तपस्वीको उन्होंने दूत बना कर भेजा है, इससे तो प्रतीत होता है कार्य कोई बड़ा ही महत्वपूर्ण है।"

महाराज रामचन्द्रकी बातें सुनकर महर्षिने कहा—"हाँ, प्रभो ! मैं एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण आवश्यक कार्यसे आया हूँ आप यदि सुननेको उद्यत हों तो कहूँ ?"

भगवान्ने कहा—"हाँ कहिये।"

महर्षिने रहस्यभरी दृष्टिसे इधर उधर देख कर कहा—"बात बहुत ही गुप्त है। वह सर्वथा एकान्तमें ही कही जासकती है। आप प्रतिज्ञा करें कि हमारी आपकी बातको कोई न सुनेगा और हमारे आपके वार्ता करते समय कोई बीचमें आवेगा यदि कोई हमारी बात सुने या हमारे आपके बीचमें आजाये, तो आप

उसका वध करेंगे। इतना आश्वासन मिलने पर ही मैं निवेदन करूँगा।"

यह सुनकर भगवान्ने लक्ष्मणसे कहा—"लक्ष्मण! द्वार परसे द्वारपालको हटादो। तुम स्वयं द्वारपालका काम करो। देखो, सावधानीसे काम करना। जब तक हम और मुनि बात करते रहें तब तक भीतर कोई आने न पावे। यदि कोई भीतर आगया, तो मैं उसका निश्चय ही वध करदूँगा। मैं मुनिके सम्मुख सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ।"

लक्ष्मणजीने सिर झुकार भगवान्की आज्ञा सिरोधार्य की। वे भगवान्को प्रणाम करके चले गये। द्वार पर जाकर द्वारपाल को हटा दिया और स्वयं धनुष बाण धारण करके बड़ी तत्परतासे द्वारकी रक्षा करने लगे।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! वह मुनि और कोई नहीं था, स्वयं साक्षात् काल ही मुनिका वेष बनाकर श्रीरामको परमधाम पधारनेकी स्मृति दिलाने आया था। एकान्त समझकर कालदेवने अपना अभिप्राय प्रकट करना आरम्भ किया।

छप्पय

पण प्रभु करि स्वीकार द्वारपै लखन बिठायो।
पुनि मुनि सन प्रभु कह्यो काल किहि कारन आयो॥
समय समुझिके काल वेष मुनिको धरि आयो।
प्रभु आयसु सिर धारि ब्रह्म सन्देश सुनायो॥
अंशनियुत अवतार धरि, भार उतारयो अवनिको।
नियत काल जितनो करयो, भयो पूर्ण सो रावनको।

लक्ष्मणजीका श्रीरामद्वारा परित्याग

(७०४)

न वै स आत्माऽऽत्मवतां सुहृत्तमः
सक्तस्त्रिलोक्यां भगवान् वासुदेवः।
न स्त्रीकृतं कश्मलमश्नुवीत
न लक्ष्मणं चापि विहातुमर्हति ॥ *
श्रीभा० ५ स्क० १९ अ० ६ श्लो०

छप्पय

अब इच्छा यदि होइ नाथ! निज धाम पधारें।
करि नरतनु संवरन नित्य लीला विस्तारें ॥
कृपायतन सुनि कालकथन बोले मृदु बानी।
तिरोभाव तिथि काल प्रथम हम सबने जानी ॥
कही कालतें प्रभु करहुँ, होवे आतें जगत हित।
तबई आये द्वारपै, क्रोधी, दुर्वासा कुपित ॥

और चाहे कोई प्रमाद भले ही करे, किन्तु काल कभी प्रमाद नहीं करता। वह अप्रमत्त भावसे अपना कार्य करता रहता है। सब संसार कालके अधीन है, कालके विरुद्ध कोई भी कुछ

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! आत्मवान् धीर पुरुषोंके आत्मस्वरूप परम प्रियतम भगवान् वासुदेव तीनों लोकोंकी किसी भी वस्तु में आसक्त नहीं हैं। अतः न तो उन्हें जानकीके वियोगका दुःख ही होसकता था और न वे अपने भाई लक्ष्मणजीका परित्याग ही करसकते थे।

करनेमें किसी प्रकार भी समर्थ नहीं हो सकता। काल समस्त बलवानोंसे श्रेष्ठ बलवान है। सब शासकोंसे श्रेष्ठ शासक है। उसकी आज्ञाका कोई उल्लङ्घन नहीं कर सकता। काल भगवान्का ही स्वरूप है। भगवान्का इच्छासे ही कालन करता है। भगवान् के रुखको ही देख कर व्यवहार करता है। भक्त और भगवान् दो को छोड़ कर सपूर्ण ससार कालके अधीन हैं।

सूतजी कहते हैं—' मुनियो ! एकान्त पाकर मुनिरूपमें आया हुआ काल भगवान्से कहने लगा। लक्ष्मणजी द्वार पर बैठे पहरा दे रहे थे कि काल और भगवान्की गुप्त बातको कोई सुनने न पावे न इन दोनोंकी वार्ताके बीचमें उनके समीप जाने पावे।

कालने कहा— प्रभो ! मैं काल हूँ। ब्रह्माजीकी आज्ञा से आपकी सेवामें आया हूँ। ब्रह्माजी ने कहा है—"आपने मुझे सृष्टि कार्य में नियुक्त किया है अतः मैं आपकी आज्ञाका पालन कर रहा हूँ। आप रावणादि राक्षसोंके अन्यायोंसे पीडित पृथिवीका भार उतारने कुछ समयका सकेत करके अवनि पर अवतरित हुए थे। जितने समयका आपका सकेत था, वह पूरा हो रहा है। हम आपसे आग्रह नहीं करते। न आज्ञा ही देते हैं। आप तो कालके भी काल हैं, केवल स्मरण मात्र दिलाते हैं। यदि आपकी इच्छा हो, अपना नरलीलाको संवरण करके नित्य सनातन धाममें स्थित होकर नित्य क्रीडा करें। यदि कुछ दिन आपकी और इच्छा हो, तो आप और प्रजाको सुख दें।"

भगवानने कहा— कालदेव ! मुझे स्मरण है। ब्रह्माजी जैसा चाहते हैं वैसा ही होगा। मैं अब अपनी लीलाको सवरण करने ही वाला हूँ।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इधर तो काल और भगवान्‌के बीचमें ये बातें हो रहीं थी, उधर द्वार पर. महा क्रोधी रुद्रावतार भगवान् दुर्वासाजी अपनी जटाओंको बखेरे हुए आये। उन्हें देखकर लक्ष्मणजीने उठकर श्रद्धा भक्ति सहित उनके चरणोंमें प्रणाम किया।"

अधिकारके स्वरमें मुनि दुर्वास बोले—"सौमित्रे! मैं राजा रामसे मिलना चाहता हूँ। तुम उन्हें तुरन्त जाकर मेरे आनेकी सूचना दो।"

लक्ष्मणजीने अत्यन्त ही विनीत भावसे मधुर वाणीमें कहा—"भगवन्! श्रीराम इस समय किसी अत्यन्त आवश्यक कार्यमें व्यस्त हैं। जो भी आज्ञा हो आप मुझसे कहें। मैं सब सेवा करनेको प्रस्तुत हूँ।"

डाँट कर दुर्वासामुनिने कहा—"तुम बड़ी अशिष्टता कर रहे हो। मैंने कहतो दिया। मुझे रामसे ही काम है। तुमसे मैं नहीं कह सकता। जाओ! रामको मेरा आगन जताओ।"

काँपते हुए. लक्ष्मण बोले—"प्रभो! आप क्षणभर ठहर जायँ। महाराज एक अत्यन्त निजी कार्यमें एकान्तमें हैं।

ओठ काट कर दाँत कटकटाते हुए, लाल लाल आखें निकाल कर अत्यन्त क्रोधके साथ बोले—"क्षत्रियके छोकरे! प्रतीत होता है, तू मेरे तप, तेजसे सर्वथा अनभिज्ञ है। तभी तू ऐसी धृष्टता कर रहा। याद रख मेरा नाम दुर्वासा है। शाप ही मेरा अस्त्र है। मेरी तनिकसी अवहेलना करने पर इन्द्रको श्रीहीन होकर मारे मारे फिरना पड़ा था। तू मेरे सामने उत्तर दे रहा है। यदि तू अभी रामके पास न गया तो तेरे राज्यको तेरी समस्त पुरीको तेरे बाल बच्चोंको, तुझे और रामको सभीको मैं शाप

देकर भस्म करता हूँ।"

यह सुनकर लक्ष्मणजी डर गये। उन्होंने बलाबल पर विचार किया। वे सोचने लगे—'इन क्रोधी मुनिके लिये कुछभी असम्भव नहीं। ये चाहें सो कर सकते हैं। यदि मैं नहीं जाता, तो ये सम्पूर्ण राज्यको भस्म कर देंगे। जाता हूँ तो केवल मेरा ही श्रीरामचन्द्रजी वध करेंगे। एकके मरनेसे बहुतोंका जीवन बचे, तो एकको मरजाना चाहिये। इसलिये मैं जाकर श्रीरामको सूचना दे दूँ।"

यह सोचकर उन्होंने हाथ जोड़ कर कहा— अच्छा भगवन्! जैसी आज्ञा। मैं महाराजके समीप जाकर आपके आगमनकी सूचना देता हूँ।"

यह कहकर वे भीतर गये। मुनिके वेषमें काल भगवानसे बातें कर रहा था। सहसा लक्ष्मणजीको बीचमें आते देख कर काल चुप हो गया और रहस्य भरी दृष्टिसे लक्ष्मणजीकी ओर देखने लगा। लक्ष्मणजी पर कालकी दृष्टि पड़ गई किन्तु उन्होंने उसकी ओर देखा भी नहीं, वे श्री रामचन्द्रजीसे बोले— प्रभो! महामुनि दुर्वासा द्वार पर खड़े आपसे मिलनेके लिये अत्यन्त उत्सुक हैं।"

दुर्वासाका नाम सुनते ही काल प्रसन्न हुआ। उसने मनही मन सोचा—'मेरा तो काम होगया।' भगवान् भी दुर्वासामुनिका नाम सुनते ही घबरा से गये। उन्होंने कहा—'महामुनिको तुरन्त मेरे पास लाओ।"

आज्ञा पाते ही लक्ष्मण दुर्वासाजीको लेने चले। इधर भगवानने शीघ्रता पूर्वक कालको विदा किया। भगवान्की आज्ञा पाकर मुनि वेषधारी काल चला गया। लक्ष्मणजीने दुर्वासामुनिसे

कहा—"प्रभो! पधारें महाराज आपकी प्रतीक्षा कररहे हैं।"

यह सुनते ही रोष में भरे दुर्वासाजी चले। हाथ जोड़े हुए लक्ष्मण जी उनके पीछे पीछे चल रहे थे। उन्हें बड़ी उत्सुकता थी, मुनिका ऐसा क्या आवश्यक कार्य है' जो क्षणभर भी रुकने को उद्यत नहीं। कोई बहुत ही आवश्यक कार्य होगा' तभीतो उन्होंने मुझे बताया नहीं।

इस प्रकार सोचते हुए लक्ष्मणजी मुनिको लिये हुए श्रीरामचन्द्र जी के निकट पहुचे। मुनि को आये देखकर भगवान् ने उनके पैर धोये पूजा की और कुशल प्रश्न पूछ कर उनसे आनेका कारण जानना चाहा।

भगवानकी पूजाको विधिवत् स्वीकार करके महामुनि दुर्वासा बोले—"राघव! मैंने सहस्र वर्षका उपवास व्रत किया था। आज उस व्रतकी समाप्ति है। अतः मैं आपसे भोजन माँगने आया हूँ। कुछ विशेष प्रबन्ध करनेकी आवश्यकता नहीं। तुम्हारे चौकेमें जो तत्काल तैयार हो उसे ही खिलाकर मुझे तृप्त करो।"

यह सुनकर लक्ष्मणजीको हँसी आई। उन्होंने माथा ठोका और सोचा—"मुनिकी कैसी विचित्र बुद्धि है। भोजन ही माँगना था, तो मुझसे ही कहदेते। मैं भोजन नहीं करासकता था क्या। इस छोटी सी बातके लिये मेरी प्रतिज्ञाभङ्ग कराई। मुनिकी इस बात पर लक्ष्मणजीको एक कहानी याद आई। किसीने उन्हें सुनाई थी। सरयू के इसपार एक गड़रिया भेड़ चरा रहा था। दूसरा गड़रिया उसपार था। श्रावण भादोंकी सरयू बढ़ी हुई थी। अथाह जल था। इसपारके गड़रियाने उसपारके गड़रिया को पुकारा—"अरे, भाई! यहाँ आओ तुमसे एक बहुत ही आवश्यक बात पूछनी है।

उसने कहा—"भाई ! आऊँ कैसे बीच में तो सरयूकी धारा है । तुम्हें जो पूछना हो वहींसे पूछो।

इसपारके गडरियाने कहा—'नहीं भाई! कार्य बडा आवश्यक है। तुम जैसे हो तैसे मेरे समीप आओ। कानमें ही पूछनेकी बात है । बिचारा गडरिया क्या करता । जैसे तैसे वह सरयूको पार करके उसके पास पहुँचा और बोला—"कहो, क्या पूछना है?"

वह उसके कानमें पूछता है—'यह पूछना है, कि कल भेड किस ओर चराने ले जाओगे ।"

उस गडरियेको बडा क्रोध आया। वह बोला—"धत्तेरे-की ! यह कौन सा रहस्यकी बात थी, वहांसे पूछ लेता। मुझे व्यर्थ इतना कष्ट दिया।"

लक्ष्मणजी सोचरहे हैं, मुनिके लिये क्या कहें भोजन माँगनेके लिये इतना बखेडा खडा कर दिया । भगवान्ने तुरन्तही मुनिको अत्यन्त आदरसे षटरस भोजन कराया । तृप्ति पूर्वक भगवान्के प्रसादको पाकर प्रसन्नता पूर्वक मुनि प्रभुसे अनुमति लेकर अपने आश्रममें चले गये ।

मुनिके चले जाने पर भगवान्को अपनी प्रतिज्ञाका स्मरण हुआ। उन्हें कालकी भयङ्कर मूर्ति स्मरण हो आई । जगत उन्हें सूनाही सूना दिखाई देने लगा । वे सोचने लगे—'इन हाथोंने सीताका निर्वासन किया तपस्वी जम्बूकका सिर धडसे पृथक् किया अब अपने प्राणोंसे भी प्यारे बन्धुका वध इन्हीं हाथों से करना होगा। हाय ! काल कैसा निर्दया है। न करने योग्य कार्योंको मुझसे कराना चाहता है। जो छायाकी भाँति सदा मेरे दुःखमें साथ रहा। जिसने कभी सुख देखा नहीं।

जिसने जीवन भर मेरी आलस्य छोड़कर सेवाकी आज उसे उसकी सेनाका पुरष्कार यह देना है कि उसके सिरको धड़से पृथक् करना है। यह क्रूर कार्य मुझसे न होगा। प्रतिज्ञा जाती है तो जाओ।" ऐसी अनेकों बातें सोचते २ श्रीरामचन्द्र अत्यन्त ही दुखित हुए।

उन्हें दुखित देख कर हँसते हुए लक्ष्मणजी बोले—"प्रभो! आप अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षा करें। जो अनार्य अपनी प्रतिज्ञाका पालन नहीं करता वह पापी रौरवादि नरकोंकी अग्निमें निरन्तर पचाया जाता है, प्रभो! आप निःशंक होकर मेरा अपने हाथोंसे वध करें मुझे प्रसन्नता है, कि, मेरे वधसे सम्पूर्ण कुल बच जायगा।"

यह सुनकर भगवान् और भी दुखी हुए। उन्होंने अपने जावाल, कश्यप तथा वशिष्ठादि वेदज्ञ मंत्री ऋषियोंको बुलाया। सभा समाचार सुनकर सबके सब सन्न होगये। किसीके मुखसे एक भी शब्द न निकला। उस निस्तब्धताको भङ्ग करते हुए भगवान् वशिष्ठ बोले— राम! प्रतिज्ञा पालन ही धर्म है। आप सत्य प्रतिज्ञ हैं, आप अपनी प्रतिज्ञाको न तोड़ें। आजतक आपके द्वारा कभी मर्यादाके विरुद्ध कार्य नहीं हुआ है। आपने कभी अपनी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ी है। अब तो काल सन्निकट आगया है। मैं दिव्य दृष्टिसे उसे देख रहा हूँ।"

श्रीरामचन्द्रजीने रोते २ कहा—"प्रभो! मैं प्राणोंसे भी प्यारे अपने भाई लक्ष्मणका वध कैसे कर सकता हूँ।"

इसपर वशिष्ठजी बोले—"राम भद्र! सुनिये। शस्त्रका वध ही वध नहीं कहलाता। राजाकी आज्ञाको भङ्ग करदो राजाका वध हो गया। स्त्रीको शैय्यासे पृथक् करदो उसका वध हो गया।

ब्राह्मणका मूड मुडाकर धन छीन कर देशसे निकाल दो । यह उसका वध ही है। इसी प्रकार अपने भाईका सुहृद्का परित्याग करदेना उसके वधके ही समान है । आप लक्ष्मणका परित्याग करदें । आपसे पृथक् रहे कर लक्ष्मण जीवितही नहीं रह सकते।"

यह सुनकर रोते रोते कड़ा हृदय करके श्रीरामचन्द्रजी अपने छोटे भाई सुमित्रानन्दवधन लक्ष्मणसे बोले— सोत्रिये। मैंने अपनी प्रतिज्ञाको सत्य करनेके निमित्त तुम्हारा परित्याग कर दिया । तुम अब जहाँ चाहो जा सकते हो ।"

इतना सुनते ही लक्ष्मणजीके नेत्रोंसे अश्रुओंकी दो धारायें बहने लगी। रोते रोते उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीकी प्रदक्षिणा की और वे हाथ जोडकर भूमिमें प्रणाम करके महलसे निकल पडे। वे सीधे सरयूतट आये। अपने घर भी किसीसे मिलने नहीं गये। सरयूतट पर आकर बिना अन्न जल ग्रहण किये वे सरयूके जलमें समाधि लगाकर बैठ गये। उन्होंने साँसलेना सर्वथा बन्द कर दिया था । वे रामरूपका चिन्तन करते हुए तन्मय हो गये। इन्द्र उन्हें सशरीर विमान पर चढाकर स्वर्ग ले गया। अयोध्यावासी किसी भी स्त्री पुरुषोंने न तो इन्द्रको लेजाते ही देखा और न बहुत ढूढने पर सरयूजीमें उनका शरीर ही मिला। मिले कहाँ से वहतो चिन्मय होगया था।

सूतजी कहते हैं— मुनियो ! इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी के परित्याग करने पर लक्ष्मण जी सशरीर परलोक पधारगये। श्री–

लक्ष्मणजीका तिरोभाव सुनकर श्रीरामचन्द्रजी अत्यंन्त ही दुखित हुए और वे लम्बी लम्बी सासें लेने लगे। उनकाधैर्य टूटगया था। सम्पूर्ण संसार उन्हें सूनाही सूना दिखाई देता था।

छप्पय

रामचन्द्रतें मिलहुँ कहहिं पुनि पुनि दुर्वासा।
मुनि नहिं माने लखन गये तजि जीवन आशा॥
बुलवाये मुनि विदा काल रघुवरने कीन्हों।
करि आदर सतकार स्वाद युत भोजन दीन्हों॥
पूर्ण प्रतिज्ञा करन हित, रघुपति लछिमन तजि दये।
राम विरहमें तनु रहित, दुखित लखन सुरपुर गये॥

ब्राह्मणका मूड मुडाकर धन छीन कर देशसे निकाल दो। यह उसका वध ही है। इसी प्रकार अपने भाईका सुहृद्का परित्याग करदेना उसके वधके ही समान है। आप लक्ष्मणका परित्याग करदें। आपसे पृथक् रहे कर लक्ष्मण जीवतही नहीं रह सकते।"

यह सुनकर रोते रोते कडा हृदय करके श्रीरामचन्द्रजी अपने छोटे भाई सुमित्रानन्दवधन लक्ष्मणसे बोले— सौमित्रे! मैंने अपनी प्रतिज्ञाको सत्य करनेके निमित्त तुम्हारा परित्याग कर दिया। तुम अब जहाँ चाहो जा सकते हो।"

इतना सुनते ही लक्ष्मणजीके नेत्रोंसे अश्रुओंकी दो धारायें बहने लगीं। रोते रोते उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीकी प्रदक्षिणा की और दे हाथ जोडकर भूमिमें प्रणाम करके महलसे निकल पडे। वे सीधे सरयूतट आये। अपने घर भी किसीसे मिलने नहीं गये। सरयूतट पर आकर बिना अन्न जल ग्रहण किये वे सरयूके जलमें समाधि लगाकर बैठ गये। उन्होंने साँसलना सर्वथा बन्द कर दिया था। वे रामरूपका चिन्तन करते हुए तन्मय हो गये। इन्द्र उन्हें सशरीर विमान पर चढाकर स्वर्ग ले गया। अयोध्यावासी किसी भी स्त्री पुरुषाने न तो इन्द्रको लेजाते ही देखा और न बहुत ढूढने पर सरयूजीमें उनका शरीर ही मिला। मिले कहाँ से वहतो चिन्मय होगया था।

सूतजी कहते हैं— मुनियो! इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी के परित्याग करने पर लक्ष्मण जी सशरीर परलोक पधारगये। श्री—

लक्ष्मणजीका तिरोभाव सुनकर श्रीरामचन्द्रजी अत्यंन्त ही दुखित हुए और वे लम्बी लम्बी साँसें लेने लगे। उनका धैर्य टूटगया था। सम्पूर्ण संसार उन्हें सूनाही सूना दिखाई देता थ।

छप्पय

रामचन्द्रतें मिलहुं कहहिं पुनि पुनि दुर्वासा।
मुनि नहिँ माने लखन गये तजि जीवन आशा॥
बुलवाये मुनि विदा काल रघुवरने कीन्हों।
करि आदर सतकार स्वाद युत भोजन दीन्हों॥
पूर्ण प्रतिज्ञा करन हित, रघुपति लछिमन तजि दये।
राम विरहमें तनु सहित, दुखित लखन सुरपुर गये॥
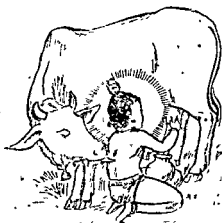
भगवान् का परम धाम गमन

(७०५)

स्मरतां हृदि विन्यस्य विद्धं दण्डककण्टकैः ।
स्वपादपल्लवं राम आत्मज्योतिरगात्ततः ॥
(श्री भा० ९ स्क० ११ अ० १९ श्लो०)

छप्पय

लखन विरह अति दुसहराम तिहि सहि न सके जब ।
लव कुश कीन्हें नृपति चले वन धन जन तजि सब ॥
भरत शत्रुहन संग चले पुर के नरनारी ।
खग, मृग, वानर वृक्ष भीर लागी सँगभारी ॥

राम प्रेम की पाश महँ, बँधे चले सब हरषि कें।
अति प्रमुदित सुरपति भये, हरष जतावें बरषि कें ॥

श्री शुक देवजी कहते हैं—"राजन् ! समस्त नरनाट्य करने के अनन्तर स्मरण करने वाले अपने भक्तों के हृदय में उन पाद पल्लवों को स्थापित करके जो अति कोमल होने पर भी दण्ड कारण्य के काँटों से विद्ध हैं—श्रीरामचन्द्र जी अपने परम धाम को पधार गये ।

जीव के सहज सुहृद श्री राम हैं। राम को छोड़ कर जो काम के वशीभूत हो जाते हैं, विषयों के संग रम जाते हैं वे ८४ के चक्कर में फँस जाते हैं। योगी लोग आँख कान आदि इन्द्रियों को मूँद कर एकान्त में बिना कुछ देखे, बिना कुछ सुने, बिना खाये पीये इसीलिये बैठे रहते हैं, कि हम पुनः संसार के आवागमन में न फँसे। हमारा इस जनम मरन से सदा के लिये छुटकारा हो जाय। इसके लिये वे घोर तप करते हैं। संसृतिका कारण शरीर ही है शरीर सुख के लिये ही संसार में फँसना पड़ता है,

इन्द्रियों का जहाँ विषयों से सम्बन्ध हुआ, वहाँ उनकी उन में आसक्ति हुई। आसक्ति ही बन्धन का प्रधान कारण है, इस लिये वे योगी गण मन के विरुद्ध व्यवहार करते हैं, इन्द्रियों को विषय आहार न देकर उन्हें निर्बल बनाते हैं, इस प्रकार बड़े कष्ट से वे साधना करते करते बहुत जन्मों में परम पद के अधिकारी होते हैं। इसके अतिरिक्त भक्तों का मार्ग निराला ही है। वे जंगलों में नहीं जाते आहार नहीं छोड़ते। केवल अपने सब काम श्री राम के चरणों में अर्पण कर देता है। जो भी करेंगे राम प्रसन्नता के लिये करेंगे। भोजन बनायेंगे, राम के लिये. फूल लायेंगे राम के लिये। यहाँ तक कि राम का ही मुख देखकर जीयेंगे, राम के रूप का स्मरण करते करते ही मरेंगे। वे सब विषयों को छोड़ते नहीं। विषयों के उत्पादक एक को कस कर पकड़ लेते हैं। उसके साथ बँध जाते हैं। जो उसकी गति सो हमारी गति। वह तो गति दाता ही है, उसकी गति क्या? इनकी गति होती है जो बड़े बड़े योगियों की होती है। इन्हें वही स्थान प्राप्त होता है. जो जहाँ तपस्वी योगी जाते हैं।

सूत जी कहत है— मुनियो ! लक्ष्मण जी परम धाम पधार गये । अब श्रीराम को कुछ भी नहीं सुहाता था । वे लक्ष्मण के सहारे ही जी रहे थे वे ही उनके आधार थे, उनके वियोग से श्राराम अपने को आश्रयविहीन समझने लगे । वे सीता जी के वियोग को भूल गये । उन्हें लक्ष्मण की स्मृति क्षण क्षण में दुख देने लगी । तुरत उन्होंने मन्त्रियों पुरोहितों तथा नगर निवासीयो को बुलाया और रोत रोते बोले—' भाइयो ! लक्ष्मण के विना यह पुरी ये महल तथा यह सम्पूर्ण ससार मुझे काटने दौडता है। अपना भाई लक्ष्मण के विना मैं राज महल मे क्षण भर भी नहीं रह सकूंगा । लक्ष्मण मेरे साथ साथ वन गया था, मैं भी उसके साथ साथ उसी लोक जाऊँगा जिहाँ वह गया है । आज भरत का अयोध्या के राज्यपर राज्याभिषेक करो । इस कार्य मे देरी न होनी चाहिये । मेरा आज्ञा का अविलम्ब पालन होना चाहिये । मैं अपने बन्धु के पथ का अनुसरण करूंगा । मुझे अधिक अवकाश नहीं । समस्त सामग्रियाँ शीघ्रता के साथ मँगाई जायँ कुमारी कन्यायें बुलाई जायँ सडकें सजाई जायँ और तुरत राज्याभिषेक की तैयारियाँ की जायँ ।"

श्रीराम चन्द्र जी के ऐसे रूढ वचन सुनकर सभी का हार्दिक दु ख हुआ सभी रोने लगे, किसी के मुख से भी एक शब्द न निकला । भरत जी तो सुनत ही मूर्छित हो गये । तुरत कुश लव ने उठकर अपने चाचा को उठाया उनके ऊपर सुगंधित -जल छिड-का, वायु की । कुछ कुछ चेतना होने पर रोते रोत भरत जी बोले— ससार में मैं ही सब से अभागा हूँ । भैया लक्ष्मण हा भाग्य शाली हैं वे वन मे भी श्रीराम के छाया की भाँति आगे आगे उनके पथ को परिष्कृत करते हुए गये और अब पर लाक

में भी प्रभु से प्रथम ही पहुँच गये। मैंने नजाने पूर्व जन्म में कौन से पाप किये हैं जो यह राज्यसिंहासन मेरा पिंड नहीं छोड़ता। श्रीराम के विहीन अवध पुरी का १४ वर्षों तक मुझे कितने कष्टों से राजकाज देखना पड़ा, इसे मेरे अतिरिक्त कौन जान सकता है। अब भी श्रीराम मुझे ही सौंप कर परलोक जा रहे हैं। हे राघव ! चाहे मुझे आज्ञा उल्लंघन का महापाप हो क्यों न लगे चाहे मुझे महारौरवादि नरकों में अनंत काल तक पचना ही क्यों न पड़े। मैं इस आज्ञा का पालन करने में सर्वथा असमर्थ हूँ। प्रभो ! मेरे ऊपर कृपा करें। मुझे ऐसी कठोर आज्ञा न दें। हे अशरण शरण ! मैं सत्य शपथ खाकर कहता हूँ, मैं आप के बिना अब क्षण भर भी पृथ्वी पर नहीं रह सकता। मेरे अभिषेक का आप विचार छोड़ दें। मुझे राजा बनना धर्म न्याय दोनों के ही प्रतिकूल है। मेरे साथ तो यह घोर अन्याय होगा। चिरंजीव कुश और लव दोनों योग्य हैं शूर वीर हैं, न्यायतः ये दोनों ही राज्य के अधिकारी हैं, अतः कोशल में कुश का और उत्तर कोशल में लव का आप राज्याभिषेक करें। मैं तो आपके साथ ही साथ चलूँगा।"

भरत जी की दृढ़ प्रतिज्ञा देखकर भगवान् ने उनकी बात मानली। लव कुश के राज्याभिषेक की तैयारियाँ होने लगीं। उसी समय समस्त प्रजा रोती चिल्लाती हा राम हा राम पुकारती श्रीराम के समीप आईं। वे सब डकरा रहे थे, बुरी तरह रो रहे थे, बहुत मूर्छित होकर पड़े थे, उनकी ऐसी दयनीय दशा देखकर दयालु भगवान् वशिष्ट श्रीराम चन्द्र जी से बोले— "प्रभो आप अपनी प्रजा के स्त्री पुरुषों की विनती सुनें इनके दुःखों को दूर करें। इनकी हार्दिक इच्छा को जान कर उसके अनुकूल आचरण करो। तुम सदा से इनके दुःख को दूर करते रहे हो।"

अपने गुरुदेव की बात सुनकर भगवान् बोले—"हाँ ! प्रभो जैसी आप आज्ञा देंगे उसी का मैं पालन करूँगा । मैं अपनी प्रजा को दुखी नहीं देख सकता । इनकी अन्तिम अभिलाषा अवश्य पूर्ण का जायगी।" ऐसा कहकर भगवान् ने रोते हुए भूमि पर पड़ प्रजा के लोगो को स्वयं उठाया, उनकी धूलि झाड़ी और अत्यंत ही स्नेह के साथ बोले—'तुम लोग मुझ से क्या चाहते हो ?"

प्रजा के लोगों ने कहा—'प्रभो ! आप हमारी स्वामी है, सर्व स्व हैं । आप वन में सरिता तट पर ऋषि आश्रमों में जहाँ भी पधारेंगे हम आपके साथ चलेंगे । हे कृपा सिन्धो ! आप हमारा परित्याग न करें । हमें अपने चरणों की शरण में ले चलें ।"

पुर वासियो का अत्यंत आग्रह देखकर भगवान् ने उनकी विनति स्वीकार की । वे सब के सब परम हर्ष के सहित भगवान् के साथ चलने को उद्यत हो गये । इतने में ही अभिषेक की समस्त सामग्रियाँ जुट गई । भगवान् ने वेदज्ञ ब्राह्मणों के सहित कुश को कोशल पुरी में और लव का उत्तर कोशल में विधिवत् अभिषेक किया । शत्रुघ्न जी को बुलाने के लिये शीघ्र गामी घोड़ों पर बुद्धिमान् दूत भेजे गये । भगवान् ने आज्ञा दी— शत्रुघ्न से कहो, हम लीला सवरण कर रहे हैं । वह तुरंत आवे ।"

दूतों के मुख से भगवान् के परम धाम पधारने की बात सुन कर शत्रुघ्न जी ने अपने पुरोहित तथा मंत्रियों को बुलाया । अपने बड़े पुत्र सुबाहु को मथुरा के राज्य पर अभिसिक्त किया और दूसरे पुत्र शत्रुघाती श्रुतसेन को वैदिश देश का राज्य दिया । धनसेना आदि दोनों को बराबर बाँटकर वे अति शीघ्र श्रीरामचन्द्र जी के दर्शनों के लिये अयोध्यापुरी की ओर चलें । उन्होंने

मार्ग में कहीं विश्राम नहीं किया। वे अपने भयंकर कुल क्षय के सम्वाद से चिंतित थे। कुछ ही दिनों में अयोध्या पुरी में पहुँच कर श्री रामचन्द्र जी के पादपद्मों में उन्होंने प्रणाम किया तथा भरतजी के चरण छुए। लक्ष्मण जी के परमधाम पधारने के समाचार से वे अत्यंत व्याकुल हो रहे थे। उन्हें धैर्य बँधते हुए भगवान् ने उनसे कहा—"शत्रु तापी शत्रुघ्न! तुम। चिन्ता मत करो काल की तो ऐसी दुरत्यय गति है।"

यह सुनकर शत्रुघ्न जी ने अत्यंत ही दुःख के साथ कहा—"प्रभो! मैं ने आपकी आज्ञा का कभी उल्लंघन नहीं किया है, न मैं कभी आप के सम्मुख बोला ही हूँ। सदा सिर झुका कर मैंने आपकी सब आज्ञाओं का पालन किया है। एक बार अपनी अज्ञता के कारण बोला था। उसका दंड मुझे तत्काल मिल गया प्रभुपाद पद्मों से पृथक् कर दिया गया। किन्तु आज मैं धृष्टता कर रहा हूँ। प्रभु से विनय कर रहा हूँ कि मुझे कोई दूसरी आज्ञा न दी जाय। मैं पुत्रों को राज्य देकर सब कार्यों से निवृत्त होकर आपके साथ चलने के लिये ही आया हूँ। आप जहाँ भी चलेंगे साथ चलूँगा। जहाँ भी आप रहेंगे साथ रहूँगा। अब मैं आप को छोड़ नहीं सकता।" शत्रुघ्न जी की ऐसी दृढ़ता देखकर श्रीरामचन्द्र जी ने उन्हें भी साथ चलने की अनुमति देदी।

भगवान् के स्वधाम पधारने की प्रकट लीला संवरण करने का समाचार सर्वत्र फैल गया। सुनते हैं सुग्रीव, हनुमान्, जाम्बवान्, मैन्द, द्विविद आदि वीर वानर तुरंत ही अयोध्यापुरी आये। राक्षस राज विभीषण भी आये। सुग्रीवने हाथ जोड़ कर कहा—"प्रभो! मैं वीरवर अंगद का राज्याभिषेक करके सब कार्यों से निश्चिन्त होकर ही यहाँ आया हूँ। आपके साथ ही चलूँगा।

यह मेरा दृढ़ निश्चय है।" भगवान् ने उन्हें भी साथ चलने की अनुमति देदो।"

हनुमान् जी को अत्यंत उदासीन होते हुए देखकर श्रीरामचन्द्र जी उनसे बोले—'पवनतनय! तुम उदास क्या हो रहे हो! तुम तो मेरी लीला और रूप को एक ही समझते हो, संसार में जब मेरी लीला का प्रचार रहे-मेरी कथा रहे-तब तक तुम आनंद से मेरे गुणों को श्रवण करते हुए पृथवी पर निवास करो। जहाँ भी मेरी कथा हो वहीं तुम अनेक रूप रख कर अवश्य पहुँच जाना।

" फिर विभीषण जी से बोले—"राक्षस राज! मैंने तुम्हें एक कल्प की आयु दी है, अतः तुम करा पसन्न राक्षसों का शासन करो, मेरा स्मरण करो। ये जम्बवान्, मैन्द, द्विविद भी कलि युग पर्यन्त रहेंगे। शेष सब वानर मेरे साथ चलें।"

सभी ने श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा शिरोधार्य की। इन सब बातों में उस दिन रात्र हो गई। सभी को श्री राम के साथ चलने की अत्यन्त प्रसन्नता थी। कोई दुखी नहीं था, किसी का चित्त उदास नहीं था, कोई घबरा नहीं रहा था। इस प्रकार उन सब नगर निवासियों ने वह रात्रि सुख पूर्वक बिताई।

प्रातः काल होते ही नित्य कर्म से निवृत होकर भगवान् ने पुरोहितों के द्वारा अपने अग्नि होत्र को तीनों अग्नियाँ मँगवाई। वेदज्ञ ब्राह्मण उन्हें बड़े बड़े पात्रों में लेकर चले। भगवान् वशिष्ठ जी ने वैदिक मंत्रों द्वारा महाप्रस्थान की सम्पूर्ण क्रियायें कीं। सब क्रियायें पूर्ण होने पर श्रीरामजी ने ब्राह्मणों के पाद पद्मों में प्रणाम किया। उन सब की अनुमति लेकर वे महाप्रस्थान के लिये महलों से निकल पड़े।

श्रीराम चन्द्र जी सुदर पीतवस्त्र पहिने हुए थे। उनके आगे आगे वेद मन्त्रों को पढ़ते हुए ब्राह्मण चल रहे थे। पीछे प्रसन्न चित्त समस्त प्रजायें आबाल वृद्ध नर नारी वानर, तथा अन्यान्य प्राणी चल रहे थे। श्रीरामचन्द्र अत्यत गभीर भाव से जारहे थे, वे अपने चरण कमलों में प दत्राणों को भी धारण नहीं किये हुए थे। उन्होंने मौन धारण कर लिया था। उस समय उनका तेज असह्य था वे सासारिक कोई चेष्टा नहीं कर रहे थे। भगवान् के दाईं ओर मूर्तिमान् श्री तथा पद्म चल रहे थे। बाईं ओर भूदेवी मूर्तिमती चलरही थीं। उनको सहारशक्ति सम्मुख आगे आगे जा रही थीं भगवान् के समस्त अस्त्र शस्त्र मूर्तिमान् हो कर मनुष्य शरीर धारण करके आगे आगे चल रहे थे। वेद माता, गायत्री देवी ओङ्कार वषट् कार ये सब के सब विप्र वेष में भगवान् का अनुगमन कर रहे थे। उस समय मानों स्वर्ग का द्वार सभी के लिये खुला हो। इसी लिये सभी अत्यत उत्कंठा के साथ श्रीराम-चन्द्र जी के चरणों का अनुसरण कर रहे थे। ऋषि, मुनि, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र, बालक, वृद्ध युवा, दास, दासी, अन्त पुर के सेवक, राजकर्मचारी तथा अन्यान्य सभी लोग श्रीरामचन्द्र जी के साथ प्रसन्नता पूर्वक चल रहे थे, अग्नि होत्री ब्राह्मणों का पूजित अग्नियाँ उनके साथ थीं। मनुष्यों की तो बात ही क्या पशु, पक्षी, कीट पतग भी श्रीरामचन्द्र के साथ स्नेह पूर्वक चले। म-राश उस समय अयोध्या में ऐसा एक भी सास लेने वाला प्राणी शेष नहीं रहा जो श्रीरामचन्द्रजी के साथ न चला हो, जो दर्शन करने आये थे, वे भी साथ हो लिये। जो जिस काम को

जा रहा था, वह उसी काम को छोड़ कर श्रीराम चन्द्र जी के दर्शन करते करते उनके पीछे हो लिया'जाते हुए सभी प्राणी प्रसन्नता प्रकट कर रहे थे। सब के मुखमंडल कमल की भाँति खिल रहे थे।

इस प्रकार शनैःशनै अवधपुरी से आधे योजन से अधिक चल कर भगवान् गोप्रतार घाट (गुप्ता घाट) के निकट पहुँचे। वहाँ उन्होंने पवित्रसलिला सरित् श्रेष्टा सरयू को देखा। वह बड़ी गंभीर थीं उसमें हिलोरे उठ रही थीं। उसका जल अमृतोपम था। वह श्रीरामचन्द्र जी के स्वागत में उछलती हुई सी दिखाई दे रही थी। शनैः शनैः श्रीराम चन्द्र जी ने सब के साथ सरयू के सुंदर स्वच्छ सलिल में श्रद्धा सहित प्रवेश किया।

उसी समय लोकपितामह ब्रह्माजी लाखों करोड़ों दिव्य विमानों को लेकर भगवान के स्वागत के निमित्त आये। उन्होंने दूर से ही प्रर्थना की—"हे सनातन। प्रभो! आपने अत्यंत ही अनुग्रह की। अब आप ऐसी कृपा करें, कि हमें कौतूहल न हो। आप नरनाट्य अब छोड़ दें। स्वेच्छा से जिन लोकों में आप की जाने की इच्छा हो, उन लोकों को कृतार्थ करते हुए चलें।"

भगवान् ने कहा—"ब्रह्मदेव! आप जैसा कहेंगे वैसा ही होगा।" यह कहकर भगवान् अपने भाइयों के साथ दिव्य विमान पर बैठकर अपने सनातन वैष्णव धाम को चले गये।"

सूतजी कहते हैं— मुनियो ! इस प्रकार भगवान् को सशरीर दिव्य विमान से जाते देखकर साध्य, मरुत, चारण, इन्द्र, अग्नि आदि सभी भगवान् की स्तुति करने लगे। गन्धर्व गाने लगे। अप्सरायें नृत्य करने लगीं। सर्वत्र राजारामचन्द्र की जय के शब्द से ब्रह्माण्ड भर गया।"

छप्पय

अवध पुरी तें सकल चले सिय पतिहिँ धारि उर।
निखिल जीव निर्मुक्त भये सब शून्य भयो पुर॥
कीयो प्रभुपद प्रेम सफल तनु तिन में कीन्हों।
जग जीवन को लाभ यथारथ तिन हीं लीन्हों॥

विधि विमान अगणित लिये, सरयू तट आये तुरत।
चैठि पधारे परम पद, रघुनन्दन निज तनु सहित॥

—※—

एक सी शुद्धि कर लेते हैं। वह पृथिवी सर्व गम्य बन जाती है। वहाँ के झाड़ झंकार हट जाते हैं, किन्तु जब बाढ आती है तो बिना परिश्रम के ही सम्पूर्ण तट प्रान्त अन्त तक विशुद्ध होजाती है, इसी प्रकार जब कोई आचार्य अवतरित होते हैं तो अपने प्रभाव से अपने अनुयायियों को संसार सागर से पार कर देते हैं। यदि भगवान् अवतरित होते हैं तो अपने संसर्ग में रहने वाले कीट पतंग पशु पक्षी सभी को मुक्त कर देते हैं। सभी के कर्म बन्धनों की बेड़ियों को काट देते हैं।

श्री सूत जी कहते हैं—"मुनियो! भगवान् श्रीरामचन्द्र जी सशरीर अपने परम धाम वैष्णव लोक में चले गये। अन्य जितने भी जीव थे, वे भी सरयू के पावन जल में प्रवेश करके अपने शरीरों का परित्याग करने लगे। सबको तनु त्याग करते देखकर भगवान् ने ब्रह्माजी से कहा—'देखो! मेरे पीछे जितने भी प्राणी आये हैं सब को सद्गति होनी चाहिए इस सरयू के गोप्रतार घाट (गुप्तार घाट) के जल का स्पर्श जिन के शरीरों से हो जाय, वे अवश्य कर्म बन्धनों से छूट जायँ

यह सुन कर ब्रह्माजी बोले—'प्रभो! आप ही समस्त प्राणियों की एक मात्र गति हैं। आप जिसे जो लोक देना चाहें दें। जितने ये कीट पतंग सर्प आदि तिर्यक् योनि के जीव हैं, ये सब के सब सन्तानक लोक में जायँ। यह लोक ब्रह्मलोक की ही समान शुद्ध और सनातन है। ये जितने भालू, बंदर आदि देवताओं के अंश से उत्पन्न हुए थे, वे अब तनु त्याग कर अपने अपने अंशों में मिल जायँ। सुग्रीव जो सूर्य के अंश से उत्पन्न हुए थे, अत वे सूर्य मंडल में प्रवेश कर जायँ। और भी सब वानर अपने अपने अंशी देवताओं में एकीभूत हो जायँ।"

ब्रह्माजी की बात का भगवान् ने अनुमोदन किया। ब्रह्मा जी अपने साथ असंख्यों विमान लाये थे। जो भी सरयू में प्रवेश करके शरीर त्यागते वे ही दिव्य देह से विमान पर जा बैठते। विमान उन्हें लेकर दिव्य लोक मे चलाजाता। उस समय का दृश्य बड़ा ही करुण जनक था। सब की आँखें अश्रुओं से भीग रही थीं। राम प्रेम में फँसे हुए वे सब रामनाम का उच्चारण करते हुए सरयू जल मे घुस जाते। सब का पार्थिव शरीर प्राणहीन होकर सरयू में उतरने लगता और दिव्य रूप से सब परम धाम को चले जाते। इस प्रकार अयोध्या में रहने वाले जितने जीव थे सभी परमपद को प्राप्त हुए।

इस पर शौनक जी ने पूछा—"सूतजी! जब अयोध्या पुरी जीवों से रिक्त हो गई, तो कुश लव ने फिर राज्य कहाँ किया। जब कोई रहा ही नहीं तो वे शासन किस पर करते रहे।"

यह सुन कर सूतजी बोले—"महाराज! सर्वज्ञ श्रीरामचन्द्र जी तो सब पहिले ही से जानते थे। अतः उन्होंने कुश को कोशल देश का राजा पहिले ही बना दिया था, उनकी राजधानी में विन्ध्य पर्वत के पास कुशावती नगरी निश्चित की। श्रीरामजी की आज्ञा शिरोधार्य करके कुश कुशावती में चले गये और वहाँ अपने मंत्री पुरोहितों के साथ रहने लगे। इसी प्रकार लव को उत्तर कोशल का राजा बनाया उनकी राजधानी हुई श्रावस्ती। वे अपनी श्रावस्ती पुरी में रहने लगे। महा प्रयाण के समय श्रीराम की आज्ञा थी कुश लव तथा भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न के पुत्रों में से कोई यहाँ न रहे। इस लिये इन आठों भाइयों में से कोई यहाँ नहीं थे। ये सब अपनी अपनी राजधानियों मे थे। श्रीरामचन्द्रजी समस्त अयोध्या पुरी को खाली करके परम धाम पधारे।

बहुत दिनों तक अयोध्या पुरी श्रीराम वियोग में उजाड़ ही पड़ी रही। वह घोर वन हो गया था। पीछे रघुवंशी राजाओं ने आकर उसका पुनः जीर्णोद्धार किया। इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी १३ हजार वर्षों तक नरनाट्य करके परमधाम को पधारे।"

यह सुनकर शौनक जी ने कहा—"सूत जी! यह तो आपने राम चरित्र की समाप्ति दुःख में की। दुःखान्त काव्य की मनीषियों ने प्रशंसा नहीं की है। हमारे यहाँ प्राचीन परिपाटी है, कैसा भी कारुणिक आख्यान क्यों हो, अंत में उसका अवसान सुख में करते हैं। नायक का वियोग वर्णन करके अन्त में कहीं न कहीं उसका संयोग अवश्य करते हैं। वियोग में तड़पा कर नायक नायिका को छोड़ना यह रस शास्त्र के विरुद्ध है। आपने तो इस उपाख्यान की अत्यंत कारुणिक स्थल पर समाप्ति की।

यह सुन कर सूत जी बोले—"महाराज! श्रीराम कोई साधारण नायक तो हैं ही नहीं वे तो जगन्नियन्ता हैं। इस चराचर जगत् के एक मात्र सूत्र धार हैं। वे ही सृष्टि स्थिति और प्रलय के स्वामी हैं। श्रीसीता जी उनकी नित्य शक्ति हैं वे सदा उनके साथ रहती हैं। उनका कभी श्रीराम से वियोग होता ही नहीं। अयोध्यापुरी भी कभी रिक्त नहीं होती। जैसे राम नित्य हैं। वैसे ही उनका धाम नित्य है। त्रेतायुग की एक रामनवमी को ही राम का अवतार हुआ हो, सो बात नहीं। जब जब चैत्र में राम नवमी आती है तब तब उनका अवतार होता है उनका अवतार, विवाह, वनगमन, राज्यारोहण, नित्य ही होता है। राम और धाम की भाँति उनकी लीला भी नित्य है। श्रीराम कभी बूढ़े नहीं होते उनके न कभी दाढ़ी मूँछ आती हैं और न उनके कभी झुर्रियाँ ही पड़ती हैं। वे तो सदा १६ वर्ष के युवक बने

रहते हैं। उनके रूप में कभी परिवर्तन नहीं होता। अवस्थाओं का उनके शरीर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। क्यों कि उनका शरीर प्राकृतिक न होकर चिन्मय है। अतः नाम रूप तथा लीला की भाँति उनका रूप भी नित्य है। वह कभी ढलता नहीं नित्य नूतन दिखाई देता है। इसी प्रकार श्रीसीता जी भी नित्य किशोरी ही बनी रहती है। यह जुगल जोडी सदा अवधपुरी के कनकमहल में कमनीय क्रीड़ा करती रहती हैं। सेविकायें नित्य सखी इनकी परिचर्या में सलग्न रहती हैं। वे नित्य सखी धन्य हैं जो प्रिया प्रियतम की सेवा में रहकर महल में टहल करके दिव्य सुख का अनुभव करती हैं।

शौनक जी ने कहा—"सूतजी! इस गुप्ता घाट की लीला से हमारा चित्त उद्विग्न सा हो गया है। फिर से एक बार सक्षेप में उसकी समाप्ति करें।

सूतजी बोले—"अच्छी बात है महाराज! अब मैं सुखान्त राम चरित्र का संक्षिप्त वर्णन करके इस पुण्य प्रसग को समाप्त करूँगा।

छप्पय

विरह माँहिँ अवसान चरित रघुनदन को सुनि।
शौनक अति ई दुखित सुत जी तैं बोले पुनि॥
सूत! चरित दुःखान्त नेंक नहिँ हमहिँ सुहावे।
सुमिरि राम निर्वाण हृदय पुनि पुनि भरि आवे॥
सब सुनि बोले सूत जी, मुनियो! राम अखड अज।
*तिनकी आद्या शक्ति सिय, जाहिँ कबहुँ नहिं तिनहिँ तज॥४

धूपदीपैः सुरभिभिर्मण्डितं पुष्पमण्डनैः।
स्त्रीपुम्भिः सुरसंकाशैर्जुष्टं भूषणभूषणैः॥
तस्मिन् स भगवान् रामः स्निग्धाया प्रिययेष्टया।
रेमे स्वारामधीराणामृषभः सीतया किल॥ *
(श्री.भा० ९ स्क० ११ अ० ३४, ३५ श्लो०)

छप्पय

सुनहु सुखान्त चरित्र राम स्वामी त्रिभुवनके।
भरत लखन रिपुदलन रहैं आज्ञा महँ तिनके॥
पतिकूँ सरबसु समझि सदा सीया सुख पावैं।
राम निरखि सिय कमल वदन छिन छिन हरषावैं॥
कनक भवन अतिई सुघर, सब सामग्री सुखद जहँ।
हरषितहू रघुवंशमनि, रमन करहिं सिय संग तहँ॥

मनुष्य जो खाता है, वही अपने देवताको भोग लगाता है। जिसे जो सम्बन्ध प्रिय होता है, वही सम्बन्ध भगवान्‌से स्थापित करता है। भगवान् तो सबके स्वामी हैं। संसारमें ५ ही

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! श्रीरामचन्द्रजीके कनकभवन को सेवकोंने सुगन्धित धूप दीपों तथा पुष्पमय आभूषणोंसे भली भाँति सजाया था। आभूषण उसके कारण विभूषित होते थे, उसमें रहने वाले दास दासी देवताओंके समान सुन्दर थे। उस भव्य भवनमें पुरुषश्रेष्ठ आत्माराम जितेन्द्रिय भगवान् राम अपनी अभिमता प्रियतमा जनकनन्दिनीके साथ रमण करते थे।

सम्बन्ध हैं। ईश्वर और जीवका सम्बन्ध, मित्र मित्रका सम्बन्ध, स्वामी सेवकका सम्बन्ध, पुत्र पिताका सम्बन्ध और पति पत्नी का सम्बन्ध सब सम्बन्ध इन्हींके अन्तर्गत हैं। अतः भगवान्में शान्त, दास्य, सख्य वात्सल्य और मधुर सम्बन्ध स्थापित करके रति करते हैं। संसारी सम्बन्ध शरीरके नष्ट होनेसे नष्ट होजाते हैं, किन्तु भगवान्का श्रीविग्रह तो चिन्मय है, वह कभी नष्ट नहीं होता, अतः भगवान्के साथ किया सम्बन्ध नित्य होता है, स्थाई होता है अटूट होता है। भगवान्को जो जिस भावसे भजते हैं, भगवान् भी उनके लिये वैसे ही वन जाते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान्का प्रादुर्भाव अवधमें हुआ आप यह न समझें कि पहिले अवधमें नहीं थे, फिर कहींसे बालक बनकर अवधमें आये होंगे। वे तो नित्य अवधमेंही निवास करते हैं। आविर्भाव तिरोभाव केवल रसकी वृद्धिके लिये होता रहता है। वह तो एक अवस्था है। चक्रवर्ती महाराज दशरथकी पटरानी कौशल्यादेवीके उदरसे अवतरित हुए। उनके शेष तीन अंश भरत लक्ष्मण और शत्रुघ्न कैकेयी और सुमित्रा नाम वाली रानियोंसे उत्पन्न हुए। बालक बनकर मेरे भोले भाले राम चकित चकित दृष्टिसे इधर उधर खेलते। इधरसे उधर एक गोदसे दूसरीगोद दूसरीगोदसे तीसरी गोदमें जाते, सबके चित्तको चुराते, सबको हँसाते, सबका मन बहलाते, मनहर बाललीला दिखाते, कभी रोते कभी गाते, कभी पालनेमें सो जाते, कभी उठकर पैर फटफटाते, कभी माँ माँ कहकर कौशल्याको बुलाते, कभी अपने बूढ़े बापकी गोदमें चले जाते। उनकी छातीसे चिपट जाते, उनके साथ दूध भात खाते,

फिर खाते खाते भाग जाते, बालकोंके साथ खेलते हुए कोलाहल मचाते। अपनी माताको वहुत खिजाते, पकड ही में न आते दूरसे ही सैन चलाते, समीप नहीं आते, भरत शत्रुहन लक्ष्मणजीको भी बुलाते। और भी सबसखाजुटजाते, विविध प्रकारके खेल वनाते तीर कमान चलाते किसीको घोड़ा वनाकर उसीपर चढ जाते। उसे कोडेमारमारकर दौडाते।

"भगवान् होकर ऐमी लीलायें क्यों करते थे, जी ! देखोजी अव तुम प्रत्येक वातमें क्यों क्यों मत किया करो। खेलमें क्या नहीं पूछी जाती। तुमने किसीसे प्रेम किया हो तो समझें। प्रेम में यह वात न सोची जाती है न पूछी जाती है। प्रेम मे तो जो भी अट सट वात मुहमें आ जाती है, कहदी जाती है। हमारा प्रेमी जो करे वही सुन्दर है वही मनको हरने वाला है। हमारे प्रेमीके मुखसे जो भी शब्द निकले वही अमृत है, उसकी वाणीमे शब्द घुलकर सरस वनजाता है। सॉवरकी झीलमें जो भी वस्तु डालता वही साभर वनजायगी। भगवान जोभी करेंगे सुन्दर करेंगे शिव करेंगे कल्याणप्रद करेंगे। वे जो भी रूप वना लेंगे वही मनहर होगा। मुँहमें कालिख लगालें तो वह कालिख भी खिल जायगी। तनमें धूरि लपेट लेंगे तो उसीसे उनकी शोभा को देखकर शोभारानी लज्जित होकर घघट काढ लेगी। राम क्यों करते हैं, अच्छा इसका भी उत्तर सुन लो, वे सुखके लिये करते हैं, प्राणियोंको ससारसे पार करनेके लिये करते हैं और रहस्यकी वात तो यह है वे भक्तोंको आनन्द देनेके लिये करते हैं। क्यों सत्य है न ? तुम सत्य मानो मत मानो उनके यहाँ तो सव सत्य ही हैं। क्यों कि वे सत्य-स्वरूप है। असत्यसे उनकी भेंट नहीं हुई। व ऐसो छोटेस"

भुनभुना न बनते तो पुत्र बनकर कौशल्या दशरथको सुख कैसे देते। 'इसलिये उन्हें सुख देनेको बालक बनगये। माताके दूधको चुकर चुकरके पीते, भूख लगने पर रोने लगते। मात की छातीसे चिपट जाते, मचल जाते। उनका पल्ला पकड़ लेते। माताको निहाल कर देते। बड़ी बड़ी आँखोंमें माँ मोटा-मोटा काजर लगा देती। दाईं ओर बड़ा सा दिठौना लगा देती। मेरे रामको नजर न लग जाय। कैसी क्रीड़ा है। जिसकी दृष्टिसे ससार विलीन होजाता है। अचर सचर हो जाते हैं। सचर अचर होकर विलीन होजाते हैं। माता उनकी रक्षाके लिये काजरका दिठौना लगातीं हैं बघनखा पहिनाती हैं, कि भूत प्रेत पिशाचकी बाधा न हो। राम डर न जाय। माता पिताको जब सुख दे चुके तो अब सखाओंकी बारी आई। सख्य रसको भी तो अभिव्यक्ति करनी है। घुटुअनसे अब पॉ पाँ पैया चलने लगे। मित्रता जोड़नेकी योग्यता आगई। सखाओंके गलेमें गलबैयॉ डालकर घुल घुलकर बातें करने लगे। सखाओंकी दृष्टिमें वे बड़े थे। माता पिताकी दृष्टिमें वे सदा बालकही बने रहे। जब बच्चोंमें आये तो जोट बनाने लगे। यह उनकी जोटका यह उनके जोड़ेका, खेल खेलने लगे। सबके हृदयमें घुसकर रसकी धारा बहाने लगे। संसारमें जिसने सख्य सुखका अनुभव नहीं किया उसने कुछ नहीं किया। सख्य सुख उसे कहते हैं दो देहोंमें एकसे ही प्राण संचारन करें। प्रेमी सखाओंकी दृष्टिमें तो राम सदा वैसे ही हैं। वे तो उनके लॅगोटिया यार हैं। उन्हें बालकराम या राजरामसे कोई काम नहीं है। वे तो राम हमारे सखा हैं इतना ही जानते हैं।' किन्तु राम तो बढ़ते जाते हैं। वे बढ़े बिना मानते नहीं। छोटे

हैं तो बढ़ने ही चाहिये। युवक होगये। युवक क्यों हुए जी ?" फिर वही बात ? अरे भाई, इन चूड़ी बीछिया नथ वालो अपनी जोनराशिको भी तो उन्हे सुख देना है। स्त्रियोंकी ऑखें युवाओंके ही ऊपर जाती हैं। उनकी नित्यशक्ति जानकीजी जनकपुरमें ये अवधपुरमें। मिलना कैसे हो। दूल्हा बिना बने मिलन होता नहीं केवल दूल्हा बननेसे भी तो काम नहीं बन सकता जब तक दुल्हिन न बने। जिन्हें रामको दूल्हारूपसे पाना है, उन्हें नाक छिदानी पड़ेगी चूड़ी बीछिया पहिनने पड़ेंगे। मॉगमें सिंदूर लगाना पड़ेगा। हाव भाव कटाक्ष छोड़ते हुए घूँघटकी ओटमेंसे चोट मार कर दूल्हाको लोटपोट करनेकी शक्ति प्राप्त करनी होगी। तभी तो वह पाणिग्रहण करेगा। अपरिचितको अपना लेना सहज काम नहीं है।

राम दूल्हा बनकर जनकपुर जाते हैं। सबको सुख देते हैं, सीताजीको अपनाते हैं। उनके साथ आनन्द विहार करते हैं। दूल्हा रामको देख कर बहुतसे मनचले, पुरुष भी मूँछ मुड़ा फेर साडी पहिन कर सखी बन जाते हैं। और कोई दूसरा हो तो दुत्कार दें। चलो हटो बनावटी सखीका वेष बना लिया है। किन्तु राम तो बनावटको भी यथार्थ मान लेते हैं। वे बड़े दयालु हैं, बडे सरस हैं. किन्तु सरस ससुराल में ही है। राजा सिंहासन पर बैठ कर तो बड़े कठोर हो जाते हैं। इसीलिये मिथिला भावनाके उपासकोंका कहना है कि विवाह करके श्रीराम मिथिलासे कभी अवध गये ही नहीं। ससुरालमें ही बस गये ससुरके घरका निवास स्वर्गसे भी बढ कर है, फिर इन्हें तो ससुरालमें रहनेकी सनातन बान पडी है। समुद्रकी बेटी लक्ष्मीसे विवाह किया समुद्रमें ही बस गये। शिव रूपमें हिमालयकी पुत्री पार्वतीका पाणिग्रहण करके उसीके घरमें

सदाके लिये रह गये । इसीप्रकार सीताको लेकर जनकपुरमें ही एक महल बना कर सुखसे रहने लगे । चलो. रावण वध. सीता परित्याग संसार भरकी खटपटसे बच गये । नित्य विवाह नित्य भाँवर नित्य ज्योनार, नित्य कुँवर कलेऊ नित्य मिलनी ये ही होती रहे । सालियोंके लिये हँसी ठट्ठाका अवसर मिल गया । इधरसे निकलीं दो मीठी बातें सुना गईं । उधरसे आईं दो चटपटी बातें कह दीं । राम मुस्करा गये. उन्हें मानों पारितोषिक मिल गया । इसीलिये मिथिला उपासनाके भक्त विवाहके आगेकी लीला पढ़ते ही नहीं । विवाहके पश्चात् कुछ हुआ हो तो पढ़े भी संसारमें मुख्य वस्तु तो विवाह ही है। विवाह हुआ मानों सब कुछ होगया । अब तो सुख ही सुख है, जो वर्णनकी वस्तु नहीं अवर्णनीय विषय है । किन्तु अन्य भक्त अपने रामको घर जमाई कैसे देख सकते हैं । घर जमाई शब्द सुनते ही वे घबरा जाते हैं. भला दुलहिनके घरमें हमारे रहेंगे । नहीं ऐसा कभी नहीं हो सकता ।-रामको विवाह करने अधिकार ही नहीं । यह काम तो दशरथजीका है वशिष्ठ विश्वामित्र आदि बड़ोंका है । अकेले राम सुसरालमें पैर भी नहीं रख सकते । हाँ दश पाँच बार आना जाना होजाय संकोच दूर होजाय उसकी दूसरी बात है । नहीं जहाँ पग पग पर संकोच वहाँ मेरे संकोची राम अकेले जासकते हैं । वे भला विवाहकी बात मुखसे निकाल सकते हैं । उन्हें पता भी चल-जाय मेरे विवाहकी बात है, तो वे जनकपुर जाते भी नहीं । पक्षियों को मालूम पड़ जाय कि इन दानोंमें जाल बिछा है तो वे उन दानोंको लेने ही न जायँ. किन्तु फँसाने वाले बहेलिया तो बड़ी बुद्धिमानीसे बुलाकर फंसाते हैं । बूढ़े बाबा विश्वामित्र

बोले— बेटा! जनकपुरमें एक यज्ञ है देखने चलोगे।" 'चलो बाबाजी! भोले रामको यज्ञमें क्या आपत्ति थी! उन्हें यह क्या पता इसके भीतर कोई रहस्य है। भोले भाले ही ठहरे। जैसे बच्चेको बढ़ावा देनेको कहते हैं—"अच्छा देखो, यदि तुम उस काम करदो तो तुम्हें जाने कैसे बहादुर हो।" बच्चे बढ़ावेमें आकर कर देते हैं। श्रीरामचन्द्रजीसे भी कहा—'तुम शिव-धनुषको चढा सकते हो राम? राम बोले—'मैं चढा हा नहीं सकता, तोड़ भी सकता हूँ मरोड़ भी सकता हूँ, टुकड़े टुकड़े भी कर सकता हूं।" अच्छा करो तो सही, देखें तुम्हारी वीरता।" रामने धनुषको तोड़ा फन गये। दशरथजी आगये या चुपकेसे बुलवा लिये गये। आपसमें जाने क्या साठि गाँठि होगई। धर दिया रामके सिर पर मुहर। बड़ोंके सामने बोल भी नहीं सकते। रामने सिर झुका दिया। उसी दिनसे दूल्हा नीचे सिर झुकाये हुए ही चलता है। बहुतसे स्थानोंमें फूलोंसे उसका मुँह भी ढक देते हैं। बाँध दी उनके गलेमें जनक नन्दिनी।" अब कबतक यहाँ रहना है, राम सोचते, किन्तु बोलते नहीं। दोनों समधी समधी निपटलें। जाने आनेके सम्बन्धमें दूल्हेको बोलनेका कोई अधिकार ही नहीं। एक दिन रथ पर बैठ कर बहूके साथ चल दिये। महलोंमें आये। मातायें हर्षके मारे फूली न समाईं। जो भी पूजा करें गाँठ जोड़ कर करें। दोनोंको पास बिठा कर ही सब काम करावें। तुम जानते ही हो पास रहते रहते प्रेम हो ही जाता है। सीताजीसे रामजी प्रेम करने लगे। फिर वह प्रेम ऐसा बढा कि एक दूसरेके बिना रह हा नहीं सकते थे।

जहाँ दो बर्तन रहते हैं खटकते ही हैं। सौत सौतोंमें मनमुटाव

हो ही जाता है। रामचन्द्रको इस कलहको शांत रहने कुछ दिनों के लिये वन जाना पड़ा। उसमें कुछ राजनैतिक काम भी थे। रावणादि दुष्ट राजा प्रजाओं पर अत्याचार करते। उन्हें भी वशमें करना था। त्यागमें झगडा शान्त हो जाता है। रावणको मार कर श्रीराम लौट आये। आकर अवधपुरीमें राजा हुये। सिंहासनासीन हुये। अब राजा होकर राजोंकेसे सभी खेल करने चाहिये। भाइयोंसे कहा—"चारों दिशाओंमें जाओ। पृथिवी पर दिग्विजय करो। मैं यहाँ पुरीकी रक्षा करता हूँ पुर वासियों तथा अनुचरोंका पालन पोषण करता हूँ।" भाई दिग्विजयके लिये गये और अब आपकी नित्य ही बड़ी धूम धामसे सवारी निकलने लगी। चातककी भाँति सभी प्रजाके जन दर्शनोंको लालायित रहते। यद्यपि नित्य ही सवारी निकलती, किन्तु वह एक दिन उन्हें कोटि कल्पोंके समान प्रतीत होता। रात्रिभर सोचते रहते। कब प्रातः काल हो और कब राजारामचन्द्रजी की सवारीके दर्शन करें।

प्रातः काल होते ही सभी अपने अपने घरोंके सामने लीपते, चौक पूरते, बेल बूटे बनाते। सड़कें स्वच्छ सुगन्धित जलसे सींची जातीं। इधरसे उधर मतवाले हाथी घूमते। उनके गंडस्थलोंसे बह बह कर मद पृथिवी पर पड़ जाता। उसकी सुगंधिसे वायु सुगंधित बन जाती। उस समय वह समस्त पुरी ऐसी प्रतीत होती थी, मानों सज बज कर सोलहू शृंगार करके नायिका अपने नायककी प्रतीक्षामें बैठी हो। अवधपुरीके समस्त महलोंके शिखरों पर, पुर द्वार, सभा, चैत्य तथा देवालयों पर बड़े बड़े कलश झलमल झलमल करते हुये चमकते थे। समस्त पुरी पुण्यपताकाओंके फहरानेसे हिलती डुलती और कीलोल करती

सी दिखाई देता थी। सड़कें स्वच्छ करके नित्य सुंदरताके साथ सावधानीसे सजाई जाती। घर घर कदलीके फल द्वार वृक्ष शोभित थे। सुपारी नारियल तथा ताड़के पङ्क्तिबद्ध लम्बे २ वृक्ष बड़े ही भले मालूम पड़ते थे। कहीं कहीं वस्त्रोंसे दरवाजे बनाये जाते। उनमें बड़े २ शीशे लगाये जाते, जिसमें जी चाहे अपना मुख देख लो। मुख देखनेकी सभीको स्वाभाविक इच्छा होती है चाहे कैसा भी काना कुबरा मुख क्यों न हो। वह पुरी नित्य उत्सवमयी सी दिखाई देती थी। स्थान स्थान पर नित्य वन्दनवार बँधते थे। श्रीरामकी सवारी निकलते ही सभी नर नारी आगे आकर हाथोंमें नाना उपहार लिये हुए खड़े हो जाते। वे सब लोग अञ्जलि बाँधे हुए स्तुति करते—"हे प्रभो! पूर्वकालमें वराह वेष बनाकर इस वसुन्धराका आपने ही उद्धार किया था। अब राजा बन कर आप ही इसका निरन्तर पालन करें। इसी प्रकार हमें सदा सुख देते रहें।"

श्रीरामचन्द्रजीकी सवारी नित्य ही निकलती थी, नित्य ही वे पुरवासियोंको अपने दर्शन देते थे, किन्तु तो भी सबको ऐसा ही प्रतीत होता, मानो हमारे स्वामी चिरकालमें लौटे हैं, नित्य ही उनकी सवारीमें झाँकीमें नवनता दिखाई देती। जो राज-पथोंके दोनों ओर आकर खड़े हो सकते थे, वे तो पहिलेसे ही आकर खड़े होजाते। जो कुलवती महिलायें होतीं वे अपने गृहकार्योंको छोड़कर अटारियों पर चढ़ जातीं। ओखा मोखा, झार झरोखाओंसे घूँघटको हटाकर कमल नयन श्रीरामकी झाँकी करतीं और अतृप्त नयनोंसे अपलक निहारती रहतीं। अपने हृदयके मधुर भावोंको सुमन वरषा कर अभिव्यक्त करतीं। इस प्रकार सबको दर्शन देते हुए नगरकी प्रदक्षिणा करके पुनः

अपने पूववर्ती पिता पितामह प्रपितामह आदि महिपालोंसे सेवित सुखकर सुन्दर समस्त सामग्रियासे सम्पन्न अनन्त कोशों-से परिपूर्ण महलोंमें प्रवेश करते। इन्द्रके भवनको भी तिरस्कृत करने वाले उन महलोंकी शोभाका वर्णन कौन कर सकता है। उनके द्वारकी देहली विद्रुम मणियासे बनी हुई थीं। स्थान स्थान पर जो स्तम्भ लगे थे, वे काष्ठ पाषाणके नहीं बने थे। वे सब वैदूर्यमणियोंके बनये हुए थे। जिनमें जाने वालोंके प्रतिबिम्ब दिखाई देते थे। नीचेके फर्श स्वच्छ मरकतमणियोंको जड कर बनाये गये थे। उन महलोंकी भीतें स्फटिकमणियोंकी थीं। वे सुन्दर कलामर्मज्ञोंके द्वारा सुन्दरतापूर्ण सजाये गये थे। रंग बिरंगी सुंदर सुंदर मालायें यथा स्थान उनमें टॅंगी गई थीं। बहुरंगी पताकाओंसे भवन सुशोभित थे। नाना रंगके रेशमी वस्त्रोंसे वे स्थान स्थान पर आच्छादित थे। घरोंके द्वारोंके परदे बहुमूल्य पतले रेशमी वस्त्रोंके बने हुए थे। शुभ्र स्वच्छ मोतियों की झालरें लटकी हुई थीं। स्थान स्थान पर सभी इन्द्रियोंको सुखकर सामग्रियाँ सजी सजाई रखी थीं। स्थान स्थान पर अत्यन्त सुगन्धित धूपका धूम हो रहा था। सुगन्धियुक्त तेलों के तथा मणियोंके दीपक जल रहे थे। पुष्पोंकी कलियोंके गजरे बनाकर वे टेढ़े मेढे सुंदरता पूर्वक लगाये गये थे। वे भवन इतने भव्य थे कि इन सामग्रियोंके सजानेसे ही वे सुन्दर प्रतीत नहीं होते थे। अपितु उनके सौन्दर्यके कारण ही ये सब सामग्रियाँ शोभाको प्राप्त हो रही थीं। वहाँके जितने सेवक थे सभी सुन्दर थे। सेविकाओंके सम्बन्धमें तो कुछ कहना ही नहीं वे तो स्वर्गीय ललनाओं

के सौन्दर्यगर्वको भी खर्व करने वाली थीं। सभी नई अवस्था वाली श्यामा थीं। सभीके शरीरोंसे कमलकी सी गन्ध आती थी। सभी सुहावनी और मनभावनी थीं। आभूषणोंको भी विभूषित करने वाले उनके सुन्दर सुकुमार मनोज्ञ अनुपम अंग थे। ऐसे उन सजे सजाये महलोंमें श्रीरामचन्द्रजी

अपनी प्रिया जनक नन्दिनीके साथ निरन्तर विहार करते। श्रीराम आत्माराम हैं, वे अपनी आत्मामें ही रमण करते हैं। उनकी आत्मा विदेह तनया ही हैं। वे उन्हें प्राणोंसे भी अधिक प्यारी हैं। उनका पल भर भी वे वियोग सहन करनेमें समर्थ नहीं। वे बहुत कुछ करनेमें समर्थ हैं, किन्तु

१८

सीताको कभी भी पृथक नहीं कर सकते । वे सब दुःख सहन कर सकते हैं, किन्तु सीताके वियोगकी कल्पना भी करनेमें वे समर्थ नहीं । सीताजी नित नूतन क्रीडायें करके उनकी रसकी वृद्धि करती है। उन्हें श्रीसीताजीका रूप क्षण क्षणमें नूतन दिखाई देता है। दोनोंके सौन्दर्यकी कोई सीमा नहीं । इस अवतारमें वैदेहीहृदयधनने धर्मको ही प्राधान्य दिया। उन्होंने कामका उपभोग धर्म पूर्वक किया। उन्होंने एक पत्नीका जो व्रत ग्रहण किया वह अन्त तक निभाया। सीता-जीके सतीत्वके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या ? स्त्रीका सतीत्व तो सम्भव भी है, किन्तु बहुमुखी पुरुषका एक पत्नीव्रत परम प्रशंसनीय है। उसका पालन विधिवत् श्रीरामने किया । वे अवधपुरीको छोड़कर कहीं गये नहीं। जाते भी कहाँ अवध ही तो साकेत है । उससे कोई उत्कृष्ट स्थान हो, तो जायँ भी। अबभी वे कनकमहलोंमें विराज कर सीताजीके साथ नित्य लीलाओंमें निमग्न रहते हैं। उनका रामनाम, अयोध्या-धाम, विवाहादिकी लीला, अतसी कुसुम और दूर्वादलकी द्युतिके समान श्याम स्वरूप ये सभी नित्य हैं शाश्वत हैं। उनमें परिवर्तन नहीं । कभी नहीं । अब भी भाग्यशाली भक्त कनक भवन मे उनकी नित्य दिव्य लीलाओं का दर्शन करते हैं ।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! रामचरित तो अनंत हैं, उसकी समाप्ति नहीं, अंत नहीं । फिर भी रामके एक दूसरे रूप कृष्णकी लीलाका वर्णन करने वाला हूँ । इस अवतारमें रामने मर्यादाके परदेको भी फाड़ डाला । इस अवतारमें उन्होंने अपना अनन्त सौन्दर्य अनंत माधुर्य, अपार लावण्य और अनुपम भुवन मोहन रूप दिखाया । उन्हींकी ललित लीलाओंके लोभसे मैं अब आगे बढ़ता हूँ ।

शौनकजी बोले— तो हाँ सूतजी ! अब आप उसी अवतार की अनुपम लीलाओं की कथायें सुनावें।

सूतजी बोले—'महाराज ! अभी कैसे सुनाऊँ अभी तो मेरी भूमिका ही समाप्त नहीं हुई। मेरे गुरुदेव भगवान् शुकने श्रीमद्भागवतमे १२ स्कन्ध बनाये हैं। उनमें दशम ही प्रधान है। दशमकी विशुद्धिके निमित्त ही इन ९ स्कधोका वर्णन है। प्रथम आप नवमकी सब कथायें सुनलें, तब दशमकी कथा कहूँगा। हाँ एक बात तो रह ही गई। मैंने इस परम पावन रामचरितका माहात्म्य तो कहा ही नहीं।

शौनकजी बोले—'सूतजी ! माहात्म्य अवश्य कहे। दान देकर दानका माहात्म्य अवश्य सुनना चाहिये। माहात्म्य तो आप पहिले ही सुना देते तो उत्तम था। कोई बात नहीं। अब ही सुनादो जिसे सुनकर रामचरित श्रवण तथा पठनमे पुन पुन. प्रवृत्ति हो।"

सूतजी बोले— अच्छी बात है, महाराज ! अबमी रामचरितके श्रवण पठनका माहात्म्य सुनाता हूँ। उसे आप मन सावधान होकर श्रवण करें।

छप्पय

राम मातु पितु सुहृद् सखा स्वामी बनि जावें।
पति परमेश्वर, पुत्र रूप धरि सबहिं रहावें॥
जा जैसे ही भज भजे व ताही तैसें।
क्रीड़ा अनुपम करे भक्त पावें सुख जैसें॥
मन विषयनि तें मोडिकें, प्रभु सेवा संलग्न चित।
सो रघुवर लीला लखहिं, कनक भवन महँ होहिं नित॥

— ❀·❀ —

रामचरित माहात्म्य

(७०८)

पुरुषो रामचरितं श्रवणैरुपधारयन्।
आनृशंस्यपरो राजन् कर्मबन्धैर्विमुच्यते ॥ *

(श्रीभा० ९ स्क० ११ अ० २३ श्लो०)

छप्पय

रामचरित जे पुरुष प्रेमतैं पढें पढावैं।
तिनके छूटें बन्ध परम पदवी ते पावें॥
श्रवण पुटनितें पियैं हिये आवै कोमलता।
मिटहि कठिनता निखिल होहि जीवन महँ मृदुता॥
नितप्रति नवदिन नियमतैं, रामायन जे नर सुनहिं।
ते न भूलि भवजाल महँ, श्रवन रसिक कबहूँ फँसहिं॥

माहात्म्य बिनासुने वस्तुमें अनुरक्ति नहीं होती। सम्मुख अमृत रखा है यदि हम उसका महत्त्व नहीं जानते, उसके महात्म्यसे अपरचित हैं, तो वह हमारे लिए व्यर्थ है। कोई बड़े भारी महात्मा है, हमारे सम्मुखसे निकल जाते हैं। हम उनके माहात्म्यको नहीं जानते, तो जितना हमें लाभ होना चाहिये उतना लाभ नहीं होता है।

* शुकदेवजी कहते हैं—'राजन्! इस रामचरितको आपने श्रवण पुटोंसे पान करने वाला पुरुष ऋजुता मृदुता आदि गुणोंसे युक्त होकर कर्मबन्धनोंसे विमुक्त बन जाता है।

मंत्र ओषधि आदिमें माहात्म्य सुनकर ही रुचि बढ़ती है। इस लिये सभी का माहात्म्य श्रवण करना चाहिये। इससे किन किनको क्या लाभ हुआ।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! मैं तुमसे राम चरित का माहात्म्य अत्यंत ही संक्षेप के साथ कहता हूँ। 'राम' इन दो शब्दोंमें इतना बल है, कि पापी भी इनके सहारे पावन बन जाता है। मुखसे उच्चारण न भी करे, केवल कानों द्वारा सुन ही ले तो भी उसको मुक्ति हो जाती है। ओषधि खाली जाय तब तो अपना प्रभाव दिखाती ही है। खावें न केवल सुई द्वारा रक्त में पहुँचा दी जाय तो भी वह तत्काल चमत्कार दिखाती है। राम चरित वैसे तो स्वयं ही बड़ा मधुर चित्ताकर्षक तथा कानों को सुख देने वाला है। यदि समझकर श्रद्धा सुना जाय तब तो पूछना ही क्या। बिना समझे बूझे प्रसंग से भी जो राम चरित सुनता है। उसकी भी मुक्ति होती है। क्योंकि बारम्बार राम राम ये शब्द आते हैं। रामके रूप स्वभाव, शील और कार्यों का वर्णन होता है। जैसे निर्मली बूटा गँदले पानी में पड़ते ही उसकी मिट्टी को नीचे बैठा कर जलको विशुद्ध बना देती है, वैसे ही राम कथा कानों के द्वारा हृदय में प्रवेश करते ही उसकी कठिनता और चचलता मिटा कर अन्तः करण को सरल और कोमल बना देती है। इस विषय में प्राचीन काल में नारदजी ने सनत्कुमार मुनि का एक प्राचीन गाथा सुनाई थी। जिसमें राजा सौदामा गौतम शिवजी के शापसे राक्षस हो जाने पर भी रामायण सुननेके कारण उत्तम गतिको प्राप्त हुए।

यह सुनकर शौनकजी बोले—सूतजी! सनकादिक कुमारो

की नारदजी से भेट कहाँ हुई और यह कथा प्रसंग कैसे चला ? राजा सौदामा कौन थे ? शिवजीने उन्हें शाप क्यों दिया ? और रामायण श्रवण के प्रभावसे वे कैसे तर गये ? यदि आप उचित समझें तो कृपा करके हमारे इन प्रश्नोका उत्तर दें।"

यह सुनकर सूतजी कहने लगे—"मुनियो ! आपने बड़े ही सुदर पूछे ! इन प्रश्नो से श्रोता वक्ता दोनो का ही कल्याण होगा ' रामचरित के माहात्म्य का वर्णन होगा अच्छा तो सुनिये . मैं आपके प्रश्नों का यथावत उत्तर देता हूँ। एक समय सनक, सनंतन, सननकुमार और सनातन ये चारो मुनि घूमते घामते अपने पिता लोक पितामह ब्रह्माजी के दर्शनो के लिये उनकी सुमेरु शिखर वालीसुन्दर सभा में आये ब्रह्माजी का निवास स्थान तो सत्यलोक में है. किन्तु चौदह भुवनों का उन्हें काम देखना पड़ता है । अतः स्वर्ग के ऊपर सुमेरु शिखर पर उनकी एक सभा है । उसमें आकर तीनों लोकों के प्रार्थना पत्रोंपर विचार करते हैं आज्ञा देते हैं । वह सभा विचमें है नीचे के सातों विवरों सहित

कभी घटते हैं, न बढ़ते हैं। वस्त्र पहिनते नहीं। काम, क्रोध लोभ, मोह, मद मत्सर आदिके चक्करमें फँसते नहीं। स्वच्छन्द हो कर इधरसे उधर घूमते रहते हैं। कहीं कहीं भगवानकी कथा हुई वहाँ गये। समाप्त हो गई चले गये। यही इनके घूमनेका उद्देश्य है। मुखसे सदा 'हरिः शरणम् हरिः-शरणम्' इन शब्दोंको निरन्त उच्चारण करते रहते हैं। उन लोगोंने जब सुमेरुके शिखरसे त्रैलोक्य पावनी भगवती सुरसरि को गिरते देखा तो वे बड़े प्रसन्न हुए। कितने भी पुराने क्यों न हों, यह बाल्यसुलभ चञ्चलता कहाँ जाय। उनकी इच्छा स्नान की हुई। कोई अंगपर वस्त्र होतो उसे उतारकर कूदें। नंग धड़ंगे तुरन्त कूद पड़े। नहाते रहे किलोले करते रहे। इतने में ही उन्हें वीणा बजावत हरिगुण गावत सामनेसे आवत देवर्षि श्रीनारदजी दिखाई दिये। नारदजीको देख कर कुमार खिल उठे—"वे बोले—"नारद ! नारद ! तुम भले आये भले आये। भाई, आओ ? कहो, कहाँ जा रहे हो।"

नारदजीने कुमारोंको प्रणाम किया और कहा—"सौभाग्यकी बात है, जो मुझे आज आपके दर्शन हुए। कहिये मेरे लिये क्या आज्ञा है।"

कुमार बोले—"अजी आज्ञा क्या है, हमें तो भगवत्चर्चा श्रवण करनेका व्यसन लग गया है। जैसे किसीको अफीम खानेका भाँग पीनेका, तमालपत्र धूम्रपान करनेका व्यसन लग जाता है, तो वह जहाँ पहुँचता है, पहिले उसीकी खोज करता है, उसीके सम्बन्धमें पूछ ताँछ करता है। इसी प्रकार हमें तो हरि चर्चाके बिना कुछ सुहाता ही नहीं। कोई मधुर मधुर सुन्दर हरि सम्बन्धी चर्चा सुनाइये।"

की नारदजी से भेंट कहाँ हुई और यह कथा प्रसंग कैसे चला ? राजा सौदामा कौन थे ? शिवजीने उन्हें शाप क्यों दिया ? और रामायण श्रवण के प्रभावसे वे कैसे तर गये ? यदि आप उचित समझें तो कृपा करके हमारे इन प्रश्नोंका उत्तर दें ।"

यह सुनकर सूतजी कहने लगे—"मुनियो ! आपने बड़े ही सुंदर पूछे ! इन प्रश्नों से श्रोता वक्ता दोनों का ही कल्याण होगा ' रामचरित के माहात्म्य का वर्णन होगा अच्छा तो सुनिये , मैं आपके प्रश्नों का यथावत् उत्तर देता हूँ । एक समय सनक, सनंदन, सनत्कुमार और सनातन ये चारों मुनि घूमते घामते अपने पिता लोक पितामह ब्रह्माजी के दर्शनों के लिये उनकी सुमेरु शिखर वालीसुन्दर सभा में आये ब्रह्माजी का निवास स्थान तो सत्यलोक में है. किन्तु चौदह भुवनों का उन्हें काम देखना पड़ता है । अतः स्वर्ग के ऊपर सुमेरु शिखर पर उनकी एक सभा है । उसमें आकर तीनों लोकों के प्रार्थना पत्रोंपर विचार करते हैं आज्ञा देते हैं । वह सभा बिचमें है नीचे के सातों विवरों सहित भूलोक भुवर्लोक और स्वर्गलोक के जीव उसमें जा सकते हैं और ऊपरके महर्लोक जनलोक, तपलोक और सत्यलोकके भी निवासी वहाँ आसकते हैं। वहाँसे भगवती त्रिपथ गंगाजी निकली हैं। उनकी तीन धारा हैं स्वर्ग, पृथिवी और पातालको गई हैं। स्वर्गलोकमें उसी गङ्गाको मन्दाकिनी कहते हैं, पृथिवी पर अलकनन्दा और पातालमें वही भोगवतीके नामसे प्रसिद्ध है।

ये चारों कुमार सदा ५ वर्षके बालक ही बने रहते हैं; न

कभी घटते हैं, न बढ़ते हैं। वस्त्र पहिनते नहीं। काम क्रोध लोभ मोह, मद मत्सर आदिके चक्करमें फँसते नहीं। स्वच्छन्द हो कर इधरसे उधर घूमते रहते हैं। कहीं कहीं भगवान्की कथा हुई वहाँ गये। समाप्त हो गई चले गये। यही इनके घूमनेका उद्देश्य है। मुखसे सदा 'हरि शरणम् हरि शरणम् इन मन्त्रोंको निरन्तर उच्चारण करते रहते हैं। उन लोगोंने जब सुमेरु शिखरसे त्रलोक्य पावनी भगवती सुरसरि को गिरते देखा तो वे बड़े प्रसन्न हुए। कितने भी पुराने क्यों न हों, वह बाल्यसुलभ चञ्चलता कहाँ जाय। उनकी इच्छा स्नान की हुई। कोई अगपर वस्त्र होतो उसे उतारकर कूदें। नग्न थडगे तुरन्त कूद पड़े। नहाते रहे किलोले करते रहे। इतने में ही वन्द वीणा बजावत हरिगुण गावत सामनेसे आवत देवर्षि श्रीनारदजी दिखाई दिये। नारदजीको देख कर कुमार खिल उठे— वे बोले— नारद! नारद! तुम भले आये भले आये। भाई आओ? कहो, कहाँ जा रहे हो।"

नारदजीने कुमारोंको प्रणाम किया और कहा—'सौभाग्यकी बात है जो मुझे आज आपके दर्शन हुए। कहिये मेरे लिये क्या आज्ञा है।"

कुमार बोले—'अजी आज्ञा क्या है, हमें तो भगवत्चर्चा श्रवण करनेका व्यसन लग गया है। जैसे किसीको अफीम खानेका भाँग पीनेका तमालपत्र धूम्रपान करनेका व्यसन लग जाता है तो वह जहाँ पहुँचता है पहिले उसीकी खोज करता है, उसीके सम्बन्धमें पूछ ताँछ करता है। इसी प्रकार हमें तो हरि चर्चाके बिना कुछ सुहाता ही नहीं। कोई मधुर मधुर सुन्दर हरि सम्बन्धी चर्चा सुनाइये।'

यह सुनकर प्रसन्नता प्रकट करते हुए भगवान नारद जी बोले—"क्यों न हो, महाराज! आप स्वय साक्षात् ब्रह्माजीके मानस पुत्र हैं। सबसे जेष्ठ और श्रेष्ठ हैं मेरे सगे भाई हैं। आपका तो हरिचर्चा आहार ही है। हरि-चर्चाके लिये ही तो आपने इस शरीरको धारण कर रखा है। आप तो स्वय साक्षात् ईश्वर ही हैं। लोक कल्याणार्थ ही आप ने अवतार लिया है। आपतो कल्याण स्वरूप ही हैं, फिर भी जगत्के कल्याणार्थ आप विचरते रहते हैं और समस्त अघ हारिणी हरिकथाको श्रवण करते रहते हैं। जो उत्तम-कुलका कुलीन सदाचारी पुरुष श्रद्धासे राम कथा सुनते हैं, उनका तो उद्धार होता ही है, किन्तु जो दुष्ट स्वभावके व्यभिचारी पुरुष भी हैं वे भी रामकथा श्रवणसे विशुद्ध बन जाते हैं। देखिये, रामायणकी कथाके श्रवणसे ही शिवजीके शापसे राक्षस बने राजा सौदामाकी मुक्ति होगई।"

इस पर कुमारोंने पूछा—"राजासौदामा कौन थे कैसे उन्हें शिवजीका शाप हुआ और कैसे उनकी मुक्ति हुई। कृपा करके इस प्रसगको आप हमें सुनावें।"

नारदजी बोले— सुनिये, महाराज! प्राचीन कालमें गङ्गा-तट पर महामुनि गौतम निवास करते थे। उनकी सेवामें सोमदत्त नामके एक सदाचारी ब्राह्मण रहते थे। उन्होंने मुनिसे समस्त शास्त्रोंका श्रवण पठन किया था। निरन्तर शास्त्रोंका सुनते सुनते वह बड़ा भारी विद्वान हो गया। उसे अपनी विद्याका अभिमान भी हो गया।

एक दिन वह शिवजी की पूजा कर रहा था उसी समय उसके गुरु भगवान् गौतम वहाँ पधारे। उसने न तो उठकर गुरु

का अभ्युत्थान ही दिया न प्रणाम ही किया। ठूँठकी भाँति देखते हुए भी वह दृष्टिहीन सा बन गया। उसके इस व्यवहारसे गुरु तो कुछभी न बोले, शिवजीको बडा क्रोध आया। उन्होंने शाप दे दिया—"जा तू राक्षस होजा।"

अब क्या था सोमदत्तका समस्त अभिमान कपूरकी भाँति उड गया। दौडकर उसने गुरुके पैर पकड लिये, लगा रोने गिडगिडाने। गुरुजीने कहा— देख भैया! सुनले मेरी सीधी सच्ची बात। शिवजीके शापको व्यर्थ करनेकी मेरी सामर्थ्य नहीं। हाँ इतना मैं किये देता हूँ, कि यह शाप १२ वर्ष तक ही रहेगा और रामचरित श्रवणसे तेरी मुक्ति हो जायगी।" यह सुन कर सोमदत्तको कुछ सन्तोष हुआ। वह तुरन्त शिवजीके शापसे राक्षस भावको प्राप्त होगया। अब क्या था अब तो वह घोर पाप करने लगा बडे बडे उपद्रव मचाने लगा। मनुष्योंको पकड पकड कर खाने लगा। घोर अरण्यमें जिसे भी देखता उसे ही खाजाता। इस प्रकार करते हुए वह वनोंमे विचरण करने लगा।

एक दिन कोई ब्राह्मण उसे दिखाई दिया। वह प्रयाग स्नान करके गङ्गाजल लिये हुए था। मुखसे राम इस महामंत्रको निरतर उच्चारण कर रहा था। राक्षसने जब दूरसे ही उस ब्राह्मणको देखा, तो वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने सोचा—"अच्छा, चलो मेरा आहार तो आगया।" ऐसा विचार करके वह ज्यों ही ब्राह्मणकी ओर दौडा, त्यों ही उसकी गति रुक गई वह आगे बढ ही न सका। ब्राह्मणके ऐसे प्रभावको देख कर राक्षसको बडा आश्चर्य हुआ उसने विनयके साथ कहा—' विप्रवर! आप धन्य हैं। आपकी तपस्याको धन्य है।

जिसके प्रभावसे मेरा आप पर कुछ वश ही न चला। मैं आप का धर्षण करना चाहता था, किन्तु न कर सका। मैंने अब तक लाखों करोडों ब्राह्मणोंको खाडाला है। आप यह किस मंत्रका जप कर रहे हैं, जिसके प्रभावसे राक्षस भी आपकी ओर दृष्टि उठाकर नहीं देख सकता। आप तो बड़े प्रभाव शाली है।"

वे ब्राह्मण जिनका नाम गर्ग था राक्षसकी बात सुनकर बोले—'राक्षसराज! आप जो यह प्रभाव देख रहे हैं, यह सब राम नामका प्रभाव है। निरन्तर राम नामका जप करता रहता हूँ। रामचरितका श्रद्धा सहित श्रवण पठन करता हूँ।"

यह सुनकर प्रसन्नता प्रकट करते हुए राक्षसने कहा—'विप्रवर! आपने अच्छा स्मरण दिलाया। मैं भी पहिले ब्राह्मण था, गुरुका अपमान करनेके कारण शिवजीने मुझे शाप देकर राक्षस बना दिया है। मेरे गुरुदेवने मुझे आज्ञा दी थी, कि रामचरित सुननेसे तुम्हारी मुक्ति होगी। सो, ब्राह्मन्! आप वेद वेदाङ्गोंके पारङ्गत हैं, विद्वान् हैं, सुशील है, विनम्र हैं वैष्णव हैं परोपकारी हैं आप मेरे ऊपर कृपा करें मुझे इस पवित्र कार्तिक मासके शुक्लपक्षमें रामचरित सुनावें।"

वैष्णवोंसे कोई रामचरित कहनेको कहे, तो वे सब कुछ भूल जाते हैं। बड़ेसे बड़े कार्योंको परित्याग करके रामचरितमें निरत होजाते हैं। उन गर्ग ब्राह्मणने विधिवत् उस ब्रह्मराक्षसको रामचरित सुनाया। भगवान् रामचन्द्रकी मर्यादामयी आनन्दमयी अत मधुर कथाके सुनते ही वह प्रेतत्वसे निर्मुक्त हो गया। दिव्य शरीर धारण करके और महामुनि गर्गके प्रति अपना सम्मान प्रदर्शित करके वह वैकुण्ठलोकको चला गया।"

सूतजी कहते हैं—'मुनियो ! इस प्रकार देवर्षि नारदजीने सनकादि महर्षियोंसे इस रामचरितके महात्म्यके सम्बन्धमें कहा था। वास्तवमें मनुष्योंकी पापमें रुचि तभी तक होती है, जब तक उसे रामकथामें रस नहीं आता। रामकथामें रस आने पर ये सांसारिक रस अत्यन्त ही तुच्छ दिखाई देते हैं। देखिये, महापापी महाव्यभिचारी शूद्र भी अपनी प्रेमिकाके साथ रामचरित श्रवणसे परम पदका अधिकारी बन गया।

शौनकजीने पूछा—'सूतजी ! पापी शूद्र रामकथा श्रवणसे कैसे परम पदका अधिकरी हो गया कृपया इस कथाको भी हमें सुनावें। इन आख्यानोंके श्रवणसे हमारी रामचरितमें अधिकाधिक प्रीति बढती जाती है।"

यह सुन कर सूतजी बोले—'मुनियो, महाराज ! यह कथा भी नारदजीने ही सनकादि मुनियोंसे कही थी। पूर्वकालमें सुमति नामके एक राजा थे। वे बडे धार्मिक सतक्रियापरायण तथा ब्रह्मण्य थे। उसकी पत्नीका नाम सत्यवती था वह सभी गुणोंसे सम्पन्न गुणवती तथा भाग्यशालिनी था। वे दोनों मिलकर बडे प्रेमसे रामचरित का कथा सुना करते थे। एक दिन घूमते फिरते महामुनि विभाण्डक अपने शिष्यों सहित राजाके यहाँ आये। राजाने पाद्य अर्घ्य आदि देकर मुनिकी विधिवत् पूजा की, उन्हे सुन्दर सुवर्ण के सिंहासन पर बिठाया तथा मुनिने तपकी आश्रमकी तथा अग्नियोंकी कुशल पूछी। कुशल प्रश्नके अनन्तर महामुनि विभाण्डक बोले—"राजन् ! आप सर्वदा रामचरितकी ही कथा क्यों सुनते रहते हैं। संसारमें तो और भी उत्तम उत्तम

पुराण हैं, शास्त्र हैं। आप उन सबको छोड़ कर निरन्तर रामायणमें ही क्या लगे रहते हो।"

यह सुन कर राजा बोले—"भगवन्! संसारमें जिसका जिससे काम निकलता है, वही उसे प्रिय है। संसारमें असंख्यों सुन्दरसे सुन्दर पुरुष हैं, किन्तु सतीको तो अपने पतिसे ही प्रयोजन है। बहुत सी रंगी हुई सुन्दरसे सुन्दर नौकायें हैं, किन्तु हमें तो उसीसे पार जाना है जिस में बैठे हैं। संसारमें एकसे एक बढ़ कर महात्मा हैं। किन्तु हमारा उद्देश्य तो उन्हींसे सफल होगा जिनके द्वारा हमारे हृदयकी ग्रन्थि खुल जायगी, जिसके द्वारा हमारे संशयोंका नाश हो जायगा। मेरा कल्याण तो पूर्व कालमें एक बार रामायण श्रवणसे ही हुआ है।"

महामुनि विभाण्डकने पूछा—'राजन्! पूर्वकालमें आप का उद्धार किनके द्वारा कैसे हुआ इस प्रसङ्गको आप कृपा करके मुझे सुनाइये।"

मुनिकी बात सुनकर राजा अपनी पूर्वकी कथा सुनाने लगे। राजा बोले—'ब्रह्मन्! मैं पूर्व कालमें मालिनि नामक शूद्र था। नित्य ही प्राणियोंकी हिंसा करता था। अपेय पदार्थोंको पीता था। अखाद्य पदार्थोंको खाता था। जाति वालोंसे कुल वालोंसे और देशवासियोंसे द्रोह करता था। मांस ही मेरा प्रधान आहार था। मदिरा मेरा प्रधान पेय था, धन छीनना ही मेरा ध्येय था। प्राणियोंकी हिंसा करना ही मेरा प्रधान व्यापार था। मैं कुछ लूटपाट कर चोरी करके लाता, वह सब वेश्याओंको लाकर दे देता। इस प्रकार कुछ दिनों तक तो मेरे कुल वाले सहन करते रहे। अंतमें उन सबने

मिल कर मुझे नगर से निकाल दिया। परिजनों से परित्यक्त मैं धर उधर जंगलों और पर्वतों में भटकता रहा।

जो कोई जीव मिल जाता, उसे ही मारकर खालेता। ऐसे ही घूमते घामते में वशिष्ठ मुनि के आश्रम के निकट पहुँचा। वह स्थान सुन्दर था। वहाँ की शोभा अनुपम थी। मैं आश्रम के समीप ही एक पर्ण कुटी बनाकर रहने लगा। आश्रम से कुछ दूर पत्थरों को इकट्ठा करके मैंने चबूतरा बनाया और उस पर घास फूँस तृण छाकर रहने योग्य स्थान बना लिया। वहाँ मैं व्याध का जीवन व्यतीत करता जंगलों से जीवों को मार लाता और उनके मांस को खाकर निर्वाह करता इस प्रकार वन में रहते हुए मुझे २० वर्ष व्यतीत हो गये।

एक दिन मैं बैठा था, कि मुझे एक रुदन का करुण शब्द सुनाई दिया। मैं उस शब्द की ध्वनि को ही लक्ष्य करके आगे बढ़ा। कुछ दूर चल कर एक वृक्ष के नीचे रोती हुई एक स्त्री मैंने देखी। उसके समीप जाकर मैंने उसे सान्त्वना देते हुए पूछा—"देवि! तुम कौन हो? इस वन में क्यों आई हो और क्यों रो रही हो?"

उसने रोते रोते कहा—"आप मुझ अभागिनी के प्रति इतनी दया क्यों दिखा रहे हैं, मैं बड़ी पापिनी हूँ। मेरा जन्म निषाद जाति में हुआ है। काली मेरा नाम है मैं बड़ी व्यभिचारिणी और अधर्मचारिणी हूँ। परपुरुषों के कहने से मैंने अपने पति की गुप्त रीति से हत्या कर डाली थी। जाति वालों ने मुझे घर से निकाल दिया। अब मैं इधर उधर आश्रय हीन होकर भटक रही हूँ।"

मैंने सोचा—"राम मिलाई जोड़ी, एक अंधा एक कोढ़ी" अच्छी बात है चलो हम तुम दोनो साथ रहे।" मेरा प्रस्ताव उसने भी स्वीकार कर लिया। मैं भी अपने हाथ से मांस पकाते पकाते ऊब गया था, वह भी आश्रय चाहती थी। हम दोनो पति पत्नी की भाँति रहने लगे।

एक बार हमने देखा, वशिष्ठ मुनि के आश्रम पर बड़ी धूमधाम होरहा है। बहुत से ऋषि मुनि आरहे हैं। हम दोनो इस लोभ से मुनि के आश्रम के समीप जाकर बैठ गये, कि मुनि प्रसाद पाकर जो पत्तल फेंक देंगे उसमें कुछ न कुछ उच्छिष्ट हमें मिल जाया करेगा। पहिले तो मुनि के आश्रम की ओर जाने का मेरा साहस ही नहीं होता था। जब मैं स्त्री सहित जाने लगा तो मुझे यथेष्ठ जुठन,मिलने लगी। इसी लोभ से हम दोनो नित्य वहाँ जाते एक तो भगवान् का प्रसाद फिर महात्माओं के अधरामृतज से लगा हुआ उच्छिष्ट। उस महाप्रसाद के पान से हमारे मन का मल धुल ने लगा। उसी समय सुना कल से यहाँ रामायण का नवाह पाठ होगा। सह दोनो भी एकान्त मे दूर बैठकर समाप्त हुआ उसी दिन हम दोनो की मृत्यु हो गई। उस पुण्य प्रभाव से ही मैं राजा हुआ और मुझे पूर्व जन्म की सब बातें ज्यों की त्यों स्मरण बनी रही। यह मेरी पत्नी वह निषाद कन्या काली है इस जन्म में भी यह मेरी पत्नी हुई। इसी लिये हम निरंतर राम चरित सुनते रहते हैं, कि फिर हमें संसार में न आना पड़े।', यह सुनकर विभाण्डक मुनि परम प्रसन्न हुए और राजा द्वारा सत्कृत होकर शिष्यों के सहित अन्य स्थान को चले गये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो। मैं कहाँ तक सुनाऊँ ऐसे एक दो नहीं असंख्यों इतिहास हैं जो बड़े से बड़े पापी केवल राम

कथा सुन कर ही तर गये हैं। एक अत्यंत क्रूर चोर था। वह विष्णु मंदिर में देव धन को अपहरण करने गया। वहाँ एक ब्राह्मण को सोता देखकर उसे मारने को उद्यत हुआ। ब्राह्मण ने उससे नम्रता पूर्वक कहा—"तू मुझे क्यों मारता है मैंने तो तेरा कुछ बिगाड़ा नहीं।" ब्राह्मण की वाणी सुनकर उसे अपने कुकृत्य पर पश्चाताप हुआ। ब्राह्मण की शरण गया। ब्राह्मण ने उस पर दया की। राम चरित सुनाकर उसे संसार सागर से सदा के लिये मुक्त कर दिया। मुनियो! मैं राम चरित की कहातक प्रशंसा करूँ, यह चरित धन्य है, यश को देने वाला है। जिसके पुत्र न हो वह यदि श्रद्धा से राम चरित्र श्रवण करे तो उसके पुत्र हो जाय। जिसका विवाह न होता हो, वह यदि, नियम पूर्वक राम चरित्र सुने तो उसे सुंदर वहू मिल जाय। जिस कन्या को पति न मिलता हो, यदि वह राम चरित को सुने तो उसे मनोनुकूल पति की प्राप्ति हो! दरिद्र धन की इच्छा से राम चरित सुने तो धनी हो जाय। विद्यार्थी भक्ति पूर्वक राम चरित सुने तो उसे विद्या की प्राप्ति हो। शरणार्थी यदि सावधान होकर राम चरित सुने तो उसे सब के शरण दाता श्री हरि मिल जायँ उनकी शरण में जाकर सुखी हो जाय। सारांश यह कि राम चरित, धर्म, अर्थ काम और मोक्ष तक को देने वाला है। जो मोक्ष की भी इच्छा नहीं रखते, ऐसे निष्काम भक्त यदि निरन्तर राम कथा को ही सुनते रहें, तो उन्हें प्रभुपादपद्मों में अहैतुकी पराभक्ति प्राप्त हो। वह प्रभुप्रेम में पागल बने, परमानंद सुख का सदा अनुभव करते रहे। इस प्रकार यह मैंने अत्यंत ही संक्षेप में श्रीराम चरित के माहात्म्य का वर्णन किया। अब मुनियो! आप लोग और क्या सुनना चाहते हैं।"

यह सुनकर शौनक जी बोले—"सूतजी ! आपने परम पावन राम चरित सुनाकर हमें कृतार्थ कर दिया । महाभाग ! आप सूर्यवंश की वंशावली हमें सुना रहे थे । सूर्य वंश के प्रधान प्रधान राजाओं का वर्णन करते करते आप दशरथ नन्दन भगवान रामचन्द्रजी तक आ गये थे । अब हम इससे आगे की वंशावली और सुनना चाहते हैं ।

इस पर सूत जी बोले—"अच्छी बात है मुनियो ! अब मैं अत्यन्त ही संक्षेप में इस सूर्यवंश का वर्णन करके फिर उस चन्द्रवंश का वर्णन करूँगा । जिसमें चन्द्रवंशावतंस भगवान् कृष्णचन्द्र जी अवतरित हुए हैं । महाराज दशरथ जी के राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न चार पुत्र हुए । चारों के दो दो पुत्र हुए, श्रीराम चन्द्र जी के सबसे बड़े पुत्र कुश हुए । अब कुश के आगे के राजाओं की वंशावली सुनिये ।

छप्पय

ग्राम्य कथा महँ व्यर्थ जीव जीवन सब खोवें ।
अन्त समय यमदूत निरखि डरि पुनि पुनि रोवें ॥
राम कथा यदि सुनहिँ दुःख काहे कूँ पावें ।
देखें नहिँ यमसदन नित्य बैकुंठ सिधावें ॥
चिन्ता दुख भय शोकयुत, नीरस यह संसार है ।
है यदि याम तत्व तो, राम चरित ही सार है ॥

इच्वाकुवंश के शेष राजा

इक्ष्वाकूणामयं वंशः सुमित्रान्तो भविष्यति ।
यतस्तं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ॥ *

(श्री भा० ९ स्क० १२ अ० १६ श्लो०)

छप्पय

कुश के सुत नृप अतिथि निषध नृप तिनके नभ सुत ।
हिरण्य नाम नृप दशम पीढ़ि महँ भये योग युत ॥
जैमिनि मुनि तें योग सीखि कीरति बहु पाई ।
याज्ञवल्क्य कूँ जिननि योग विधि सरल सिखाई ॥
तिनकी छटमीं पीढ़ि महँ भूप वंश धर मरु भये ।
वंश चलाने के निमित , अजर अमर नृप ह्वै गये ॥

संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसका बीज नष्ट हो जाता हो धर्म और अधर्म दोनों ही भगवान् के अंश से उत्पन्न हुए हैं धर्म हृदय प्रदेश से प्रकट हुआ है और अधर्म पृष्ठ देश से। सत्य युग में जब धर्म चारों पैरों से अवस्थित रहता है , तब भी अधर्म सूक्ष्म रूप से वहाँ रहता है । इसी प्रकार कलि युग में जब

---

*श्रीशुकदेव जी कहते हैं—"राजन् ! इक्ष्वाकु वंशीय भूपतियों का यह सुमित्र नाम के राजा तक ही चलेगा । कलि युग में उस राजा के अनन्तर यह वंश समाप्त हो जायगा ।

पूर्ण रूप से अधर्म व्याप्त हो जाता है तब भी धर्म 'बीज रूप से बना ही रहता है। सृष्टि में बीज सबके बने रहते हैं।

भगवान् के अवतार युग के अंत मे हुआ करते हैं। जैसे सत्य युग मे लोगों में ज्ञान की भावना स्वाभाविक थी। बिना सिखाये पढ़ाये ही सभी ज्ञानी होते थे। प्रकृति की गति स्वभावत पतन की ओर है। उत्थान् के पश्चात् पतन यह लगा रहता है, किन्तु स्वभावतः प्रकृति शनैःशनैः पतन की ओर जाती है। जिसे सृष्टि के आदि मे प्रथम जो सत्ययुग होगा उस में धर्म पूर्ण रूप से रहेगा। फिर धर्म शनैः शनैः क्षीण होते होते कलियुग में क्षीण हो जायगा। कलि युग के पश्चात् फिर जो दूसरा सत्ययुग आवेगा उसमें धर्म पूर्ण रूप से रहेगा तो अवश्य, किन्तु प्रथम सत्ययुग की भाँति न रहेगा। उससे कुछ न कुछ न्यून ही हो जायगा ऐसे ही होते होते कल्प के अंत के सत्ययुग में धर्म बहुत ही न्यून हो जायगा और कल्प के अंत के कलियुग मे तो सृष्टि का प्रलय ही हो जायगा।

इस प्रकार शनैः शनैः धर्म का ह्रास होता रहता है भगवान् अवतार लेकर उसका अभ्युत्थान करते हैं इसीलिये युगावतार प्रायः युग के अंत मे अवतरित होते हैं। सत्ययुग में जो स्वाभाविक ज्ञान की प्रवृत्ति थी वह सत्ययुग के अत मे आकर क्षीण हो गई। उसका पुनरुत्थान करने के लिये, भगवान् कपिल का अवतार हुआ। उन्होंने ज्ञान का प्रसार किया और यज्ञ की भी प्रशंसा की। त्रेता में ज्ञान के साथ वर्णाश्रम धर्म समस्त यज्ञ यागों का भी प्रसार हो गया। उस मे जब ह्रास होने लगा तो त्रेता के अत में भगवान श्रीरामचन्द्र जी का अवतार हुआ भगवान् के वंशज द्वापर के अन्ततक पृथ्वी का पालन करते रहे

कलि युग में विशुद्ध क्षत्रिय वंश अधर्म के कारण रह नहीं सकता कलियुग में वर्णाश्रम धर्म नष्ट प्राय हो जायगा। यदि सूर्य वंश और चन्द्र वंश का बीज ही नष्ट हो जाय तो फिर आगामी सत्ययुग में इन वंशों का प्रसार कैसे हो। इसीलिये भगवान् का ऐसा विधान है, कि कलियुग के आते ही एक सूर्य वंश के राजा अपनी दिव्य देह से गंधमादन पर्वत पर गुप्त रूप से एक युग तक रहकर तपस्या करते रहते हैं। वे योग प्रभाव से अपने शरीर को टिकाये रहते हैं, कलि युग के अन्त होते ही वे विवाह करके फिर से सूर्य वंश और चन्द्र वंश की स्थापना करते हैं। इन्हीं सब कारणों से ये सूर्य वंश और चन्द्र वंश कल्प के अन्त तक नष्ट नहीं होते। यह सब भगवान् की इच्छा से हो होता है।

सूतजी कहते हैं—'मुनियो! अब तक मैंने इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं का श्रीराम चन्द्र जी तक वर्णन किया। अब आगे के राजाओं का वर्णन सुनें। श्री रामचन्द्र जी के बड़े पुत्र हुए कुश वे कुशावती के राजा हुए। कुश के पुत्र अतिथि हुए। अतिथि के निषध और निषध के नभ हुए। नभ के पुत्र पुण्य श्लोक पृथवी पति पुण्डरीक हुए और पुण्डरीक के पुत्र क्षेमधन्वा हुए। क्षेम धन्वा के देवानीक, उनके अनीह और अनीह के पुत्र परमयशस्वी पारियात्र हुए। पारियात्र के बलस्थल उनके वज्रनाभ हुए। ये वज्रनाभ परम तेजस्वी हुए। सूर्य के समान इनका तेज था। इसलिये इन्हें सूर्य के अंश से उत्पन्न मानते हैं। वज्रनाभ के पुत्र खगण और उनके विधृति हुए। विधृति के पुत्र परम यशस्वी हिरण्यनाभ हुए ये संसार में योगाचार्य करके प्रसिद्ध हैं। भगवान जैमिनि मुनि से इन्होंने योग की शिक्षा पाई थी। ये इतने प्रभाव शाली हुए कि कोशल देश वासी याज्ञवल्क्य ऋषि ने इनका

शिष्यत्व स्वीकार किया। क्षत्रिय होकर भी ये ब्राह्मण के गुरु हुए भगवान् याज्ञवल्क्य ने हृदय की ग्रन्थि को छेदन करने वाला महान् सिद्धि प्रद अध्यात्म योग इन्हीं से सीखा था।

इन हिरण्यनाभ के पुत्र पुष्य हुए और उनके ध्रुवसन्धि। ध्रुवसन्धि के सुदर्शन और सुदर्शन के परम तेजस्वी अग्निवर्ण भूपति हुए। अग्निवर्ण से शीघ्र और शीघ्र के ही पुत्र चिरजीवी मरु हुए।

महाराज मरु परम योगी हुए। इनके जब एक पुत्र होगया, तो ये सब राज पाट छोड कर गंध मादन पर्वत पर, बदरी वन से आगे कलाप ग्राम में जाकर तपस्या करने लगे। ये समाधि के अभ्यास से युग जीवी महापुरुष हो गये। अब तक ये कलाप-ग्राम में तपस्या कर रहे हैं और इस कलियुग के अन्त तक तपस्या करते रहेंगे। कलिकाल में सूर्य वंश नष्ट हो जायगा, फिर जब सत्ययुग आवेगा लोगों की धर्म में रुचि बढ़ेगी, धर्म अपने चारों पैरों से अवस्थित हो जायगा, तभी ये ही सूर्य वंश में बीज रूप महाराज विवाह करके सूर्य वंश की पुनः स्थापना करेंगे। आगामी द्वापर में जो व्यास होंगे उन्हीं का वर्णन करेंगे। अब जो मरु के पुत्रों का वंश चला वे लोग तो सब अल्प वीर्य साधारण राज हुए। उनमें भगवान् विष्णु की कला का अंश उतना नहीं है। अतः ये कलियुगी साधारण नाम मात्र के राजा हुए। पहिले युगों के राजा लाखों वर्ष जीते थे, उनकी आयु युगों की होती थी। ये कलियुगी राजा थोड़े ही दिनों में पञ्चत्व को प्राप्त होंगे।

मरु के पुत्र प्रसुश्रुत हुए उनके सन्धि और सन्धि के अमर्षण। महाराज अमर्षण के पुत्र महस्वान हुए और महस्वान के

विश्वसाह। विश्वसाह के प्रसेनजित के तक्षक हुए। ये कोशलाधिप महाराज तक्षक महाभारत के युद्ध के समय विद्यमान् थे। यद्यपि इनके पुत्र बृहद्‌बल भी परम शूरवीर थे, उनके एक पुत्र भी थे बृहद्रण तो भी राज गद्दी पर महाराज तक्षक ही थे। ये दोनों बाप बेटे महाभारत समर में मारे गये। बृहद् बल का वध अर्जुन पुत्र अभिमन्यु ने किया। बृहद् बल महारथी थे। ६ बड़े बड़े महारथियों ने मिल कर वीर अभिमन्यु को घेर लिया था, उनमें से बृहद् बल को तो अभिमन्यु ने मार दिया। शेष मन ने मिल-कर अभिमन्यु को अधर्म पूर्वक मार डाला।

इस पर शौनक जी ने पूछा—"सूत जी महारथी कोशलराज कुमार बृहद्‌बल को अभिमन्यु ने कैसे मारा और वे फिर किस प्रकार मारे गये इस वृत्तान्त को कृपाकरके हमें सुनाइये।

यह सुनकर सूत जी बोले—'अजी, महाराज! यह तो बहुत बड़ा वृत्तान्त है। इसे सुनाने लगूँगा तो इक्ष्वाकु वंशीय राजाओं की कथा रह ही जायगी। अतः मैं अत्यंत ही संक्षेप में इस कथा को कह कर आगे बढ़ता हूँ। मुनियो! महाभारत के युद्ध में षोडश वर्षीय अर्जुन पुत्र अभिमन्यु ने बड़ी ही वीरता दिखाई। उसकी अद्‌भुत वीरता को देख कर पांडव पक्षीय वीर काँप उठे द्रोणाचार्य जो उस सेना के पितामह भीष्म के पश्चात् प्रधान सेनापति बनाये गये थे उन्होंने पांडवों को परास्त करने के निमित्त चक्रव्यूह की रचना की। धर्मराज युधिष्ठिर ने पूछा—'इस चक्रव्यूह में घुस कर इस का नाश कौन कर सकता है?"

वीर अभिमन्यु ने कहा—"मैं कर सकता हूँ।"
उस छोटे बालक की ऐसी वीरता भरी बात सुन कर धर्म राज ने उसे हृदय से लगाया और सिर सूँघकर युद्ध के लिये विदा किया

वीर वर अभिमन्यु ने माता के गर्भ में ही सुनते सुनते चक्र व्यूह छेदन को सीख लिया था। वह वीर अपने सिंह नाद से दशों दिशाओं को कपाता हुआ सभी कौरव वीरों के देखते देखते अभेद्य चक्र व्यूह में घुस गया और वहाँ सैनिकों को मारने लग तथा महारथियों को युद्ध केलिये ललकार ने लगा। उसके ऐसे पराक्रम को देखकर वहुत से वड़े वडे वीर उस से लड़ने आये, किन्तु सब के सब पराजित होकर रण से भाग गये। इसके ऐसे प्रचंड वेग को देखकर एक साथ ६ महारथियों ने उस वालक को घेर लिया। दश हजार योद्धाओं से एक साथ लड़ने वाले का महारथी रहा है। ऐसे ६ महारथी जिस बच्चे को घेर लें, फिर भी जो विचलित न हो उसकी वीरता के सम्बन्ध में क्या कहना। वे ६ महारथी साधारण नहीं थे। सभी विश्वविख्यात हैं। उनमें सम्पूर्ण अस्त्र शस्त्रों के मर्मज्ञ आचार्य द्रोण, उनके निश्वविदित पुत्र अश्वत्थामा कुरु कुल के पुरोहित महा धनुर्धर कृपाचार्य, वीराग्रगण्य हार्दिक यादवों के सुप्रसिद्ध महारथी कृतवर्मा और कोशल देश के राजकुमार 'बृहद्बल ये ही सब विश्वविख्यात वीर थे।

वालक अभिमन्यु इन ६ ओं के प्रहारों को सहता रहा और सब के १० | १० | ७० | ७० वाण मारकरसभी को घायल किया तब तो सब एक साथ उस पर टूट पड़े। वह इन सब महारथियों के साथ अकेला ही युद्ध कर रहा था कि इतने में ही कोशल देश के महाराज तक्षक आगये। उन्होंने धर्म विरुद्ध एक कर्णि नामक चोखा वाण अभिमन्यु के हृदय में मारा। यद्यपि अभिमन्यु के साथ वे नहीं लड़ रहे थे उनका पुत्र बृहद् वल लड़ रहा था। अभिमन्यु को इस पर वडा क्रोध आया। उसने एक वाण

मार कर कोशल राज का ध्वजा को काट दिया, दूसरे से उनके सारथी और घोडों को मार दिया, रथ को भी चकना चूर कर इस प्रकार कोशल राज को रथ विहीन करके वीरवर अभिमन्यु ने गर्जना की, रथ विहीन कोशलराज ढाल तलवार लेकर अभिमन्यु की ओर दौड़े उसी समय बृहद्बल भी पिता की सहायता दौड़े। अभिमन्यु ने एक चोखा बाण कोशल राजकुमार बृहद्बल की छाती में मारा उस बाण के लगते ही राजकुमार कटे वृक्ष की भाँति पृथवी पर गिर पड़ा और तुरत ही मर गया। पीछे अन्य महारथियों ने अधर्म पूर्वक अभिमन्यु को अस्त्र शस्त्र और रथ से विहीन करके अन्याय से मार डाला। विजय कोशल राजा महाराज तक्षक भी वहां समर में वीर गति को प्राप्त हुए। उस युद्ध म पाडवों की विजय हुई, धर्मराज युधिष्ठिर सम्राट हुए। उन्होंने जो राजा युद्ध में मर गये थे उनके छोटे छोटे बच्चों को राजा बना दिया। जो राजवंश नष्ट हो गये थे, उनके कुल में जो कोई भी बचा उसे ही राजा बनादिया। इस प्रकार धर्मराज युधिष्ठिर ने पुन: राज्य वंशों की स्थापना की। कोशल-राज तक्षक के पुत्र बृहद्बल के एक पुत्र थे, बृहद् रण में मारे गये और वे ही महाभारत के अनन्तर कोशल देश के राजा हुए।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जिन दिनों आप लोग नैमिषारण्य में निवास करते थे, उन दिनों महाराज बृहद् रण ही कोशल देश के सिंहासन पर विराज मान थे। आपके चले आने के पश्चात् इतने राजा और हुए। बृहद् रण के पुत्र उरुक्रिय, उरुक्रिय के सुत वत्सवृद्ध, उनके प्रतिव्योम के भानु, भानु के दिवाक, दिवाक के सहदेव, सहदेव के बृहदश्व, बृहदश्व के भानुमान्, भानुमान के प्रतीकाश्व और प्रतीकाश्व के पुत्र परम तेजस्वी महाराज

सुप्रतीक हुए।

सुप्रतीक के मरुदेव, मरुदेव, के सुनत्त्र, सुनत्त्र के पुष्कर. पुष्कर के अन्तरिक्ष. अन्तरिक्ष के सुतपा, सुतपा के अभिन्नजित् अभिन्नजित के बृहद्राज, बृहद्राज के वर्हि, वर्हि के कृतञ्जय, कृतञ्जय के रणञ्जय रणञ्जय के सञ्जय पुत्र हुए। सञ्जय के शाक्य शाक्य के शुद्धोद, उनके लाङ्गल, लाङ्गल के प्रसेनजित, प्रसेनजित् के क्षुद्रक क्षुद्रक के रणक और रणक के सुरथ तथा उनके सुमित्र पुत्र हुए। बस ये सुमित्र इस वंश के अंतिम राजा हुए। इसके अनन्तर कोशल कीगद्दी से इक्ष्वाकु वंश के राजाओं का अधिकार उठ गया। यह वंश पृथिवी से नष्ट प्रायः हो गया क्षत्रिय वंश वृद्धि होने से लोगों की वर्णाश्रम धर्म में राज्य परंपरा में आस्था न रह जायगी। स्त्रीयों के चरित्र हीन होने के शुद्ध रजवीर्य की परम्परा नष्ट हो जायगी।"

यह सुनकर शौनक जी ने पूछा—"सूतजी! पृथिवी पर तो अब सूर्य वंश चन्द्र वंश के बहुत से क्षत्रिय हैं। आप कहते हैं सुमित्र के पश्चात् सूर्य वंशीय राजाओं का वंश समाप्त हो जायगा।"

सूत जी बोले—"हाँ महाराज! कहने को तो अब भी लोग अपने को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र कहते ही हैं। और वंश परम्परा भी यही है। किन्तु अब यह कुलागत विशुद्ध वंश परम्परा नहीं रही। इस में किसी का दोष नहीं। यह तो कलि का प्रभाव है। जैसे जाड़ों में सरदी पड़ती है, वैसे ही कलि युग में अधर्म का प्रसार होता है। कलियुगी लोग अधर्म को ही उन्नति का द्योतक समझेंगे। अज्ञान के वश होकर पशुओंकासा आचरण करेंगे। अभी तो कलियुग में बहुत दिन शेष हैं, अभी से

सर्वत्र अधर्म फैलने लगा। अब वर्णाश्रम धर्म पृथिवी पर कहाँ रहा। ब्रह्मचारी कहीं दिखाई भी देते हैं, तो नाम मात्र के, वे केवल नाम के ब्रह्मचारी हैं जिन विद्यार्थियों को ब्रह्मचर्य से रहना चाहिये, वेदों का अध्यन करना चाहिये, वे विदेशी भाषायें पढ़ते हैं, जिनमें भौतिक सुखों को ही जीवन का चरम लक्ष्य माना जाता है। कलि युगी आधुनिक विद्यार्थी भिक्षा पर निर्वाह नहीं करते। प्रतिमास घर से धन मँगाते हैं। शुल्क देकर पढ़ते हैं। अध्यापकों के प्रति सम्मान नहीं करते उन्हें वेतनभोगी भृत्य समझ कर वैसा ही उनके साथ वर्ताव करते हैं। छात्रावासोंमें निवास करते हैं, वे विलासिता के आलय बने हुए हैं, उनमें खाद्य अखाद्य सब खाया जाता है. पेय अपेय सब पीया जाता है. कर्तव्य अकर्तव्य सभी प्रकार के दुष्कर्म किये जाते हैं। निरीक्षक नाम के मात्र के लिये रहते हैं, उनकी आज्ञाओं को छात्र मानते नहीं। विवाह के पूर्व ही वे दूषित होते हैं, व्यभिचारजन्य दोष उनमें आजाते हैं। पढ़कर वे वर्णाश्रम धर्मोचित वंशपरम्परागत कार्यो से घृणा करने लगते हैं। वे दासता को चाहते है। उनका स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है। बाल्यावस्था में ही वृद्ध से लगते हैं, यही दशा गृहस्थियों की है। गृहस्थ धर्म यज्ञ करने के लिये किया जाता है दार ग्रहण अग्नि होत्र की रक्षा के निमित्त होता था। अब ढूँढने पर भी लाखों करोड़ों में कोई गृहस्थ अग्नि होत्री नहीं मिलता जिसके यहाँ तीनों अग्नियाँ सुरक्षित और पूजित हों। वेदों का पढ़ना तो पृथक् रहा, लोगों ने वेदों की पोथियों के दर्शन तक नहीं किया। गृहस्थ धर्म केवल पेट भरने और बाल बच्चे पैदा करने में ही सीमित रहा है। धर्म कर्म सभी भूल गये हैं। वानप्रस्थ धर्म तो लुप्त ही होगया। वन ही नहीं रहे तो वानप्रस्थ कहाँ

-रहे। सन्यासी भी नाम मात्र के रह गये हैं। सन्यासधर्म पालन असंभव हो गया है। यही दशा वर्णों की है। ब्राह्मणों का चिन्ह यज्ञोपवीत रह गया है। कैसे भी तीन धागे गले में डाल लेना ब्राह्मणत्व का कर्म है। क्षत्रियों का काम कपट व्यापार करना ही शेष है। शूद्र तो कलियुग में कोई रहा ही नहीं। चारों वर्णों में सांकर्य हो गया है।

कुल की रक्षा का भार स्त्रियों पर है, स्त्रियों के शुद्ध रहने से कुल विशुद्ध बना रहता है। स्त्रियों में दूषित हो जाने से कुल दूषित हो जाता है। संतति वर्ण संकर होने लगती है। वर्ण संकर सृष्टि के जीवों की स्वाभाविक प्रवृत्ति परमार्थ में न होकर विषयों में होती है। वे विषय को सर्वश्रेष्ठ सुखकर धर्माधर्म का कुछ भी विचार न करके व्यवहार करते हैं। इसलिये कलियुग में वर्णधर्म आश्रमधर्म रहते ही नहीं। या व्यक्तिगत रूप में भले ही रहे, सामाजिक रूप में उनका प्रचार बन्द हो जाता है। धर्मरक्षा का भार राजा पर ही है, राजा न रहने से प्रजा स्वतन्त्र हो जाती है वह मन माना व्यवहार करने लगती है। पुरुष पाप में निरत हो जाते हैं, वे सब काम में कपट करते हैं। स्त्रियाँ सन्तानोत्पत्ति को भार समझने लगती हैं, उन में स्वतन्त्रता बढ़ जाती है, वे पुरुषों के साथ मिल कर रहना नहीं चाहती। विवाह बन्धन में बँधना वे व्यर्थ समझती हैं। मन मात्र आवरण करती है, सिर खोल कर स्वच्छन्दता के साथ जहाँ चाहे घूमती हैं, जहाँ चाहे रहती हैं जहाँ चाहे संतान उत्पन्न करती हैं, जहाँ चाहें सन्तानों को छोड आती हैं उनमें मातृत्व रहता नहीं, वे क्रूर कर्मा बन जाती हैं। विषयसुख को ही सर्वश्रेष्ठ सुख समझती हैं इस लिये वे सब कुछ करने को तत्पर हो जाती हैं। प्राचीन

सती धर्म की खिल्लियाँ उड़ाती हुई गर्व का अनुभव करती हैं। ऐसी स्त्रियों से विशुद्ध वंश परम्परा अक्षुण्ण बनी रहे ऐसी आशा करना व्यर्थ है। पुरुष भी ऐसे ही पापी हो जाते हैं। वे अपने सामने अनुचित कार्य कराते हैं। लोभ वश उन्हें बेच देते हैं, पाप कर्मों में फँसाते हैं। सन्तान पर प्रभाव तो रज वीर्य का ही होता है। शंकर वर्ण के लोग भौतिक उन्नति चाहे जितनी करलें, पर मार्थिक से वंचित ही रहते हैं। इसीलिये कलियुग में यज्ञ, अनुष्ठान अन्य धार्मिक कृत्य विधि पूर्वक हो नहीं सकते। क्योंकि इन कार्यों के लिए देश काल तथा पात्र इन तीनों की शुद्धता आवश्यक है. इसीलिये महाराज ! विशुद्ध क्षत्रिय वंश नष्ट हो जाता है। इसमें किसी का दोष नहीं, जो भी कुछ होता है, सब भगवद् इच्छा से होता है।"

शौनकजीने कहा—"सूत जी ! जब सब भगवान् की ही इच्छा से होता है, युग धर्म के प्रभाव से ही होता है, तो शास्त्र में बार बार इनका वर्ण न करके इनकी बुराई क्यों की गई है ?"

सूतजी बोले—"महाराज ! यह तो सच सत्य है, होता तो सब युग के ही प्रभाव से है। शास्त्रकारों की बुराई करने का तात्पर्य इतना ही है, कि जिसे तुम उन्नति समझ रहे हो, वह उन्नति न होकर अवनति है, जिसको तुम धर्म समझ कर प्रचार कर रहे हो, वह धर्म न होकर अधर्म है।"

शौनकजी ने कहा—"सूत जी ! जब कलियुग में देश, काल तथा पात्र कोई भी शुद्ध न रहेंगे, कोई भी साधन विधि विधान पूर्वक न हो सकेंगे, तब तो कलियुगी जीवों के उद्धार का कोई उपाय ही न रह जायगा।"

सूत जी बोले—'नहीं महाराज ! ऐसी बात नहीं है। कलियुग में तो जीवों के उद्धार का एक सर्वश्रेष्ठ उपाय है। उसमे देश, काल-पात्र, विधि, विधान किसी की भी अपेक्षा नहीं। उसका आश्रय लेनेसे दुराचारी भी संसार सागर को बात की बात मे तर सकते हैं।"

शौनकजी ने पूछा—'वह कौन सा उपाय है सूत जी ?"

सूत जी बोले—'महाराज ! वह है भगवन्नाम संकीर्तन। भगवान् के नामों का कीर्तन प्राणियों को समस्त पापों से दूर हटकर परम पद तक पहुँचा देता है। कलियुग मे केवल राम नाम का ही आधार है। राम नाम ऐसा सर्वश्रेष्ठ, सुलभ, सर्वोपयोगी साधन है कि उसकी किसी साधन से समता ही नहीं। जो राम नाम का निरंतर कीर्तन करता है उस पर कलि का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। कलियुग उसके पास भी नहीं फटकता।'

सूतजी कहते हैं—'मुनियो ! यह मैंने अत्यंत संक्षेप में विवस्वान् के पुत्र मनु से लेकर सुमित्र तक के राजाओं के वंश का अत्यंत ही संक्षेप में वर्णन किया। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ?"

शौनक जी बोले—'सूतजी ! आपने वैवस्वत मनु के इक्ष्वाकु नृग शर्याति, दिष्ट, धृष्ट करूष, नरिष्यन्त, पृषध्र कवि ये १० पुत्र बताये थे, इनमें से आपने पृषध्र, कवि करूष नरिष्यन्त, दिष्ट और महाराज इक्ष्वाकु के वंश का तो वर्णन किया। महाराज इक्ष्वाकु के वंश का वर्णन करते हुए आपने बताया था, कि उनके १०० पुत्र हुए थे उनमें विकुक्षि निमि और दण्डक ये तीन पुत्र तो बड़े थे, ९७ छोटे। उनमे से २५ पुत्र तो आर्यावर्त के पूर्वीय देशों के राजा हुए। २५ पश्चिम देशों के राजा हुए। ४७ दक्षिण देशों के राजा हुए और ये तीन आर्यावर्त मध्य देश के

राजा हुए। सबसे बड़े महाराज विकुक्षि जो अपने कर्म से शशा द के नाम से विख्यात हुए, उनके वंश का तो आपने वर्णन किय ही। अब उनके द्वितीय पुत्र निमि और तृतीय पुत्र दंडक वंशोंका वर्णन हमें और सुनाइये।"

यह सुनकर सूत जी बोले—"मुनियो! महाराज निमिक वंश बड़ा पावन है पहिले उसे सुनाकर तब दंडक के वंश को सुनाऊँगा। अब आप निमिवंश को श्रवण करें।

छप्पय

मरुत अष्टम पीढ़ि माँहि नृप भये वृहद्बल।
तिनकी द्वापर माँह भई कीरति अति उज्वल॥
भारत महँ अभिमन्यु संग लड़ि स्वर्ग सिधारे।
कुमर बृहद्रण बने बने राजा अति बारे॥
पीढ़ी उन्तिस महँ भये, अन्तिम नृपति सुमित्र वर
फिर कलिमहँ इक्ष्वाकु के, रहें विशुद्ध न वंश घर॥

—:ঃ:—

निमि-वंश वर्णन

(७१०)

निमिरिक्ष्वाकुतनयो वसिष्ठमवृतर्त्विजम् ।
आरभ्य सत्रं सोऽप्याह शक्रेणप्राग्वृतोऽस्मि भोः ॥
तं निर्वर्त्यागमिष्यामि तावन्मां प्रतिपालय ।
तूष्णीमासीद्गृहपतिः सोऽपीन्द्रस्याकरोन्मखम् ॥

(श्री भा० ९ स्क० १३ अ० १, २ श्लो०)

छप्पय

अब इक्ष्वाकु कुमार द्वितिय निमि-वंश सुनाऊँ ।
गुरु वशिष्ठ तैं कह्यो नृपति हौं यज्ञ कराऊँ ॥
ऋत्विज बनि गुरुदेव यथाविधि मख करवावें ।
बोले गुरु सुरराज बुलायो तहँ है आवें ॥
भये मौन सुनि निमि नृपति, इन्द्र यज्ञ हित गुरु गये ।
क्षण-भंगुर जीवन निरखि, चिन्तित नृप सोचत भये ॥

'जीवन से प्यारी जीविका होती है।" यह लोकोक्ति सत्य है। जीविका के लिये प्राणी जीवन को हथेली पर रखकर कार्य करते हैं। अगाध समुद्र में जाते हैं जहाँ कि हमें कुछ आय हो, वहाँ

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—'राजन्! महाराज इक्ष्वाकु के पुत्र निमि ने एक यज्ञ आरम्भ किया उसमें वशिष्ठ जी को ऋत्विज् वरण किया। वशिष्ठजी ने कहा—'भाई मुझे पहिले इन्द्र ने वरण कर लिया है वहाँ से निवृत्त होकर आऊँगा तब तक तुम मेरी प्रतीक्षा करो।" यह सुनकर गृहपति महाराज निमि चुप हो गये, वशिष्ठजी इन्द्र का यज्ञ कराने लगे।

(पग पर मृत्यु का भय है । जीविकोपार्जन के लिये सहस्रों हाथ नीचे खानों में जाकर काम करते हैं जहाँ साक्षात् मृत्यु मुख फाडे ही खडी रहती है । धनिकों को प्रसन्न करने के निमित्त मतवाले साडों से, सिंहो और हाथियों से मनुष्य लडता है। इसी-लिये कि ये धनी प्रसन्न होकर कुछ दे देंगे । धन के लिये पुरोहितों को जजमानों की किस प्रकार हाँ में हाँ मिलानी पडती है, उनके पीछे दौडना पडता है, जीविका को प्राण जीवन से श्रेष्ठ समझते हैं, जहाँ जीविका का प्रश्न आ जाता है वहाँ प्राणों लड मरते हैं पात हो जाते हैं । ब्राह्मण ब्राह्मण इसी लिये लडते हैं यह मेरा जजमान है यह तेरा नहीं । एक क्षत्रिय दूसरे क्षत्रिय की जीविका केलिये राज्य वृद्धि के लिये हत्या करता है । वैश्य के लिये तो प्र-सिद्ध ही है चाहे चमडा चला जाय दमडा न जाने पावे, इसी प्रकार घर में बाहर जातिमें कुटुम्ब में जहाँ भी लडाई होती है पद प्रतिष्ठा और जीविका को ही लेकर, इनमें जीविका ही प्रधान है ।

सूतजी कहते हैं —'मुनियो ! ब्रह्मा जी के पुत्र स्वायम्भुव मनु हुए । मनु के पुत्र इक्ष्वाकु हुए,उनके सौ पुत्रों में से विकुक्षि (शशा-द) निमि और दण्डक ये प्रधान थे । महाराज विकुक्षि के वंश का वर्णन तो मैं आपके सामने कर चुका अब आप निमि के वंश का वर्णन सुनिये ।

महाराज निमि बडे ही धार्मिक तथा प्रजा वत्सल थे। उनकी धर्म कर्म में अत्यधिक प्रवृत्ति थी । इसलिये सदा यज्ञ यागों में ही लगे रहते थे । मनु वंश के पुरोहित भगवान् वशिष्ठ ही थे। इन सब के यज्ञ याग धर्मानुष्ठान सब ये कराते थे । एक बार महाराज निमि की इच्छा एक बडा भारी यज्ञ करने की हुई।

इसी निमित्त वे अपने कुल पुरोहित भगवान् वशिष्ठ के समीप गये। वशिष्ठ जी ने राजा का कुशल पूछा और उनके आने का कारण जानना चाहा।"

हाथ जोड़ कर नम्रता-पूर्वक राजा ने कहा—"भगवन्! मेरी इच्छा है, कि मैं एक बड़ा भारी यज्ञ करूँ। मेरी यह इच्छा तभी पूर्ण हो सकती है, जब आप कृपा करें। आप इस यज्ञ को विधि-विधान पूर्वक मुझसे करादें।"

महर्षि वशिष्ठ जी ने कहा—"राजन्! मेरा काम ही है, यज्ञ यागादि धर्मानुष्ठान कराना, किन्तु इस समय एक बड़ा धर्म संकट है?"

राजा ने पूछा—"वह क्या भगवन्!"

वशिष्ठ जी बोले—"देवराज इन्द्र सुमेरु पर एक बड़ा भारी यज्ञ करना चाहते हैं। उसके लिये उन्होंने आपके आने के पूर्व ही मुझे यज्ञ के लिये वरण कर लिया है और मैंने स्वीकार भी कर लिया है, कि मैं तुम्हारा यज्ञ कराऊँगा।"

राजाने कहा—"भगवन्! वे तो देवेन्द्र हैं स्वर्गाधिप है। वे चाहें जिस ऋषि से यज्ञ करा सकते हैं। मेरे तो आश्रय आप ही एक मात्र हैं। पहिले मुझे यज्ञ करावें।"

वशिष्ठ जी ने कहा—"राजन्! आप धर्मात्मा होकर भी ऐसी अधर्म पूर्ण बात क्यों करते हैं। यज्ञ करना स्वीकार करके फिर उसमें न जाना यह तो बड़ा भारी पाप है, विश्वास घात है। पहिले मैं उनका यज्ञ कराना स्वीकार कर चुका हूँ। वहाँ मुझे जाना ही है। कोई बात नहीं उनका यज्ञ कराके जब मैं लौटूँगा। तब फिर आपका भी कराऊँगा। आप तब तक मेरे आने की प्रतीक्षा करें।"

यज्ञ कराना है अति शीघ्र आये। वहाँ आकर जो उन्होंने देखा, उसे देखकर उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। यज्ञ का बड़ा भारी समारोह हो रहा है। चारों ओर स्वाहा स्वाहा की ध्वनि गूँज रहा है। आचार्य के आसन पर एक दूसरे ऋषि विराजमान् हैं। यज्ञ में दीक्षित राजा श्रद्धा सहित उनकी आज्ञा का पालन कर रहे हैं। जिस सम्मान के आसन के स्वय अधिकारी थे उस पर वशिष्ठजी दूसरे ऋषि को बैठा देखकर जल भुन गये। वे अपने क्रोध को स वरण न कर सके। दैव का ऐसा ही विधान था। मुनि को बड़ा क्रोध आया।

इधर राजा ने जब अपने गुरु को आते हुए देखा, तो वे श्रद्धा पूर्वक उठे, आगे बढ़कर स्त्री सहित उनकी चरणवन्दना की, स्वागत सत्कार किया और प्रसन्नता प्रकट की।

मुनि तो क्रोध में ही भर रहे थे, उन्होंने राजा के स्वागत सत्कार का अभिनन्दन नहीं किया। क्रुद्ध होकर बोले—"निमि! यह क्या होरहा है?"

नम्रता पूर्वक राजा ने कहा—"ब्रह्मन्! यज्ञ हो रहा है, जिस के लिये मैंने आप से प्रार्थना की थी।"

व्य ग के स्वर मे मुनि ने कहा—"फिर मैं ने तुम्हें क्या आज्ञा दी थी?"

सरलता के साथ राजा ने कहा—"आपने ब्रह्मन्! यही कहा था मुझे इन्द्र के यज्ञ में जाना है?"

क्रुद्ध होकर मुनि ने कहा—"और मैंने कुछ नहीं कहा था?"

राजा बोले—"हॉ महाराज! आपने यह भी कहा था कि जब तक मैं इन्द्र का यज्ञ कराकर न लौटूँ तब तक तुम मेरी प्रतीक्षा करना।"

वसिष्ठ जी ने दृढता के स्वर मे डाँट कर कहा—"तब तुमने मेरी प्रतीक्षा क्यों नहीं की ? क्या सोचकर मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया ?"

राजाने गिड़गिड़ाते हुए कहा— भगवन् ! मैंने सोचा— धर्म कार्य में क्या देरी करना। प्राणियों का जीवन जल बुद्-बुद् के समान है। पता नहीं कल क्या हो ! इसीलिये धर्म कार्य जितना भी शीघ्र हो सके, उतनी ही शीघ्रता से उसे सम्पन्न कर लेना चाहिये। मेरा भाव आपकी आज्ञा के उल्लंघन करने में नहीं था। मैं तो इस जीवन को कमल दल पर पड़े जल कण के सदृश अत्यंत ही चञ्चल और अस्थिर मानता हूँ इसलिये मैंने अन्य आचार्यों से यज्ञीय दीक्षा लेली।"

राजाके ऐसे गूढ ज्ञान युक्त वचनों को सुनकर क्रुद्ध मुनि के कोपानल में मानो घी की आहुति पड़ गई हो। वे अत्यंत ही क्रुद्ध होकर बोले—"अरे ! क्षत्रियाधम ! तू गुरुओं का अपमान करके भी अपने को पंडित मानता है। तू समझता है, ये दान दक्षिणा लेने वाले ब्राह्मण हमारे आश्रित हैं। हम इन्हें चाहें बुलावें। या न बुलावें ये हमारा क्या कर सकते हैं। अच्छी बात है, तू मेरे बल को देख। आचार्य के अपमान करने का फल चख, तू मूर्ख होकर भी अपने को विद्वान् मानता है। इस शरीर को ही सब कुछ समझ कर राजा होने के अभिमान से तू गुरुओं की अवहेलना करता है। जा तेरा यह शरीर गिर जाय, तू अभी मृतक हो जाय।"

यह सुनकर राजा को भी क्रोध आगया। यद्यपि राजा आत्म ज्ञानी थे, किन्तु भावी के प्रबल होने से वे अपने कोप को रोक नहीं सके। वे भी सर्व समर्थ थे। उनको भी शाप अनुग्रह की

सामर्थ्य थी। अतः उन्होंने भी हाथ में जल लेकर कहा—'मुनिवर! दक्षिणा के लोभ से आप धर्म अधर्म सब को भूल गये आपने विवेक हीन होकर मुझे देह पतन का शाप दे दिया। अत मैं भी आप को शाप देता हूँ आपका भी देह गिर जाय।"

सूत जी कहते हैं—"मुनियो! क्रोध और लोभ का यही दुष्परिणाम होता है। तनिक सी बात पर इतनी शापा शापी हो गई। दोनों के ही वचन अमोघ थे। दोनों ही सामर्थ्यवान् थे। दोनों के ही देह यज्ञ मडप में प्राण हीन होकर गिर गये। इस घटना को देखकर सभा आश्चर्यचकित हो गये। रग में भग हो गया। फिर भी यज्ञ का कार्य बद नहीं हुआ। वह पूर्ववत् चलता रहा।"

छप्पय

है यह देह अनित्य यज्ञ अविलम्ब कराऊँ
यदि गुरु आवें नहीं अन्य आचार्य बुलाऊँ।
करि दृढ निश्चय तुरत यज्ञ आरम्भ करायो
मुनि वसिष्ठ पुनि आइ नृपति प्रति क्रोध दिखायो।
देह पात को शाप मुनि, दया भूप क्रोधित भये
नृपहु शाप मुनि कूँ दया, तनु दोउनि के गिरि ग

- :&: —

आदि विदेह महाराज जनक

(७११)

जन्मना जनकः सोऽभूद् वैदेहस्तु विदेहजः ।
मिथिलो मथनाज्जातो मिथिला येन निर्मिता ॥*

(श्री भा० ९ स्क० १३ अ० १३ श्लो०)

छप्पय

तनु तजि मित्रावरुण वीर्यते प्रकटे मुनि पुनि ।
निमिहू नैननि माँहि बसहिँ नित पलक निमिष बनि ॥
निमिको मृतक शरीर मथ्यो वैदेह भये सुत ।
आदि जनक मिथिलेश मुक्त जीवन समाधि युत ।
तबते निमि वंशी नृपति, जनक विदेह कहाहिँ सब ।
क्षण भगुर समुझैं सबहिँ, राज पाट वाहन विभव ॥

देह के बन्धन से ही जीव बँधा हुआ है । अनित्य और क्षण भगुर इस शरीर में जीव ऐसा तन्मय हो जाता है कि इस अनात्म्य पदार्थ को ही आत्मा माने बैठा है, असत्य को ही सत्य समझता है । इसीके मोह में फँसकर इसे ही पुष्ट करने के निमित्त भाँति भाँति के पाप करता है ,

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! मृतक निमि के देह के मथन करने पर जो पुत्र हुआ, वह जन्म लेने से जनक, विदेह से उत्पन्न होने से वैदेह और मथन करने से उत्पन्न होने के कारण मिथिल, नाम से प्रसिद्ध हुआ । इसीने मिथिला नाम की पुरी बसाई ।"

यदि इस देह का अभ्यास छूट जाय, तो देह रहते हुए भी मनुष्य विदेह बन जाय। ज्ञान के ही द्वारा, इसमें बढी हुई आसक्ति दूर हो जाती है। यदि विषयों से आसक्ति नहीं हटी, तो चाहें घोर बन में सब कुछ त्याग कर चले जाओ, मन उन्हीं विषयों का चिन्तन करता रहेगा और अवसर पाने पर उन्हें ही संग्रह करने लगे गा। इसके विपरीत जो प्राणी विषयोंसे विरक्त हो गया है, मन में उनके प्रति आदर भाव नहीं है, तो विषयों के बीच में रहते हुए भी वह विरक्त है। सब कुछ करते हुए भी वह कुछ नहीं करता। सब कर्म करते हुए भी अक्रिय है।

श्रीसूतजी कहते हैं—"मुनियो! परस्पर में शाप देकर निमि और वसिष्ठ दोनों ने ही अपने अपने शरीर को त्याग दिया। वसिष्ठजी तो ब्रह्माजी के मानस पुत्र ही ठहरे। उन्हें स्थूल शरीर की उतनी अपेक्षा नहीं, वे अपने सूक्ष्म शरीर से ब्रह्माजी के समीप ब्रह्मलोक में पहुँचे। उन्होंने ब्रह्माजी को प्रणाम करके कहा—'ब्रह्मन्! राजा निमिने मुझे शाप देकर शरीर हीन कर दिया है, अब आप मुझे आज्ञा दें, जिससे मैं पुनः स्थूल शरीर को प्राप्त करके सृष्टि के कार्य मे योग दे सकूँ।"

वसिष्ठजी के ऐसे वचन सुनकर ब्रह्माजी ने ध्यान लगाकर सभी बातें जानलीं, सब वृत्तान्त को जानकर वे बोले—"वत्स, अभी तुम्हारा पृथिवी पर बहुत कार्य है। एक मन्वन्तर तक तो तुम्हें सप्तर्षियों में ही रहना है। अतः तुम पुनः स्थूल देह धारण करो।"

यह सुनकर वसिष्ठजीने कहा—"प्रभो! मैं किसी मानवी स्त्री के गर्भ से तो उत्पन्न होना नहीं चाहता। ऐसा उपाय बतावें जिसमे बिना गर्भमें प्रवेश किये मुझे स्थूल शरीर प्राप्त हो सके।"

इसपर ब्रह्माजी बोले—"देखो, मैं तुम्हें एक उपाय बताता हूँ, एक बार मित्रावरुण ऋषि दोनों ही स्वर्ग से आ रहे थे। मार्ग में उन्हें सोलह शृंगार किये हुए स्वर्ग की सर्वश्रेष्ठ अप्सरा उर्वशी दिखाई दी। उस अति सुंदरी अप्सराको देखकर दोनों ऋषियों का चित्त चंचल हो गया और साथ ही रेतस् स्खलित हो गया। उन्होंने उस अमोघ वीर्य को एक घडे मे रख दिया है उस मे एक जीव तो प्रवेश कर गया है। तुम भी जाकर उसी कुंभ में प्रवेश कर जाओ। तुम से पहले जो जीव उसमें गया है वह संसार में महान् ऋषि होगा। जो अगस्त के नाम से प्रसिद्ध होगा। कुंभ से उत्पन्न होने के कारण लोग उन्हे कुंभज भी कहेंगे। दूसरे अंश से तुम प्रकट होगे, तुम्हारा नाम पूर्ववत् वसिष्ठ ही होगा। तुम्हें किसी स्त्री के उदर में प्रवेश न करना पडेगा। तुम घट से उत्पन्न होने के कारण अयोनिज होगे।"

ब्रह्माजी की ऐसी आज्ञा सुनकर वसिष्ठ जी ने उनके चरणों में प्रणाम किया और वे जाकर घट में स्थित मित्रावरुण के वीर्य में प्रवेश कर गये। कुछ काल में उसमें से वे पुनः पूर्ववत् शरीर धारण करके इक्ष्वाकुवंश के राजाओं का पौरोहित्य कर्म करने कराने लगे।

इधर निमि के यज्ञ में आये हुए ऋषियों ने जब देखा, कि वसिष्ठ जी के शाप से निमि का शरीर गिर गया है, वे मृतक हो गये हैं तो उन्होंने उस शरीर को जलाया नहीं। अनेक प्रकार के सुगन्धित तेल लगाकर यज्ञ के अन्त तक उस देह की रक्षा करते रहे। यज्ञ समाप्त होने पर यज्ञ भाग लेनेके लिये समस्त देवगण आये। उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक अपना अपना भाग ग्रहण किया और ऋत्विजों से वर मॉगने को कहा।

ऋत्विजोंने विनीत भाव से कहा —" देवताओ ! यदि आप हम पर प्रसन्न है, तो हम आपसे यही वर माँगते हैं, कि हमारे यजमान महाराज निमि पुनः जीवित हो जायँ।"

ऋत्विजोंकी बात सुनकर समस्त देवताओंने एक स्वरमें कहा—'तथाऽस्तु —अच्छी बात है ऐसा ही होगा राजा जीवित हो जायँगे।"

देवताओंकी बात सुनकर आत्मज्ञानी महाराज निमि बोले—"मैं अब पुनः देह बन्धनमें बँधना नहीं चाहता। भगवत् परायण मुनि-जन जन्म मरणसे सदा दूर ही रहना चाहते हैं। वे देहबन्धनसे विमुक्त होकर सदा भगवत् चरणारविन्दोंमें ही अनुरक्त रहना चाहते हैं। मैंने जो शरीर छोड़ दिया है, अब फिर उसमें जीवित रहना नहीं चाहता। यह देह तो दुख, शोक तथा भय को देनेवाला है। पग पग पर इसमें मृत्यु का भय लगा रहता है। इस अनित्य देहमें मेरा ममत्व न हो ऐसा ही आप प्रयत्न करें।"

राजाकी ऐसी बात सुनकर देवताओंने कहा —'अच्छी बात है, निमि बिना देह धारण किये ही ससार में अजर अमर रहें। वे सूक्ष्म देहसे ही रह कर समस्त प्राणियोंके पलकोंमें निवास करें। आँखोंके उन्मेषण निमेषणमें ये प्रकट हुआ करें।"

सूतजी कहते हैं —" मुनियो ! तभीसे महाराज निमि सब प्राणियोंके पलकोंमें रहने लगे। इसीलिये सब आदमी पलक मारते हैं। पलक मारनेको निमेष कहते हैं।"

इसपर शौनकजीने पूछा—"तो क्या सूतजी ! पहले प्राणी पलक नहीं मारते थे ?"

सूतजी यह सुनकर बोले —"नहीं महाराज, पलक तो सदा हा लोग मारते हैं। पहिले निमेष का अधिष्ठातृ देव कोई और रहा होगा। इस कल्पमें तब तक देवताओं का भाँति सभी निर्निमेष रहते होंगे। जैसे मछली जलमें निर्निमेष रहती है। जबसे निमि अव्यक्त रूपसे सबक पलकोंमें रहने लगे, तबसे इस कल्प म के लोग भी पलक मारने लगे।"

शौनकजीने कहा — 'सूतजी ! आप सत्य कहते हैं सृष्टिमें तो सब कार्य ऐसे ही यथापूर्व होते रहते हैं। अच्छा तो फिर क्या हुआ ? महाराज निमिका वंश फिर आगे कैसे चला ?"

सूतजी बोले— हाँ, महाराज सुनिये वंश में आगे जसे निमि वंश चला उस वृत्तान्त को सुनाता हूँ आप सावधान होकर श्रवण करें। निमि के मर जाने पर निमि का सिंहासन रिक्त हो गया। उनके राज्य में अराजकता फैल गई। धर्म कार्य बन्द हो गये। तब तो लोक का कल्याण करने वाले ऋषि मुनि चिन्तित हुए। वे बड़े बड़े ज्ञानी ब्रह्मर्षि परमर्षि मिलकर यज्ञ मंडप म आये। वहाँ उन्होंने निमि के निर्जीव शरीर को देखा सर्व समर्थ मुनियों ने उस शरीर को मथना आरंभ किया। योग युक्त बुद्धि से सर्वज्ञ मुनियों क मथन से उनके संकल्प से उस शरीर म से एक बड़ा तपस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। मथने से वह उत्पन्न हुआ इसलिये सब उसे मिथिल कहने लगे। विदेह से उत्पन्न हुआ इस लिये उसे वैदेह भी कहने लगे। मृतक शरीर म जन्म लेने से उसका जनक संज्ञा हुई। उस पुत्र को देखकर सभी ऋषि मुनि तथा प्रजा के लोग परम प्रसन्न हुए। उन राजा मिथिल ने एक नगरी बसाई जो मिथिलाके नाम स प्रसिद्ध हुई। ये ही जनक वंशके सर्व प्रथम राजा हुए। उनके वंशज सभी मैथिल जनक

और विदेह कहलाये। इनके सभी वंशज ब्रह्मज्ञानी और जीवन्मुक्त हुए। इनके पुत्र जो हुए वे उदावसु जनक के नाम से संसार में विख्यात हुए।

उदावसु जनक के पुत्र नन्दिवर्धन हुए। नन्दिवर्धन के पुत्र सुकेतु और सुकेतु के देवरात हुए। देवरात से महाराज बृहद्रथ हुए इन्होंने ब्रह्मर्षि, याज्ञवल्क्यजी से आत्मज्ञान सम्बन्धी बड़े ही गूढ़ प्रश्न किये थे, भीष्मजी ने उनका विस्तारसे वर्णन धर्मराज युधिष्ठिरके पूछने पर महाभारतके शांति पर्वमें किया है। इनके बृहद्रथके पुत्र महावीर्य हुए। महावीर्यसे सुधृति हुए। महाराज सुधृति के पुत्र धृष्टकेतु हुए उनके हयश्व और हर्यश्वसे मरु का जन्म हुआ। मरुसे प्रतीपक प्रतीपकके कृति रथ, कृतिरथके देवमीढ़ उनके विश्रुत और विश्रुतके पुत्र परम ज्ञानी महाधृति हुए। महाधृतिके कृतिरात और कृतिरातके महारोमा हुए। महारोमाके पुत्र ह्रस्वरोमा और ह्रस्वरोमा के पुत्र महाभाग्यशाली, परमपुण्यवान् विश्वविख्यात इंद्रादिक देवों से भी वंदित पुण्यश्लोक महाराज सीरध्वज हुए। इन्हींको भगवती सीताके पिता होनेका विश्व वन्दित पद प्राप्त हुआ।"

यह सुनकर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! भगवती सीता का जन्म कैसे हुआ, हमने सुना है, जगज्जननी तो अयोनिजा हैं, उनका जन्म तो किसी मानवीय महिलाके उदर से नहीं हुआ। आप कहते हैं वे जनक की पुत्री हैं।"

इस पर सूतजी ने कहा—"महाराज! सीताजी तो वास्तवमें अयोनिजा हैं, उनकी उत्पत्ति रजवीर्यसे नहीं हुई। फिर भी जनकजी ने उनका पालन किया; अतः वे पालक पिता थे। वास्तवमें तो जानकीजी जगज्जननी हैं। संपूर्ण ब्रह्माण्ड ही उनकी

कृपा की कोर से उत्पन्न होते हैं। फिर भी लीला के निमित्त उन्होंने शरीर धारण किया था। अतः उपचार से जनक जी उनके पिता कहलाये। पूर्व जन्मों की तपस्या के प्रभाव से ही वे जगज्जननी के जनक के नाम से प्रसिद्ध हुए। जगन्माता उन्हींके सम्बन्ध से जानकी, जनकनन्दिनी, जनकात्मजा, वैदेही, मैथिली, मैथिलेशकुमारी आदि नामों से प्रसिद्ध हुई। जानकी जी कैसे पैदा हुईं अब आप इस वृत्तान्त को भी सुनिये।"

छप्पय

उन्निस पीढ़ी माँहिँ ह्रस्वरोमा जनमे सुत।
सीरध्वज तिनि पुत्र जगत महँ परम कीर्ति युत॥
भये यशस्वी पुत्र कुशध्वज तिनके प्यारे।
पुत्री सीता भई उभय कुल जिनने तारे॥

जनकदुलारी मैथिली, जनकसुता सीता सती।
वैदेही जनकात्मजा, जिनहिँ जपहिँ जोगी जती॥

सीता पिता महाराज सीरध्वज

(७१२)

ततः सीरध्वजो जज्ञे यज्ञार्थं कर्षतो महीम् ।
सीता सीराग्रतो जाता तस्मात्सीरध्वजः स्मृतः ॥ *

(श्री भा० ९ स्क० १३ अ० १८ श्लो०) .

छप्पय

सीरध्वज मख करन भूमि शोधन हित आये ।
ऋषि मुनि ज्ञानी विप्र शोधिवे तहाँ बुलाये ॥
शोधी सब ने भूमि जनक हल तहाँ चलायो ।
तबहिँ अवनि ते प्रगटि सीय निज रूप दिखायो ॥
सीर माँहि सीता भईं, लखि कृतार्थ नृप ह्वै गये ।
पाली पुत्री मानिकें, सीरध्वज तातें भये ।

सामान्य नियम ऐसा है,कि पिता के नाम से पुत्री का परिचय दिया जाता है । "वह लड़की कौन है ?"तो समान्यतया घर में तो उसके बाप का नाम बताते हैं और ननिहाल में उसकी माता का नाम बताते हैं , अमुक की लड़की है । या अमुक की लड़की की लड़की है । किन्तु कोई कोई कन्या ऐसी होती हैं जिनके सम्ब-

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! महाराज ह्रस्वरोमा के सीरध्वज उत्पन्न हुए । वे महाराज सीरध्वज एक बार यज्ञ के लिये हल से पृथिवी जोत रहे थे,उसी समय उनके हल की फार (सीर) के अग्रभाग से सीता जी भूमि से उत्पन्न हो गयीं । इसीलिये उनका नाम सीरध्वज प्रसिद्ध हुआ ।"

न्थमें पिता माता का परिचय कराया जाता है। वैसे हम सुनयना रानी कहें तो कोई न समझेगा। पूछेंगे-"सुनयना कौन थी जी ?" तो उसी समय कह दिया जाय, सीता जी की माता थीं, तो तुरन्त सब समझ जायँगे। सर्व साधारण में सीरध्वज महाराज प्रसिद्ध नहीं हैं। जानकी जी के पिता जनक थे। सीता जी के कारण ही राजा जनक का नाम सीरध्वज प्रसिद्ध हुआ। वैदेही सीता का नाम क्या है ? क्योंकि उनके पिता विदेह कहलाते थे। मैथिली सीता जी का नाम इसलिये था कि वे मिथिलाधिप की पुत्री थीं। साराश इतना ही है कि महाराज सीरध्वज राजा थे, ज्ञानी थे, किन्तु उनकी प्रसिद्धि जगज्जननी जानकी के जनक होने से ही हुई।

सूतजी कहते हैं —"मुनियो ! महाराज सीरध्वज जनक ने एक बार यज्ञ करने का विचार किया। उन्होंने वेदज्ञ ब्राह्मणों को बुलाकर यज्ञ के योग्य भूमि का शोधन कराया। सर्वज्ञ ऋषियों ने सब देखकर ज्ञान दृष्टि से विचार कर एक भूमि का यज्ञ के उपयुक्त ठहराया। महाराज जनक ने भी ब्राह्मणों की आज्ञा शिरोधार्य करके उस स्थान में यज्ञ करने का निश्चय किया। विधिवत् पूजन करके महाराज स्वयं सुवर्ण के हल से उस भूमि को जोतने लगे। जोतते जोतते उनके हल की फार एक स्थान पर अटक गई। हल की फार से जो भूमि खुद जाती है, उसे कूँड या सीर कहते हैं। उसमें से घड़ा निकला, जिसमें एक परम सुंदरी कन्या थी। राजा उस कन्या को देखकर परम प्रमुदित हुए। ऐसे रूप लावण्य युक्त परम सुंदरी कन्या उन्होंने कभी नहीं देखी थी। उन्हें ऐसा लगा मानों स्वयं सिद्धि ही यज्ञ से पूर्व प्रकट हो गई। वे भूमि के पति थे अतः पृथिवी ने अपने पति को अपने उदर से कन्या

रत्न को अर्पित किया। महाराज ने अत्यंत उल्लास से उस कन्या को गोद में लेकर अपनी महारानी सुनयना को दिया। सुनयना की गोद भर गई। वे ऐसी परम सुंदरी कन्या को पाकर अत्यंत ही आनंदित हुई।"

यह सुनकर शौनक जी ने पूछा—"सूतजी ! पृथिवी के भीतर ऐसी सुंदर कन्या कहाँ से आगई ?"

इस पर सूतजी बोले—"महाराज ! इस सम्बन्ध में कल्प भेद से बहुत सी कथायें हैं। एक कथा तो यह है कि जब पृथिवी पर रावण राजा हुआ तो उसने दिग्विजय करके सभी को अपने आधीन कर लिया और सभी से कर लेने लगा। जब मनुष्य के विनाश का समय आता है तो उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है जिसका नाश होने वाला होता है, वह वेद, शास्त्र, देवता, ब्राह्मण, साधु, गौ तथा धर्म से द्वेष करने लगता है।"

रावण ने देखा—ये साधु वनों में बड़ा आनंद करते हैं। इन के वनों को कोई अपने राज्य में नहीं मानता। ये यथेष्ट फल मूल खाते हैं। कितने पेड़ इनके आश्रमों में होते हैं। ये किसी राजा के शासन को भी नहीं मानते, यदि इन पर कर लगा दिया जाय तो ये आधीन हो जायँ और हमारी सब आज्ञाओं का पालन करने लगे।" यह सोच कर उसने अपने सेवकों को मुनियों के पास कर लेने को भेजा।

मुनियों ने मिलकर कहा—"हम लोग अरण्यों में रहते हैं। फल मूलों पर निर्वाह करते हैं, हमारे पास कर देने को क्या रखा है ?"

सेवकों ने पुनः सब जाकर ऋषियों से आग्रह किया। यह सुनकर ऋषियों का क्रोध आगया। उन्होंने एक सभा की और उस में सब सम्मति से निश्चय किया, कि अपने अपने तपः पूत रक्त को निकाल कर करके रूप में दो। इसीमें से आदि शक्ति जगज्जननी उत्पन्न होकर इस दुष्ट का मारेंगी और हमारे दुःख को दूर करेंगी, ऐसा निश्चित करके सब ऋषियों ने कुछ कुछ रक्त दिया। उस से एक घट भर गया, उस को रावण के सेवकों को देते हुए ऋषियों ने कहा—"हमारे पास यही कर है। इसी से एक शक्ति उत्पन्न होगी, जो तेरा नाश करेगी।"

सेवक घड़े को लेकर चले गये और यह वृत्तान्त लेकर जाकर रावण से कहा—"रावण यह सुनकर घबरागया। पापी का हृदय ही कितना होता है। उसने सेवकों से कहा—"इसे बहुत दूर ले जाकर कहीं पृथिवी के नीचे गाड़ आओ।"

यह सुनकर सेवक उस घट को ले गये और धर्मात्मा ज्ञानी महाराज जनक के राज्य में भूमि में गाड़ आये। उसी से एक शक्ति बन गई, जो अंत में राजा को हल चलाते हुए मिलीं। जिन्होंने रावण का वध किया।"'

यह सुनकर शौनक जी बोले—"सूतजी! रावण का वध तो श्री रामचन्द्र जी ने किया था। सीताजी ने रावण का वध कहाँ किया? हाँ वे उसके वध में निमित्त अवश्य हुईं।"

इसपर सूत जी बोले—"अजी महाराज! इस सृष्टि में अनेक घटनायें घटती हैं।

भगवान् नाम रूप रचकर नाना भाँति की क्रीडायें करते हैं। उनका आदि नहीं अंत नहीं। उनमें सभव नहीं भेद नहीं, विरोध नहीं, भगवान् के लिये सब सभव

रावण के वध में वैदेही निमित्त कारण हुई,वह तो साधारण रावण था, महा रावण का वध तो जगज्जननी जानकी जीने ही किया, रामजी की क्या सामर्थ्य थी जो उस महा रावण का वध कर सकते,यह तो महा शक्ति का ही कार्य है ।"

इस पर आश्चर्य प्रकट करते हुए शौनक जी ने पूछा—"सूतजी ! वह महा रावण कौन था, सीताजी ने उसका बध कैसे किया कृपा करके इस वृत्तान्त को हमें सुनाइये। इसे सुनकर तो हमें बड़ा आश्चर्य हो रहा है ।

दृढ़ता के स्वर में सूतजी ने कहा—"अजी,महाराज ! भगवान् की माया में क्या आश्चर्य। सम्पूर्ण संसार ही एक महा आश्चर्य है। महा रावण की कथा तो बहुत बड़ी है । उसे यहाँ मैं पूरी कहने लगूँ, तो जनक वंश का वर्णन रह ही जायगा, अतः मैं इसे संक्षेप मे सुनाता हूँ। आप इसे सावधान होकर श्रवण करें।"

रावण को मार कर जब भगवान् राज्य सिंहासन पर बैठे और सभी देवता, ऋषि, मुनि प्रशंसा करने लगे, तब हँसते हुए जानकी जी ने कहा—"दश मुख रावण को मार देना, यह कौन सी बड़ी बात है, वह तो एक साधारण जीव था। यदि भगवान् महा रावण को मार दें, जिसके सहस्र मुख हैं, तो प्रशंसा की बात भी है।"

यह सुनकर श्री रामचन्द्र जी को बड़ी लज्जा लगी । उन्होंने पूछा—"महारावण कौन है और वह कहाँ रहता है ?"

जानकी जी ने कहा—"वह महारावण लंका छोड़ कर प्रलंका मे रहता है। उसके सहस्र मुख हैं; उसे मारने से ही भगवान् की प्रशंसा हो सकती है।"

इतना सुनते ही भगवान् ने तुरंत महा लंका या प्रलंका में सैन्य सजा कर जाने की आज्ञा देदी।"

आज्ञा पाते ही सब सैनिक लड़ने के लिये चले । भगवान् ने महा लंका में जाकर महा रावण को संदेश भेजा, हम तुमसे युद्ध करेंगे। यह सुनते ही वह हँस पड़ा और कहा—"राम की क्या सामर्थ्य है, जो मुझ से लड़ सकें।"मुनियो ! यह बहुत बड़ी कथा है, मैं इसका विस्तार न करूँगा। संक्षेप में सुनाता हूँ। महा रावण से युद्ध करके अंगद, विभीषण, सुग्रीव, हनुमान्, भरत, शत्रुघ्न लक्ष्मण सबके सब परास्त हो गये । श्रीरामचन्द्र जी भी लड़ने गये। वे भी हार गये, तब तो उन्हें बड़ी चिन्ता हुई। सोचने लगे—"अब मैं क्या करूँ मेरी तो सब कीर्ति धूलि में मिल गई।',

श्रीराम को अत्यत चिन्तित देखकर गुरु वसिष्ठ बोले—'राघव ! आप चिन्ता क्यों करते हैं। महारावण को आप कभी भी नहीं मार सकते। आप क्या कोई भी संसार मे उसे नहीं मार सकता।"

श्रीराम चन्द्र जी ने चिन्तित होकर पूछा—"तब प्रभो ! यह कैसे मरे ?"

वसिष्ठजी ने कहा—"ये जो तुम्हारी बगल में जानकी बैठी हुई हैं,ये साक्षात् जगदंबा हैं ये चाहें तो रावण को मार सकती हैं। आप इनकी प्रार्थना करें ,इनके प्रसन्न होने से ही सब कुछ संभव हो सकता है"

यह सुनकर श्रीरामचन्द्र जी संकोच में पड़ गये। किन्तु करते ही क्या, स्वार्थ के लिये सब कुछ करना पड़ता है। वहू के सामने हाथ जोड़कर स्तुति करना, यह तो साधारण काम है, जिसने ऐसा नहीं किया वह यथार्थ में पति ही नहीं।

श्रीरामचन्द्रजी ने आदि शक्ति जगदम्बा की स्तुति की। जगदम्बा ने अपनी शक्ति से और भी बहुत सी शक्तियों को उत्पन्न किया, उन सब ने मिल कर रावण के सहस्रों सिर काट डाले, महारावण मर गया। श्रीरामचन्द्रजी को अब श्री सीता के बल पराक्रम का ज्ञान हुआ। इस प्रकार महाशक्ति जगदम्बिका जानकी ने श्री राम से भी न मारे जाने वाले महा रावण का वध किया। यह किसी कल्प की कथा है। इसी प्रकार सीता जी के जन्म के सम्बन्ध में एक दूसरी भी कथा है। वह इस प्रकार है।

एक समय की बात है रावण तीनों लोकों को विजय करता हुआ हिमालय के पुण्य प्रान्त में पहुँचा। वहाँ उसने अनुपम रूप लावण्य युक्त एक ललना ललाम को देखा। वह अविवाहिता कन्या थी। यौवनावस्था ने बिना सूचना दिये ही उसके शरीर में प्रवेश किया था। उसका अनवद्य सौन्दर्य था अंग प्रत्यग से लावण्य छन छन कर उस पर्वत प्रान्त को लावण्य युक्त बना रहा था। वह अपने प्रकाश से ही प्रकाशित हो रही था। मृग चर्म धारण किये, तपस्विनीयों का सा वेष बनाये वह मूर्तिमती तपस्या प्रतीत होती थी। एकान्त अरण्य में ऐसी अनुपम रूप लावण्य युक्त ललना को देखकर रावण काम के बाणों से विद्ध हो गया। उसने मधुर वाणी में कहा—"देवि! तुम कौन हो? किसकी पुत्री हो? इस घोर अरण्य में एकाकी क्यों वास कर रही हो। तुम्हारा सौन्दर्य, ऐसी अवस्था और इसके विपरीत ऐसी कठिन तपस्या यह अत्यन्त विपरीत बातें क्यों हो रही हैं। तुम मुझे अपना परिचय दो।"

उस कन्या ने सरलता के साथ कहा—"महानुभाव ! आप मेरा आतिथ्य ग्रहण करें। यह पैर धोने को जल लें। ये फल खाकर जल पीवें अपने श्रम को दूर करें, तब मैं अपना परिचय आप को दूँगी।"

उसकी वीणा विनिन्दित अत्यत मधुर वाणी सुन कर रावण ने कहा—'देवि ! तुम्हारे मधुर वचनों से ही मेरा सत्कार हो गया तुम्हारा दर्शन करते ही मेरा सम्पूर्ण श्रम नष्ट हो गया तुम मुझे अपना पूर्ण परिचय दो।"

इसपर वह कन्या बोली—"अच्छी बात है सुनिये मैं आप को अपना परिचय देती हूँ। समस्त देवताओं के गुरु भगवान् वृहस्पति हैं देवताओं के गुरु होने से वे गुरु या देव-गुरु भी कहलाते हैं। उनके एक पुत्र हुए जिनका नाम कुशध्वज था। वे कुशध्वज ही मेरे पिता थे। व ह्रीय कन्यामें उन्हा से मेरी उत्पत्ति हुई। पिता ने मेरा नाम वेदवती रखा,वे मुझे अत्यत ही प्यार करते थे जब मैं विवाह योग्य हुई तो बहुत से देवता यक्ष गन्धर्व मुनि पुत्र तथा राजपुत्रो ने आकर मेरे पिता से मुझे माँगा। बहुतों ने मेरे साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट की, किन्तु मेरे पिता ने किसी को भी मुझे नहीं दिया।"

यह सुनकर रावण ने पूछा—"देवि ! जब इतने बडे बडे लोंगों ने आकर तुम्हारे पिता से याचना की, तो तुम्हारे पिता ने उन्हें क्यों नहीं दिया। सब नी पुत्री का विवाह करने के लिये तो पिता अत्यत ही चिन्तित और उत्सुक बने रहते हैं।'

वेदवती ने कहा—"राक्षसेन्द्र ! जिस कारण मेरे पिता ने मुझे किसी को नहीं दिया, उसे भी मैं आप को सुनाती हूँ। आप ध्यान पूर्वक सुनें। मेरे पिता चाहते थे, मेरेजामाता स्वय विष्णु भगवान्

हो । इसी आशा से वे मुझे किसी को देना नहीं चाहते थे ।"

एक बार दैत्यों के राजा शम्भु ने मेरे पिता से मेरी याचना की, पिता ने उसे भी मना कर दिया । वह दैत्य राज मेरे साथ विवाह करने को अत्यंत उत्सुक था, पिता से सूखा उत्तर पाकर वह क्रुद्ध होकर चला गया । किन्तु उसके मन का मैल नहीं गया । उसने इसमें अपना बड़ा अपमान समझा और पिताजी से उस अपमान का बदला लेने के लिये सोचने लगा । एक दिन पिताजी गाढ़ निद्रा मे सो रहे थे । वह दुष्ट रात्रि मे चुपके से आया और सोते हुए पिता जी का उसने वध कर दिया । मेरी माता को इस घटना से बड़ा दुःख हुआ । वे मेरे पिता के शरीर को लेकर अग्नि मे प्रवेश कर गई ।

जब मैंने देखा मेरे पिता मुझे श्री मन्नारायण को देना चाहते थे, पुराण पुरुष के साथ मेरा विवाह करना चाहते थे, तो मैं उनकी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के निमित्त यहाँ वन मे चली आई । मैं उन पुराण पुरुष पुरुषोतम को ही पति मान कर उन की आराधना करती हूँ । मैंने तो अपना हृदय उन्हें अर्पित कर ही दिया है, मैंने तो मन से उन्हे वरण कर ही लिया है, अब अपनाना न अपनाना उनका काम है । उन्हीं सर्वेश्वर को प्रसन्न करने के निमित्त मैं घोर तप कर रही हूँ । यह मैंने आपको अपना परिचय दे दिया, अब आप सुख पूर्वक जा सकते हैं ।"

रावण ने कहा—"देवि मैं जाना भी चाहूँ, तो नहीं जा सकता, मेरे पैर उठते नहीं, मानो वे यहाँ चिपक गये हैं । अब तक तुम्हारा विवाह न हुआ यह सौभाग्य की ही बात है । हे सुंदरि ! मैं तुम्हारे रूप पर अनुरक्त हूँ. मैं तुम्हारे सौन्दर्य को देखकर प्रमत्त हो गया हूँ । भामिनि ! दैव ने तुम्हें मेरे ही लिया बनाया है ।

तीनों लोकों का स्वामी मैं हूँ, सभी लोकपाल मेरे नम से थर थर काँपते हैं। मेरे सम्मुख विष्णु क्या है, विष्णु तो देवताओं की भाँति मेरे सम्मुख भी नहीं आ सकते। तुम हठ को छोड़ो, मुझे अपना पति बनालो। तुम्हें तुम्हारी तपस्या का फल मल गया।"

वेदवती ने गभारता पूर्वक कहा—'राक्षन र ज आपको ये बातें शोभा नहीं देती, मैं तो भगवान् विष्णु का पत्नी हो चुकी। आप भगवान् पुलस्त्य के पौत्र हैं, उत्तम कुल में अपका जन्म हुआ है। पर स्त्री के प्रति बुरे भाव रखना आपका उचित नहीं।"

यह सुनकर रावण ने अधिकार के स्वर मे कह — सुंदरी! तुम्हें अपने रूप का बडा अभिमान है। होना भी चाहिये क्यों कि ऐसी सुंदरी स्त्री मैने आज तक नहीं देखी। तुम्हारी यह अवस्था सुख भोग का है, तुम्हें बाबाजियों की भाँति तपस्या करना शोभा नहीं देता। तुम बार बार विष्णु विष्णु कह रही हो, वह विष्णु कौन है, वह तो भगोडा है, असुरों से युद्ध करते करते करते भाग जाता है। वह बल में, वीर्य में, तेज में, ओज में ऐश्वर्य में, किसी में भी मेरी बराबर नहीं। तुम उस विष्णु का मोह छोड़ कर मेरे साथ विवाह करके यथेच्छ सुख भोगो।"

वेदवती यह सुनकर परम क्रुद्ध हुई वह बोल — 'राक्षस! तू सचमुच राक्षस ही है। अरे, त्रिलोक के स्वामी श्री विष्णु के लिये तेरे अतिरिक्त और कौन ऐसे शब्द कह सकता है। तू अभी यहाँ से भाग जा, नहीं तेरा कुशल नहीं है।"

इतना सुनते ही रावण को क्रोध आगया वह बोला— तू मेरा अपमान करती है? तू मुझे साधारण व्यक्ति समझती है। अच्छी बात है तू इस का फल भोग।" यह कह कर उसने वेदवती के बाल पकड़े।

बालोंका पकड़ना था, कि वह कन्या सिंहनी बन गई। तुरं-त उसने क्रुद्ध हुई सर्पिणी की भाँति हाथ से अपने बालों को काट डाला। उस समय सती के प्रभाव से उस का हाथ तलवार बन गया। बाल बीच से कट गये। जो बाल रावण के हाथ में थे वे उसके हाथ में रह गये। गरजकर वह बोली—"दुष्ट ! तैंने मेरा अपमान किया है। पर पुरुष होकर तैंने मुझे काम भाव से स्पर्श किया है, अतः अब मेरा यह शरीर तपस्या के योग्य नहीं रहा। अब मैं इसे भस्म कर दूँगी। मैं चाहूँ तो तेरा वध कर सकती हूँ किन्तु स्त्रियों को ऐसा उचित नहीं। शाप देकर भी तुझे नष्ट कर सकती हूँ। किन्तु शाप से तपस्या नष्ट होती है। अतः अब मैं इस शरीर को अग्नि में भस्म किये देती हूँ, अगले जन्म में मैं किसी धर्मात्मा पुरुष के यहाँ अयोनिजा होकर उत्पन्न होऊँगी और तुमसे अपमान का बदला लूगी। तैंने वन में मेरा अपमान किया है, अतः तेरे वध का कारण वन ही होगा।"

सूतजी कहते हैं। "मुनियो ! इतना कहकर वेदवती ने तुरंत सूखा सूखी लकड़ियाँ इकट्ठी की और उनमें अग्नि लगाकर अपने शरीर को भस्म कर दिया। रावण पाषाण की मूर्ति की भाँति खड़ा खड़ा सब देखता रहा और अंत मे उदास मन से चला गया।"

वही देवी महाराज जनक के हल चलाते समय भूमि से उत्पन्न हुई। उसका नाम सीता हुआ। यद्यपि कुशध्वज भगवान् को जामाता बनाने की इच्छा लेकर मरे थे, अतः वे ही पवित्र

जनक वंश में उत्पन्न हुए। सीर से सीता निकलने के कारण उनका नाम सीरध्वज हुआ। ये सीरध्वज परम धार्मिक और महान् विद्वान् थे। घर में रहते हुए भी ये विरागी थे।

इस प्रकार सीता जी के जन्म सम्बन्ध में अनेकों कथाएँ हैं वास्तविक बात तो यह है, कि सीता जी भगवान् की आदि शक्ति हैं। भगवान् जहाँ जहाँ भी अवतरित होते हैं। वहाँ वहाँ ये भी

अवतरित होती हैं, क्यों कि शक्ति के बिना शक्तिवान् कुछ कर नहीं सकता। सभी कार्य शक्ति के द्वारा ही सम्पन्न होते हैं। शक्तिशाली ही सब कुछ कर सकते है, जिन्होंने जन्म जन्मान्तरो में सुकृति किये हैं, ऐसे सौभाग्यशाली पुरुषों के ही यहाँ शक्ति प्रकट होती हैं। शक्ति के आधार पर ही यह सम्पूर्ण विश्व टिका हुआ है। आदि जनक से लेकर अबतक के जितने जनक हुए हैं सभी के तप, तेज, ज्ञान, ध्यान तथा समस्त सुकृतों के फल स्वरूप सीता जी उनके वंश में उत्पन्न हुई। या स्वयं ही कृपा करके शक्ति ने उनके कुल को कृतार्थ करने के लिए अवतार धारण किया। जिस प्रकार महाराज सीरध्वज की पुत्री सीता जी हुई। यह मैंने अत्यन्त संक्षेप में आप से सीता जी की उत्पत्ति की कथा कही। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ?"

शौनक जी ने कहा—"हाँ, तो सूत जी ! अब आप महाराज सीरध्वज से आगे के जनक वंशीय राजाओं का वर्णन करें।"

सूत जी बोले—"सुनिये महाराज ! अब मैं आगे के राजाओं का वर्णन करता हूँ। सीता के पिता महाराज सीरध्वज जनक के पुत्र हुए कुशध्वज। ये महाराज भी अपने पिता, पितामह तथा प्रपितामह आदि की भाँति परम ज्ञानी और जीवन मुक्त थे। इनके पुत्र महाराज धर्मध्वज हुए। जिनका कि योगिनी सुलभा से बड़ा ही अध्यात्मपूर्ण संवाद हुआ था।"

यह सुनकर शौनक जी ने कहा—"सूतजी ! यह सुलभा योगिनी कौन थीं ? इनका महाराज धर्मध्वज जनक से कहाँ सम्वाद हुआ ? उसमें मुख्य विषय क्या था, कृपा करके जनक और सुलभा के सम्वाद की बात हमें सुनाइये।"

इस पर सूत जी बोले—'महाराज ! इस कथा प्रसङ्ग में ऐसे गूढ ज्ञान का विस्तार नहीं किया जा सकता। फिर भी प्रसङ्ग वश संक्षेप में मैं आप को सुलभा और महाराज धर्मध्वज के सम्वाद की बात सुनाता हूँ, आशा है आप इस गूढ ज्ञान सम्बन्धी आख्यान को ध्यान से सुनेंगे।"

छप्पय

सीय पिता बनि जगत माँहि यश विपुल कमायो।
कियो राम सँग ब्याह नृपति निज भाग्य सरायो॥
आदि शक्ति हैं सीय जगत छिन माँहि बनावें।
पाले पोसे सतत अन्त महँ प्रलय करावें॥
जह प्रपंच सब शक्ति को, क्रीडा थल ऋषि मुनि कह्यो।
जगदम्बा के पिता बनि, सीरध्वज अति यश लह्यो॥

—(००)—

महाराज धर्मध्वज और योगिनी सुलभा

(७१३)

कुशध्वजस्य पुत्रस्ततो धर्मध्वजो नृपः।
धर्मध्वजस्य द्वौ पुत्रौ कृतध्वजमितध्वजौ ॥ *
(श्रीभा० ९ स्क० १३ अ० १९ श्लो०)

छप्पय

सीरध्वज सुत भये कुशध्वज जनक अमानी।
धर्मध्वज तिनि पुत्र कर्म योगी अति ज्ञानी ॥
लोक वेद महँ निपुण सबनिकूँ ज्ञान सिखावें।
परमारथके प्रश्न पूछिवे पंडित आवें ॥
भयो सुखद सम्वाद शुभ, सुलभा योगिनि संग महँ।
घुसी योगिनी योग तैं, जनक नृपतिके अंग महँ ॥

दो समान शील व्यक्ति मिलते हैं, तो परस्परके सत्संगसे बोध उत्पन्न होता है, दोनों को ही सुख होता है। ज्ञानी ज्ञानी को खोज करता है, व्यसनी व्यसनी को। समान धर्म हुए बिना सत्संग सुख नहीं होता। इष्ट और मनके बिना मिले, अपनापन नहीं होता वाद विवाद में भले ही

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! सीता पिता महाराज सीरध्वजके सुत कुशध्वज हुए। उनके पुत्र धर्मध्वज हुए। धर्मध्वजके दो पुत्र हुए। उनमें से एक का नाम कृतध्वज और दूसरे का नाम मितध्वज था।

कड़े शब्दोंका प्रयोग हो जाय, किन्तु भावना दोनोंकी ही शुद्ध रहनी चाहिये। क्योंकि ज्ञानी पुरुष और वीणा छेड़नेसे-आघात करनेसे-ही सुख देते हैं। छेड़ते छेड़ते वे मिल जायँ एक स्वर हो जाँय; तब तो कहना ही क्या, ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति हो जाती है।

सूतजी कहते हैं—" मुनियो! आपने मुझसे योगिनी सुलभा और धर्मध्वज जनकके सम्वादके सम्बन्धमें प्रश्न किया उसे मैं आपको सुनाता हूँ। यह गूढ़ ज्ञानसे युक्त सम्वाद अत्यन्त गम्भीर है, इसे सुनते समय चित्त तनिक भी इधर उधर गया तो सब गुड़ गोबर हो जायगा। इसलिये आप इसे भली भाँति स्वस्थ चित्त होकर सावधानीसे श्रवण करें।"

प्राचीनकालमें सुलभा नामकी एक बड़ी ही प्रसिद्ध योगिनी स्त्री हो गई है। वह उन दिनोंकी स्त्रियोंमें बहुत उच्च कोटिकी योगिनी थी। महाराज धर्मध्वज जनक भी उन दिनोंके परम ज्ञानी थे। वे वैदिक कर्मकाण्ड तथा मोक्षप्रद ज्ञानकाण्ड दोनोंमें ही निष्णात थे। सर्वत्र उनके ज्ञान, वैराग्य, सदाचार तथा त्यागकी ख्याति थी। सुलभाके मनमें हुआ कि देखें तो सही, जनककी बड़ी प्रशंसा है, यथार्थमें वे पूर्णज्ञानी हैं, या उनके ज्ञानमें कुछ त्रुटि है इसी जिज्ञासासे वह महाराज जनकके दरबारमें आई। यद्यपि वह भिक्षुणी सन्यासिनी थी, तो भी त्रिदण्ड आदि सन्यासके सब चिन्होंको त्यागकर आई थी। संयोगकी बात उस समय महाराज जनक भी छत्र चँवर आदि चिन्होंको छोड़कर साधारण आसन पर सभासदोंके साथ बैठे बातें कर रहे थे। ब्रह्मज्ञानकी चर्चा हो रही थी, उसी समय योगिनी सुलभा वहाँ आई। वह अपना यथार्थ रूप छिपाकर एक अत्यन्त ही सुन्दरी स्त्री बनकर आई थी। उसके मुखमण्डलपर तेज विराजमान था। उसके अंग प्रत्यंगसे सौन्-

फूट फूटकर निकल रहा था। उसके अंग सुडौल और सुकुमार थे। देखनेमें वह स्वर्गीय देवी सी प्रतीत होती थी। राजाने उस तेजस्विनी योगिनीका विधिवत् स्वागत सत्कार किया। सुन्दर आसन पर बिठाकर उसकी पूजाकी। फल मूल भेंट किये
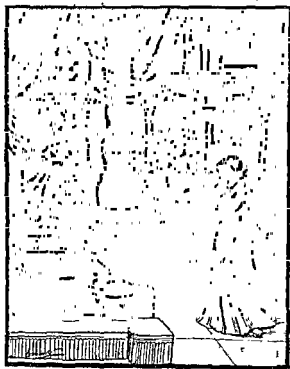
और कुशल पूछी। राजाकी पूजाको स्वीकार करके योगिनी राजाके सम्मुख बैठ गई। वह तो राजाकी परीक्षा करने ही आई थी। उसे संदेह था कि सर्वत्र, राजा जनकका जैसा नाम है, वैसा वह त्यागी तथा जीवन्मुक्त है या नहीं। इसीलिये उसने अपने बुद्धिसत्वसे राजाके बुद्धिसत्वमें प्रवेश

किया। उसने अपने नेत्रोंको राजाके नेत्रोंसे मिलाकर त्राटक विधिके द्वारा राजा पर अपना प्रभाव जमाना चाहा। राजा को तो पूर्ण विश्वास था, मेरे ऊपर किसीका प्रभाव पड़ नहीं सकता। अतः वे बिना कुछ बाधा दिये चुप चाप बैठे रहे; उन्होंने सुलभाके किसी काममें विक्षेप नहीं किया। जब वह बुद्धिके द्वारा राजाके शरीरमें प्रवेश कर गई, तब महाराज धर्मध्वजने पूछा—"देवि! आपने यह वेष क्यों बना रखा है? आपको यह वेष बनानेका अधिकार किससे प्राप्त हुआ?"

सुलभा योगिनीने कहा—"राजन्! सभीने कोई न कोई वेष बनाया ही है। किसीने राजाका वेष बनाया है, कोई अपनेको साधुवेषमें सजाता है, कोई अपने वेषसे परमहंस अपनेको प्रकट करता है। कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं जिसका कुछ न कुछ वेष न हो, फिर मैंने कोई वेष बना रखा है, तो इसमें आपको आश्चर्य क्यों हुआ।"

इस पर राजाने कहा—"वेष तो सबका कुछ न कुछ होता ही है, किन्तु मुझे ऐसा लगता है, कि तुम्हारा यह यथार्थ वेष नहीं। तुम वेष बदलकर मेरे समीप आयी हो, बुद्धिमानों को चाहिये राजाके समीप और स्त्रियोंके समीप वेष बदल कर न जाय, ऐसा करनेसे अनर्थ हो सकता है। तुमवेष बदलकर मेरे पास आई हो, तुम अपना यथार्थ परिचय मुझे दो। तुम कौन हो? तुम्हारे पिताका क्या नाम है? तुम्हारा विवाह हुआ या नहीं? यदि हुआ है, तो तुम्हारे पतिका क्या नाम है? इस समय तुम कहाँसे आरही हो? यहाँ आनेका तुम्हारा अभिप्राय क्या है? तुम यहाँसे कहाँ जाओगी?"

इस पर सुलभाने कहा—"देखिये राजन्! वेष तो यथार्थ है ही नहीं, वह तो प्रतिक्षण बदलता ही रहता है। परमात्माको छोड़कर एक भी कोई ऐसा वेष हो, जो बदलता न हो, वह मुझे बताओ। जब कोई यथार्थ वेष है ही नहीं, सभी बनावटी और परिवर्तनशील हैं, तो तुम मेरे वेषको बनावटी क्यों बताते हो? अब तुम पूछते हो तुम कौन हो? कहाँसे आई हो? ये प्रश्न तो मित्रतामें होते हैं? अमुक यह है, अमुक वह है, मैं यह हूँ, और तुम कौन हो? मेरी दृष्टिमें तो सब एक ही हैं। सभीकी उत्पत्ति एकही मूलसे हुई है, फिर मैं कैसे बताऊँ, कि मैं यह हूँ। बिन्दु बिन्दु मिलकर जल राशि बनी है; जैसे वे सब मिले हुए हैं, वैसे ही सभी प्राणी परस्परमें एक राशि में मिले हैं। देखनेको तो पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश ये भिन्न भिन्न हैं, इनके शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श ये गुण भी भिन्न भिन्न हैं, किन्तु फिर भी एक दूसरेसे मिले हुए हैं। पृथिवीमें शब्द, रूप, रस गन्ध स्पर्श ये सभी हैं। एक भूत दूसरेसे मिला है। फिर भी इनसे यह प्रश्न तो नहीं किया जाता कि तुम कौन हो। जलमें धूलि भी मिली है, तेज भी है, शब्द भी है किन्तु जल स्वयं अपनेको बतानेमें समर्थ नहीं। इनकी बात छोड़ दीजिये नेत्र इन्द्रिय सबके रूपोंको बताती है। किन्तु स्वयं वह अपनेको नहीं बता सकती। पंचभूत, उनकी तन्मात्रायें, दशों इन्द्रियाँ, बुद्धि, चित्त, अहंकार, ये सभी प्रकृतिसे उत्पन्न होते हैं, जितने जीव हैं सभी प्रकृतिसे उत्पन्न हुए हैं। जिसका तू है उसीकी मैं हूँ, फिर तुम्हारा यह प्रश्न कैसे

बनता है, कि तू कौन है। रही बनावटकी बात, तू कहता है, मैंने अपना वेष बदल लिया है-रूप परिवर्तन कर लिया है, तोभी तू सोच ले, एकसा रूप किसका रहता है, प्रतिक्षण सबका रूप बदलता रहता है।

स्त्रीका रज पुरुषका वीर्य दोनों मिलकर दोनों ही अपने रूपको बदल देते हैं। तत्क्षण वे मिलकर कलल हो जाते हैं; फिर कलल बदल कर बुद् बुद् बन जाता है। बुद् बुद्से पेशी; पेशीसे मांसपिंड, उनसे अंग प्रत्यंग बनते हैं। इन्द्रियोंके गोलक सप्त धातु नख रोम ये सब बदलते ही रहते हैं। जो बुद्बुद् था, वह अब बालक बन गया। बालक ६ महीनेके पश्चात् उदरसे उत्पन्न होकर स्त्री पुरुष संज्ञाको प्राप्त होता है। बच्चा कहलाता है; उसकी त्वचा कितनी कोमल होती है। अंग-प्रत्यंग कितने सुकुमार होते हैं, प्रतिक्षण बदलता जाता है; अंगोंमें कठिनता आती है, रूप परिवर्तित होता है, बाल निकलते हैं, झुर्रियाँ पड़ती हैं, बाल पकते हैं. बाल्य, कौमार, पौगंड, किशोर, युवा तथा वृद्धादि अवस्थायें होती हैं। एक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें रङ्ग रूप, आकृति, प्रकृति तो बदलती ही रहती है; प्रतिदिन नहीं प्रतिक्षण यह बदला बदली होती रहती है; किन्तु इतनी सूक्ष्म रीतिसे यह बदली होती है, कि इसे प्राणी जान नहीं सकते। किसकी उत्पत्ति किससे हुई इसे कौन कह सकता है। जलमें अमुक भँवर किससे उत्पन्न हुआ; इसे कौन बताये। सभी शरीरोंमें पृथिवी है, सभीमें जल, तेज, वायु, आकाश, इन्द्रियाँ, मन आदि सभी एक सी हैं, फिर यह निर्णय कैसे किया जाय कि कौन किससे उत्पन्न हुआ। जैसा तेरा शरीर है, वैसे ही दूसरेका है, जैसे तेरे शरीरमें आत्मा विद्यमान्

…, वैसे ही दूसरे शरीरोंमें, फिर यह प्रश्न कैसे बन सकता है। कि, मैं कौन हूँ तू कौन है ?"

इस पर महाराज जनकने कहा—"देवि ! तुमने मेरे शरीरमें प्रवेश क्यों किया ?"

सुलभाने कहा—"यह जाननेके लिये मैंने तेरे शरीरमें प्रवेश किया, कि तू यथार्थमें ज्ञानी है या नहीं। राजपाट करते हुए भी सब लोग तुझे क्यों ज्ञानी कहते हैं।"

इस पर महाराजने कहा—"देवि ! तुम्हें अपने योगका बड़ा अभिमान है, इसीलिये तुम अभिमान और चंचलता वश ऐसे अनुचित कार्य कर रही हो ?"

सुलभाने कहा—"तुम्हें कौनसे कार्य अनुचित दिखाई दिये ?"

राजाने कहा—"एक तो यही अनुचित कार्य तुमने किया कि स्त्री होकर तुमने मेरे शरीरमें प्रवेश किया।"

सुलभाने पूछा—"इसमें अनुचित क्या हुआ ?"

राजाने कहा—"इसमें सब अनुचित ही हुआ। एक नहीं इसमें अनेक दोष आगये। यह लोकोक्ति सत्य है कि स्त्रियाँ स्वतंत्र होनेसे बिगड़ जाती हैं। तैंने स्त्री सुलभ चञ्चलता वश यह कार्य किया है। मैं ज्ञानी हूँ या अज्ञानी, मुक्त हूँ या बद्ध, तुझे इस बातसे क्या प्रयोजन ! एक तो यह काम तैंने चञ्चलता वश किया। दूसरे तू अपनेको सन्यासिनी भिक्षुणी योगिनी बताती है। सन्यासी पुरुषके लिये स्त्रीका स्पर्श पाप है, इसी प्रकार सन्यासिनी स्त्रीको पुरुषका स्पर्श करना दोष है। तैंने मेरे शरीरमें प्रवेश करके सन्यास धर्मको दूषित किया है। इससे प्रतीत होता है, तू नामकी सन्यासिनी

है, तेरी अभी पुरुषके स्पर्शकी कामना ज्योंकी त्यों बनी हुई है। जिसके मनमें कामभाव विद्यमान् है, उसे सन्यासी कहानेका अधिकार ही नहीं। एक तो तैंने आश्रम सम्बन्धी साङ्कर्य किया। दूसरे तू ब्राह्मणी है, मैं क्षत्रिय। ब्राह्मणी स्त्री का क्षत्रिय शरीरमें प्रवेश करके तैंने वर्ण धर्मका लोप किया है. तीसरे मोक्षधर्म परायणा त्यागधर्मावलम्बिनी भिक्षुणी है, और मैं संग्रहधर्मी गृहस्थ हूँ। यह तैंने त्यागधर्मको भी दूषित किया है मुझे यह भी पता नहीं तू ब्राह्मणी है या क्षत्राणी। मानलो तू क्षत्राणी ही हो और मेरे गोत्रकी हो, तो तेरे द्वारा यह गोत्र साङ्कर्य दोष भी हो सकता है। तू यदि अविवाहिता कन्या है, तो कन्याका पर पुरुषके शरीरमें प्रवेश करना महा पाप है। यदि तू विवाहिता है, तो तेरा पति दूसरा होगा। मैं पर पुरुष हूँ, सती स्त्रियोंका पर पुरुषसे सम्बन्ध करना महा पाप है। यदि तूने अपनी उत्कृष्टता दर्शानेके लिये मेरे शरीरमें प्रवेष किया है, तो यह तेरी महान् चञ्चलता है। स्त्रियोंके लिये चञ्चलता महान् अवगुण है, अतः सभी दृष्टियोंसे तेरा यह व्यवहार अनुचित है, गर्ह्य है, दोषयुक्त है। तू मेरी इच्छाके विपरीत- विना मुझसे पूछे ही मेरी बुद्धिमें घुस गई है। यह संगम एकाङ्गी है। सम्मतिसे उभय पक्षकी प्रसन्नतासे जो संगम होता है वह सुखकर है। एकाङ्गी संगम दुःखद है अतः तैंने यह विष वमनका कार्य किया है। यदि तैंने विजयकी इच्छासे मुझे परास्त करनेके लिये ऐसा कार्य किया है, तो यह भी सर्वथा अनुचित है। सन्यास धर्म वालोंको विवाद, जय पराजयसे सर्वथा पृथक ही रहना चाहिये। अतः तेरे

सभी व्यवहार लोक तथा वेद दोनों ही दृष्टिसे निन्दनीय हैं ।"

यह सुनकर सुलभा खिल खिलाकर हँस पड़ी और बोली—"अरे, जनक मैं तो समझती थी तेरा द्वैतभाव नष्ट हो गया है, तू ब्रह्मज्ञानी हो चुका है, किन्तु तेरी बातें तो सब अज्ञानियोंकी सी हैं, आत्मामें स्वगत विगत स्वजाति, बिजाति, स्त्री, पुरुषका भेद ही नहीं। तू तो अपने ज्ञानको वासना रहित बताता है, किन्तु तेरे मनमें तो प्रत्यक्ष वासना विद्यमान् है। यद्यपि बुद्धितत्वसे मैंने तेरे शरीरमें प्रवेश अवश्य किया है किन्तु जैसे कमल पत्र जलमें रहकर भी जलको स्पर्श नहीं करता उसी प्रकार मैंने अपने अगों से तेरे अगोंका स्पर्श नहीं किया है। तू तो अपनेको जीवन्मुक्त बताता है, कि मनसे सगकी भावना करनेसे तू तो स्वधर्म से च्युत होचुका है। अभी तेरा यह मिथ्याभिमान नहीं गया यह गृहस्थ यह त्यागी। जीवका तो धर्म ही मोक्षके साथ समागम करता है, इसमें सङ्करता का क्या काम जिसके मनमें भेद है, उसे द्वैत का भान होता है, जब सर्वत्र, एक ही आत्मा विद्यमान है तब उनमें सङ्करता सभव नहीं। वैसे भी देखो, सन्यासी का धर्म है एकान्तमें वास कर, मैंने तेरी बुद्धिको एकान्त समझा उसमें मैं सुखसे निवास करगई। लौकिक दृष्टिसे भी साङ्कर्य नहीं। तू क्षत्रिय है मैं भी क्षत्रिकन्या हूँ, मेरा तेरा गोत्र एक नहीं। मैं तुमसे हीन जातिकी भी नहीं।

राजाने पूछा—"देवि! तुम किस क्षत्रियकी पुत्री हो?"
सुलभा बोली—"राजन् आपने प्रधान नामक राजर्षिका नाम

सुना ही होगा। वे बड़े ही यशस्वी और पुण्यश्लोक हैं। उन्होंने बड़े बड़े यज्ञ याग किये हैं। मैं उन्हींकी प्यारी पुत्री हूँ। बाल्य कालसे ही मेरी अध्यात्मकी ओर रुचि है। मैंने समस्त शास्त्रोंका विधिवत् गुरु मुखसे अध्ययन किया है। जब मैं विवाह योग्य हुई, तो बहुतसे राजकुमार मुझसे विवाह करने आये, किन्तु उनमें कोई भी मेरे अनुरूप नहीं थे। योग्य वरके न मिलनेसे मैंने गुरु मुखसे मोक्षधर्मका उपदेश ग्रहण कर लिया मैं भिक्षुणी सन्यासिनी बन गई। मैं सन्यास धर्मका विधिवत् पालन करती हूँ, एकान्तमें रहती हूँ। मै बिना विचारे कोई कार्य नहीं करती। मैंने तुम्हारी बहुत प्रशंसा सुनी थी, कि तुम मोक्षधर्मावलम्बी हो, इसीलिये सत्संगके निमित्त मैं यहाँ चली आई। मेरे मनमें किसी प्रकारकी कामना नहीं है। मैं ब्रह्मचारिणी हूँ मैं अपनी प्रतिज्ञासे कभी च्युत होने वाली नहीं हूँ। मैंतो केवल तुम्हारे ज्ञानकी थाह लेने आई थी।"

राजाने कहा — "देवि तोभी तुम्हारी चंचलता ही है। मैं ज्ञानी हूँ या अज्ञानी इससे तुम्हें क्या? मेरे ज्ञानी होनेमें संदेह क्यों हुआ? क्या मूँड़ मुड़ाकर बाबाजी बननेसे ही ज्ञानी होते हैं। क्या घरमें रहकर कोई ज्ञानी नहीं होसकता। मैंने गुरु परम्परासे ज्ञान प्राप्त किया है। मेरे गुरु ऐसे वैसे नहीं हैं। वे संसारमें विख्यात हैं, उनकानाम महामुनि पञ्चशिख है, वे लोक कल्याणार्थ, भूले भटके प्राणियोंको सत्पथ दिखानेके निमित्त पृथिवीपर भ्रमण करते रहते हैं। गत वर्ष इन्होंने यहीं मेरी पुरीमें चातुर्मास्य किया था। वे सांख्य शास्त्रके पूर्ण पंडित हैं। योग शास्त्रमें भी पारंगत हैं। उन्होंने मुझे सांख्यशास्त्र, योग विधि तथा कर्मकांड तीनोंकी ही शिक्षा दी है

और मैं भी उनकी कृपासे निष्णात होचुका हूँ। उन्होंने मुझे बाबाजी नहीं बनाया। गृहस्थ धर्ममें रखते हुए ही मुझे पूर्ण ज्ञानी बना दिया है। उन गुरुदेवकी कृपासे ही मेरे सब संशय दूर होगये हैं। मेरे हृदयकी ग्रन्थि खुल गई है, मैं पूर्ण ज्ञानी होगया हूँ। मैं राज काज करते हुए भी उनमें निर्लिप्त रहता हूँ। मोक्षके साधन ज्ञान वैराग्य हैं। मुझे पूर्ण ज्ञान हो गया है। ज्ञानीके लिये आवश्यक नहीं वह त्यागी वैरागीका वेष बनावे। वह तो बिना वेष बनाये ही सब स्थितियोंमें मग्न रहता है। मुख्य तो है अन्तःकरणका शुद्ध होना यदि गृहस्थीमें रहतेहुए भी जो सदाचारसे रहता है यम नियमोंका पालन करता है, तो वह घरमें रहता हुआभी सन्यासी है। इनके विपरीत जो भी नियमोंका पालन नहीं करता। सन्यासीका वेष बना लेने पर भी जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, द्वेष, धनादिमें आसक्ति रखता है इन सब वस्तुओंका संग्रह करता है, तो वह सन्यासी होने पर भी गृहस्थोंसे गया बीता है। योगिनीजी! केवल अकर्मण्य होजानेसे, अग्नि न छूनेसे, काषायवस्त्र, त्रिदंडादि धारण करनेसे ही कोई सन्यासी नहीं बन सकता। जब तक संसारी विषयोंसे वैराग्य नहीं होता, तब तक ज्ञान नहीं होसकता। ज्ञानके बिना मोक्ष हो ही नहीं सकता। मनुष्य मृत्युके भयसे ही इधर उधर घूमता रहता है। बिना ज्ञानके मृत्युका भय जाता नहीं। ज्ञान होने पर जीव निर्द्वन्द्व होजाता है, फिर वह जन्म मरणके चक्रसे छूट जाता है।

बन्धनका कारण पूर्वजन्म कृत पुण्य पापही है। कारण रूपसे प्राणियोंके शरीरोंमें पुण्य पाप विद्यमान् रहते हैं। बीज जैसे जलसे सींचे खेतमें पड़ते ही अंकुरित हो उठता है, वह फिरसे वृक्ष होजाता है. इसी प्रकार वासनामय बीज शरीरोंको पाकर जन्म मरणके चक्करमें फँसते हैं, सुख दुःख भोगते हैं। जब तक कर्मोंकी वासना बनी रहेगी तब तक बारंबार जन्म होगा, बारम्बार मृत्यु होगी। जब वासना रूप बीज ज्ञान रूप अग्निमें भून दिया जाता है, तो फिर उसमें अंकुर उत्पन्न नहीं होते। मैंने गुरु प्रसादसे वासनाओंको भून डाला है। मुझे इन संसारी विषयोंमें आसक्ति नहीं। ये अनित्य और नाशवान् विषय मुझे अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकते। मुझे राज्यपाटमें कोई सुख नहीं, दुख भी नहीं। स्त्री पुत्रोंमें राग नहीं, द्वेष भी नहीं। मेरा कोई शत्रु नहीं मित्र नहीं। मैं उदासीनकी भाँति व्यवहार करता हूँ। कोई मेरे एक हाथमें अग्नि देदे। दूसरे हाथमें कोमलाङ्गी स्त्रीका अङ्ग, मेरे लिये दोनो समान हैं। ज्ञान होने पर चाहे कोई त्रिदण्ड धारण करे, राज्यपाट करे अथवा नौकरी करे सब समान है। ज्ञान न होने पर चाहे सम्पूर्ण शरीरको गेरूसे रंग ले; सैकड़ों त्रिदण्ड कमंडलु धारण करले, उससे कोई लाभ नहीं।"

कुछ लोग कहते हैं कि दण्ड धारण मात्रसे ही नर नारायण होजाता है। यह केवल दण्डकी प्रशंसा मात्र है; नहीं मुख्य तो ज्ञान है। ज्ञान होने पर त्रिदण्ड तथा छत्रका दण्ड सभी समान हैं। यह कहो, कि सब

त्याग कर केवल कोपीन मात्र धारण करनेसे ही मोक्ष प्राप्त होजाता हो, सो बात नहीं। त्यागका सम्बन्ध वस्तुओंसे नहीं, मनसे है। मनसे जिसने त्याग कर दिया है, वह राजाओंकेसे छत्र चँवर धारण करके भी त्यागी होसकता है और जिसने मनसे त्याग नहीं किया वह लँगोटी लगाकर भी त्यागी नहीं है।

यह बात तो नहीं कि मनुष्य जो कुछ मिल जाता हो, उसीका सम्रह करता हो। साँप बिच्छू, सिंह व्याघ्रका संग्रह कौन करता है। लोग इनसे दूर रहते हैं जिस वस्तुसे जिसका काम चलता है उसीका वह संग्रह करता है। बहुतसे साँप नचाकर आजीविका करनेवालोंका साँप से काम चलता है। वे सर्पोंका संग्रह करते हैं। जिन फटे पुराने कपडोंको हम फेंक देते हैं, कागद बनाने वाले उनका संग्रह करते हैं, क्योंकि उनसे उनका काम निकलता है। राजा छत्र चँवर, हाथी, घोड़ा, सेना, कोष, मंत्री, भवन, सेवक आदि वस्तुओंका संग्रह करते हैं। सन्यासी दंड, कमंडलु, कंथा, कोपीन, आदिका संग्रह करते हैं। संग्रह दोनों ही समान है। यदि आसक्ति है तो साधुओंकी कमंडलुमें भी आसक्ति होती है। उसमें भाँति भाँतिकी कारीगरी कराते हैं, नित्य उसे चिक्नाया करते हैं, देख देख रखते हैं, कोई उठा न ले जाय। कहीं अग्नि लगने पर उन्हें चिन्ता होती है, हमारे दंड कमन्डलु न जल जायँ। इसके विपरीत इतनी वस्तुओंका संग्रह करनेपर भी मुझे इन वस्तुओंमें आसक्ति नहीं। संपूर्ण मिथिलापुरी जल जाय, मुझे इसमें कुछ भी दुख न होगा।

गेरुआ वस्त्र पहिननेसे या मूड़ मुड़ानेसे ही दुख दूर हो जायँ, तो बहुतसे लोग गेरूआ पहने भी दुखी दिखाई देते हैं। भेड़भी मूढ़ी जाती है; यदि पैसा न रखना ही दुःख निवृत्ति का कारण हो तो पशु पक्षी तो पैसा नहीं रखते, ये कलके लिये संग्रह भी नहीं करते, इन सब को मुक्त होजाना चाहिये। दरिद्र सभी जीवन्मुक्त होजायँ। बाह्य त्याग और बाह्य संग्रह का ज्ञानसे कोई सम्बन्ध नहीं। अकिञ्चन वेष बना कर भी बन्धन हो सकता है और धनादिक संग्रह करने पर भी वह जीवन्मुक्त हो सकता है।"

जनक कहरहे हैं—"सुलभे! तुम पढ़ी लिखी प्रतीत होती हो, तुम्हारे ओज, तेज, प्रभावसे मैं प्रभावित हुआ हूँ। मुझे तेरे ऊपर श्रद्धा होगई है, किन्तु यह रूप तेरे अनुरूप नहीं तू सुन्दरी है, सुकुमारी है, युवती है, तुझे शिष्टता का व्यवहार करना चाहिये। ऐसे अपना प्रभाव जतानेके लिये किसीके शरीरमें प्रवेश न करना चाहिए।"

यहसुनकर सुलभाने कहा—"राजन्! तुम्हारा कथन सत्य है। फिरभी ज्ञानीके लिये वेष बन्धन का कारण नहीं। वह चाहें जैसा वेष बना सकता है। आप अभी कह चुके हैं, बाह्यत्याग संग्रह ज्ञानमें कारण नहीं, फिर भी आप बार बार अपने पक्षकी पुष्टि कर रहे हैं। राजन्! मैं बिना सोचे समझे तुम्हारे समीप नहीं आई हूँ। मैं तो मुमुक्षुओं को खोजती फिरती हूँ, जब मैंने सुना तुम ज्ञानी हो, ब्रह्मवेत्ता हो, तो केवल तुम्हारे कल्याणकी भावनासे तथा तुम्हारे मोक्ष ज्ञानको समझने के निमित्त ही मैं यहाँ आई हूँ। मैं वाद विवादसे सदा दूर रहती हूँ। जैसे शारीरिक बल वाले मल्ल,

दूसरे को जीतने के लिये परस्परमें लड़ते हैं, उस प्रकार ज्ञानियों का वाद विवाद नहीं होता। जो स्वपक्ष का मंडन करनेके निमित्त जो भी मनमें आता है, अंट संट बातें बताते हैं, वितंडा बात करते हैं। वे यथार्थ ज्ञानी नहीं। शब्दों पर ही लड़ते हैं, बालकी खाल निकालते हैं, ऐसे शाब्दिक ज्ञानीयोंसे परमार्थ बहुत दूर है।

ज्ञानी तो वाद विवादसे बचकर मौन धारण करता है। वह तो निजानंद में मग्न रहता है। उसे जय पराजयसे क्या काम; मैंने तुम्हारे ज्ञानको थाह पाली। सन्यासी किसी नगर में जाता है, तो किसी शून्य गृहमें निर्जन स्थानमें एक रात्रि निवास करता है, दूसरे दिन फिर अन्यत्र चला जाता है, उसी प्रकार मैं तुम्हारे शरीर रूपी घरमें आजकी रात्री निवास करके चली जाऊँगी। राजन्! सौभाग्यकी बात है, कि आप राज्य-पाटमें लगे रहने पर भी संसारी भोगोंसे विरक्त हैं। प्रपंचमें रहते हुए भी निष्प्रपञ्च हैं। यह आपके कुलके अनुरूप ही है। आपके सभी पूर्वज विदेह ज्ञानी और जीवन्मुक्त हुए हैं। आप भी उन्हीं की भाँति हैं, आपने मेरा आदर सत्कार किया, इतने देर सत्संग किया,

चलीगई। यह मैं ने प्रसंगवश महाराज जनक और सुलभा का सम्वाद सुनाया। अब आप धर्मध्वजसे आगेके जनक वंशीय राजाओंके वंश का वर्णन सुनिये।"

छप्पय

भये योगिनी संग जनक नृपके प्रश्नोत्तर।
योग, ज्ञान अध्यात्म युक्त सुंदर अति सुखकर॥
दोनों ज्ञानी परम ज्ञान की गंग बहाई।
जनक त्याग तप तेज निरखि सुलभा हरपाई॥
स्वयं तरे तारे बहुत. द्वै तिनके अनुरूप सुत।
भये कृतध्वज प्रथम नृप, द्वितिय मितध्वज योगयुत॥

महाराज केशिध्वज और खाण्डिक्य

(७१४)

कृतध्वजात् केशिध्वजः खाण्डिक्यस्तु मितध्वजात् ।
कृतध्वजसुतो राजन्नात्मविद्याविशारदः ॥ *

(श्री भा० ६ स्क० १३ अ० २० श्लो०)

छप्पय

पुत्र कृतध्वज माँहि भये केशिध्वज ज्ञानी ।
नृप मितध्वज तनय भये खाण्डिक्य अमानी ॥
केशिध्वज अध्यात्म ज्ञान महँ विदित दिवाकर ।
कर्म तत्व परिवीन नृपति खाण्डिक्य उजागर ॥
क्षत्रिय धर्म कठोर अति, समर उभय दल महँ भयो ।
हार्यो लघु खाण्डिक्य नृप, हरि के वन महँ भागि गयो ॥

गुणग्राहिता एक ऐसा गुण है, कि वह सब में नहीं होता । जिस में गुण ग्रहण करने की प्रवृत्ति होगी वह संसार में किसी से द्वेष न करेगा । हम द्वेष क्यों करते हैं ? अज्ञान वश जब हम असत् वस्तु तो सत् समझ कर इसमें मिथ्याभिनिवेश कर लेते हैं,तभी किसी को शत्रु मान लेते हैं किसी को मित्र । जिस के प्रति

---

* श्री शुकदेव जी कहते हैं—"राजन् ! महाराज जनक के कृतध्वज और मितध्वज दो पुत्र थे । तिनमें कृतध्वज के पुत्र केशिध्वज हुए और मितध्वज के पुत्र हुए खाण्डिक्य । इनमें केशिध्वज आत्मविद्या विशारद थे ।

हमारे मन में शत्रुता हो जाती है, तो उसके गुण भी दोष ही दिखाई देने लगते हैं, द्वेषवश हम उसके शुभ कार्यों में भी सम्मिलित नहीं होते। हमारी चाहें कितनी भी हानि क्यों न हो जाय, उसके समीप जाते भी नहीं किन्तु जो गुण ग्राही हैं उनकी पहली तो किसी से शत्रुता होती नहीं। फिर भी कर्तव्य वश किसी से शत्रुता हो भी जाय तो उनके मन में कोई भाव नहीं रहता। अवसर आने पर वे शत्रुता को भूल जाते हैं। मूर्खों की शत्रुता तो पत्थर की लीक के समान होती है, जो कभी मिटती नहीं। किन्तु ज्ञानियों की शत्रुता बालू की लकीर के समान है, कि जहाँ वायु आई फिर मिट कर ज्यों की त्यों हो गई। संसार में रहने से ज्ञानी हो अज्ञानी हो मित्रता शत्रुता तो प्रायः अपने संसर्गियों से होही जाती है, किन्तु ज्ञानीके हृदय पर इनका कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता। अज्ञानी राग द्वेष के कारण दुखी होता है, इतना ही ज्ञानी अज्ञानी के व्यवहार में अंतर है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! मैंने आपको जनक वंशीय महाराज धर्मध्वज और योगिनी सुलभा का संक्षिप्त सम्वाद सुनाया अब आप धर्मध्वज से आगे जनक वंशीय मैथिल राजाओं के वंश का वर्णन श्रवण कीजिये।

महाराज धर्मध्वज जनक के दो पुत्र हुए कृतध्वज जनक, दूसरे मितध्वज जनक, कृतध्वके पुत्र हुए केशिध्वज जनक, और मितध्वज जनकके पुत्र हुए खाण्डिक्य जनक; इन दोनों भाईयों का बड़ा ही अध्यात्म सम्बन्धी सुंदर सम्वाद है, जिसमे परमार्थका बड़ा ही सरलता से निरूपण किया गया।

यह सुनकर शौनक जी बोले—"सूतजी हमें महाराज केशिध्वज जनक और राजर्षि खाण्डिक्य जनक के सुखद सम्वाद को अवश्य सुनावें। उसे सुननेकी हमारी बडी इच्छा है, यह आध्यात्म्य सम्बन्धी चर्चा है बडी गूढ किन्तु इन जनक वंशीय राजाओं के आख्यान तो गूढ ज्ञान से ही ओत प्रोत रहते हैं। इनमें अध्यात्म्य जैसे नीरस विषय को बडी सरसता और सरलताके साथ समझाया जाता है।"

यह सुनकर सूतजी बोले—"मुनियो! यहाँ में अध्यात्म्य चर्चा तो कर ही नहीं रहाहूँ, यहाँ तो में सरल सरल शिक्षाप्रद कथाओं को प्रसिद्ध पुरुषों के आख्यान को सुना रहा हूँ। इसलिये इस विषय का विस्तार न करके में प्रसङ्ग वश सम्वाद को संक्षेप में ही सुनाऊँ गा। यह केशिध्वज और खाण्डिक्य का सम्वाद बडा ही शिक्षाप्रद, रोचक और आध्यात्मिक भावों से भरा हुआ है। अच्छी बात है, सुनिये में इस पुण्य प्रसङ्ग को सुनाता हूँ।

महाराज कृतध्वज के पुत्र केशिध्वज हुए। ये परम ज्ञानी ऋषि मुनि इनसे परमार्थ सम्बन्धी प्रश्न पूछने आते थे और अनेक प्रकार की शंकायें किया करते थे। उन सब का यथोचित उत्तर देते सभी शंकाओं का समाधान करते। इनके चाचा मितध्वज के पुत्र खाण्डिक्य भी ज्ञानी तो थे ही किन्तु वे कर्म काण्ड के विशेष ज्ञाता थे कर्म काण्ड के विषय में उनकी सर्वत्र ख्याति थी। कर्मकाण्ड सम्बन्धी जो भी बडीसे बडी शंका होती उसका ये समाधान करते। इनका भी केशिध्वज से पृथक अपना छोटा सा राज्य था, उसमें सुख पूर्वक रहकर यज्ञ किया करते थे।

क्षत्रिय धर्म ऐसा क्रूर है, कि इसमें बाप की बेटे के साथ, भाई की भाई के साथ सम्बन्धी की सम्बन्धी के साथ लडाई हो

जाती है। कोई भी क्षत्रीय किसी भी क्षत्रीय को अस्त्र शस्त्र लेकर युद्ध के लिये ललकारे तो कोई भी आत्माभिमानी क्षत्रिय कुमार युद्ध से पराङमुख न होगा। उस युद्ध का अभिनंदन करेगा और प्राणों का प्रण लगाकर समर भूमि में उतर पडेगा। इसी प्रकार किसी कारण से केशिध्वज और खाण्डिक्य का भी युद्ध हुआ। दोनों ही शूर वीर थे क्षत्रिय कुमार थे, भाई भाई थे। बहुत देर तक युद्ध होता रहा, अन्त मे विजय केशिध्वज की हुई। खा-ण्डिक्य पराजित होकर अपने मत्री पुरोहित तथा कुछ सेवकों को साथ लेकर वन को चला गया और वन में अपना एक छोटा सा किला बनाकर और आस पास के गाँवों पर अधिकार जमा कर छोटा सा राज्य स्थापित करके रहने लगा। इधर केशिध्वज ने खाण्डिक्य के राज्य पर अधिकार जमा लिया और सुख पूर्वक राज्य करने लगा।

ज्ञानी पुरुष भी आशक्ति छोडकर निष्काम भाव स लाक समहणार्थ यज्ञ यागादि पुण्य कर्म करते ही रहते हैं। यह न करें तो काल क्षेप कैसे हो। यज्ञ, दान, तप ये तो मनुष्य को पावन बनाने वाले है इन का तों कभी परित्याग करना ही न चाहिये। इसी भाव से आत्मविद्या विशारद महाराज केशिध्वज सदा यज्ञ याग आदि पुण्य कार्यों मे लगे ही रहते थे।

एक वार उन्होंने एक बहुत बडा यज्ञ कराया। बडे बडे कर्म काण्डी ऋषि मुनि उस यज्ञ को करने के लिये बुलाये गये। स-योग की बात कि जिस धेनु के दूध से यज्ञीय कर्म सम्पन्न होते थे, वह यज्ञीय धेनु किसी सिंहने विजन वन मे रक्षकों की असा-वधानी के कारण मार डाली। यह तो यज्ञ मे बडा भारी विघ्न था अब यज्ञ कैसे हो, क्या प्रायश्चित्त इसके लिये किया जाय। यज्ञ

में यज्ञीय धेनु का नष्ट हो जाना यह तो बड़ा भारी पाप है, यज्ञमें महान् अन्तराय है। राजा बड़े चिन्तित हुए, उन्होंने अपने ऋत्विजों से इसका प्रायश्चित पूछा।

ऋत्विजों ने सरलता के साथ निष्कपट भाव से कहा—"राजन्! हम इसका यथार्थ प्रायश्चित्त नहीं बता सकते। आज कल महर्षि कशेरु कर्मकाण्ड में प्रसिद्ध हैं। विशेष कर प्रायश्चित विधान में तो उनकी अव्याहत गति है, उनका समाध्यान भगवान् कशेरु ही कर सकते हैं। आप उनकी शरण में जायँ, वे आपको इसका यथोचित प्रायश्चित्त बतावेंगे।"

यह सुनकर महाराज केशिध्वज को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने ऋत्विजों की सम्मति को शिरोधार्य किया और महर्षि कशेरु के समीप प्रायश्चित्त पूछने गये। प्रणाम और शिष्टाचार के अनंतर राजाने सब वृत्तान्त बतलाया, किस तरह उनकी यज्ञीय धेनु शार्दूल द्वारा मारी गई, किस प्रकार ऋत्विजों ने पूछने पर मुझे आपकी सेवा में भेजा। ये सब बातें बताकर अंत में उसका प्रायश्चित जानना चाहा।

सब बातें सुनकर महर्षि कशेरु बोले—"राजन्! यह विषय बड़ा गूढ़ है। अब मैं यह निर्णय नहीं कर सका, कि यज्ञीय धे[illegible] के वध हो जाने पर तुम प्रायश्चित करके फिर इसी दीक्षा से यज्ञ कर सकते हो या तुम्हें पुनः दीक्षा लेनी होगी आप एक काम क[illegible] इस विषय को जाकर भृगु वंशीय महर्षि शुनक से पूछिये। मह[illegible] शुनक मुझसे भी अधिक इस विषय के ज्ञाता हैं।"

सूतजी कहते हैं—"शौनक जी, अपके पिता भगवान् शुन[illegible] कर्मकाण्ड में अद्वितीय थे। जिस शंका का कहीं भी समाधान [illegible] हो, वह आपके पूज्य पिता जी के समीप जाकर होता था। कशे[illegible]

मुनिकी बात सुनकर तथा उनको प्रणाम करके राजा आपके पिता भगवान् शुनक के समीप गये।

भृगुवंशीय भगवान् शुनक ने राजा का सत्कार किया और आने का कारण पूछा। राजा ने विनय प्रदर्शित करते हुए हाथ जोड़कर कहा—"ब्रह्मन्! मेरे यज्ञ की यज्ञीय धेनु का अरण्य में शार्दूलने वध कर दिया है। उस का प्रायश्चित्त मेरे ऋत्विज नहीं बता सके। उन्होंने मुझे महर्षि कशेरु के समीप भेजा कि वे आप को यथार्थ प्रायश्चित्त बतावेंगे। जब वे उन सत्यवादी ऋषिके समीप पहुँचा तो उन्होंने बिना छल कपट के कह दिया—"भैया, मैं भी इसका यथार्थ प्रायश्चित्त नहीं जानता तुम भगवान शुनक की सेवा में जाओ। वे तुम्हें इसका शास्त्रीय प्रायश्चित्त बतावेंगे। इसी लिये मैं भगवान् के चरणों में उपस्थित हुआ हूँ।"

यह सुनकर सर्वज्ञ शुनक बोले—राजन्! इसका प्रायश्चित्त न आपके ऋत्विज जानते हैं न कशेरु मुनि ही जानते हैं और न मैं ही जानता हूँ, पृथिवी पर एक ही आदमी जानता है। उसके पास तुम संभव है जाओ न जाओ।"

शीघ्रता के साथ राजा ने कहा—"ब्रह्मन्! आप जैसे सर्वज्ञ जिस विषय को नहीं जानते उसे जानने वाला पृथिवी पर दूसरा कौन है। आप मुझे उनका नाम बताइये मैं अवश्य ही उनकी सेवामें जाऊँगा।"

इस पर भगवान् शुनक बोले—"राजन्! इस विषय के ज्ञाता आप के शत्रु खाण्डिक्य राजर्षि हैं। आपने उन्हें पराप्त किया है आप उनके पास जायँगे या नहीं, इसे मैं नहीं जानता।"

राजा ने दृढ़ता के स्वर में कहा—"ब्रह्मन् ! मैं अवश्य उनके पास जाऊँगा युद्धादि तो क्षत्रिय धर्म है, इस समय तो मैं गुरु के भाव से उनके समीप जाऊँगा। यदि वे मुझे अपना शत्रु समझ कर मार डालेंगे तब तो मेरा प्रायश्चित्त स्वतः ही हो जायगा। मैं यज्ञ में दीक्षित हूँ मैं तो शस्त्र उठाऊँगा नहीं। उनके हाथ से मरने से प्रायश्चित हो ही जायगा। यदि उन्होंने धर्म समझकर मेरे पूछने पर यथायोग्य प्रायश्चित्त बता दिया, तो उसे करने से मेरा यज्ञ अविफल समाप्त हो जायगा। मेरे तो दोनों हाथों में लड्डू हैं। भाई खाण्डिक्य के समीप जाने में मेरा कल्याण ही है।

यह सुनकर भगवान् शुनक ने कहा—"राजन् ! आप राजर्षि खाण्डिक्य के समीप जायँ, आपका कल्याण होगा।"

यह सुनकर मुनि के चरणों में प्रणाम करके महाराज केशिध्वज रथ पर चढ़कर खाण्डिक्य के समीप चल दिये। वे यज्ञ में दीक्षित होने के कारण कृष्णमृगके चर्म को ओढ़े हुए थे। हाथ मे मृग का सींग और कुशाओं का मूठा था, वे मूर्तिमान् तप ही प्रतीत होते थे, अस्त्र शस्त्रों का उन्होंने त्याग कर रखा था। उन्हें अपनी ही ओर आते देखकर महाराज खाण्डिक्य को क्रोध आ गया। वे सोचने लगे "मै यहाँ राज्य पाट छोड़कर वन में आ-बसा हूँ यहाँ भी इसने मेरा पीछा नहीं छोड़ा। अच्छी बात है मैं भी इससे युद्ध करूँगा।"यह सोच कर वे धनुष बान तान कर खड़े हो गये।"

खाण्डिक्य को युद्ध के लिये उद्यत देखकर केशिध्वज ने कहा "भाई ! मैं युद्ध करने के लिये तो आया नहीं। क्या तुम मेरे मृग-चर्म में बाण मरोगे ?

इस पर खाण्डिक्य ने कहा— राजन्! आप मेरे शत्रु हैं। शत्रु का वध करना क्षत्रिय का परम धर्म है। आप जो यह तपस्वियों का बनावटी वेष बना कर इस आशा से आये हो, कि मृग चर्म को देखकर में बाण न छोड़ूँगा, सो यह आपका भ्रम है। क्या मृगा की पीठ पर मृग चर्म नहीं होता? क्या मृगया प्रेमी क्षत्रिय उन पर बाण नहीं छोड़ते। शत्रु तो शत्रु ही है, चाहे वह जैसा भी वेष बना कर सम्मुख आवे। में तुम्हे बिना मारे छोड़ूँगा नहीं।

केशिध्वजने कहा—"भाई देखो! में यज्ञ कर रहा था। मेरी यज्ञीय धेनु का वध वन मे एक सिंह ने कर दिया। उसीका प्रायश्चित्त पूछने में आपकी शरण में अस्त्र शस्त्रों से रहित होकर आया हूँ। अब आपकी इच्छा है, चाहें तो मुझे एकान्त समझ कर मार डालें अथवा मेरे प्रश्न का समुचित उत्तर दें।"

इतना सुनते ही खाण्डिक्य ने धनुष से बाण उतार लिया, वे अपने मंत्री पुरोहितों को लेकर एकान्त में भीतर गये, उनसे उन्होंने सम्मति ली कि इस समय मुझे क्या करना चाहिये।

राजा की बात सुनकर मंत्रियों ने कहा—'महाराज ऐसा स्वर्ण अवसरको कभी भी हाथ से न जाने देना चाहिये। जिसके कारण हम राज्य पाट से हीन होकर वन वन मे भटक रहे हैं, वह शत्रु स्वत. ही हमारे अधिकारमे आ गया है, वशमें आयेहुए शत्रु को जीवित छोड देना बुद्धिमनी का काम नहीं। आप इस शत्रु को सुलभता से जीत कर इस सम्पूर्ण पृथिवीका निष्कटक राज्य कर सक्ते हैं।"

यह सुनकर खाण्डिक्य बोले-१"आप लोगों ने सत्य ही कहा शत्रु को वश मे आने पर अवश्य हा मार देना चाहिये। राजा का धर्म राज्यका पालन करना ही है, कितने ही यत्न से राज्य मिले राजाको अपने गये हुए राज्य को लोटा लेना चाहिये। यदि आस पास ही बिना श्रम के राज्य मिलता तो फिर कहना ही क्या बुद्धिमान राजाको ऐसे अवसर को कभी भी हाथ से न जाने देना चाहिये।"

यह सुनकर राजर्षि खाण्डिक्य जनक ने कहा— आप लोगों का कहना सत्य है। आततायी शत्रु का वध कर देना धर्म सगत है। किन्तु इस समय ये मेरे भाई शत्रुता के भाव से तो आये ही नहीं। ये तो जिज्ञासु बनकर आये हैं। इस समय यदि मैं इन्हें मार दूँगा तो मुझे पृथिवीका निष्कटक राज्य तो अवश्य मिल जायगा, किन्तु मेरा पर लोक नष्ट हो जायेगा, इसका पर लोक बन जायगा। यदि मैं राज्य के लोभ को छोडकर इनके प्रश्नों का उत्तर दूँ तो मैं राज्य से भले ही वञ्चित रहूँ, किन्तु मेरा परलोक बन जायगा, इस लोक के तुच्छ सुखों की अपेक्षा परलोक सम्बन्धी सुख सर्व श्रेष्ठ है, मैं पृथिवीके तुच्छ राज्य के पीछे परलोक को बिगाडना नहीं चाहता। इसलिये मैं त द्वेष छोडकर यह जो भी पूछेगा उसका उत्तर दूँगा।" यह कहकर वे लौट कर केशिध्वज के समीप आये और बोले—"कहिये राजन्! आप क्या पूछना चाहते हैं?"

केशिध्वज ने खाण्डिक्य के प्रति आदर प्रदर्शित करते हुए नम्रता के साथ कहा—' भाई! मैं यज्ञ कर रहा था, इसी बीच मे यज्ञीय धर्म धेनु को सिंहने मार डाला इसका प्रायश्चित न मेरे ऋत्विज बता सके, न महर्षि कशेरु बता सके और न महामुनि

शुनक ही बता सके। उन्होंने मुझे आपके समीप भेजा है, आप इसका जो उचित समझें वह प्रायश्चित बतावें। जिससे मेरा यज्ञ साङ्गोपाङ्ग सविधि निर्विघ्न समाप्त हो सके।

यह सुनकर खाण्डिक्यने शास्त्रीय विधिसे इसका प्रायश्चित्त बताया। प्रायश्चित्त जानकर महाराज केशिध्वजको परम प्रसन्नता प्राप्त हुई वे खाण्डिक्यके प्रति आदर प्रकट करके अपने यज्ञमें लौट आये। वहाँ आकर उन्होंने खाण्डिक्यके आदेशानुसार ब्राह्मणोंकी अनुमतिसे प्रायश्चित्त किया फिर विधि विधान पूर्वक यज्ञका सब कृत्य किया। उन्हों-ने दानसे मानसे सभी को सन्तुष्ट किया, ब्राह्मणोंको यथेष्ट दक्षिणा दी। जिसने जो माँगा उसे वही दिया, याज्ञिकों का मनोरथ पूर्ण किया, ऋत्विज अत्यन्त सन्तुष्ट होकर आशीर्वाद देते हुए गये। फिर भी राजाके मनमें पूर्ण शान्ति नहीं हुई, उन्हें ऐसा लगा मानों कोई कृत्य-शेष रह गया। उनके मनको पूर्ण संतोष हुआ नहीं। वे सोचने लगे—"मेरा मन पूर्ण संतुष्ट क्यों नहीं होता, यज्ञको तो मैंने विधिवत् समाप्त किया है। यज्ञमें आये सभी का सत्कार किया है। कौन सी त्रुटि रह गई जिससे मेरा मानस असम्पन्नकी भाँति प्रतीत होता है, सोचते सोचते उन्हें ध्यान आया—" अरे, जिन खाण्डिक्यकी कृपा से मेरा यह यज्ञ साङ्गोपाङ्ग समाप्त हुआ। उन्हें मैंने गुरु दक्षिणा तो दी ही नहीं। गुरु दक्षिणा बिना सभी कृत्य अधूरे रह जाते हैं। मुझे सर्व प्रथम जाकर राजर्षि खाण्डिक्यको यथेष्ट मुंहमाँगी दक्षिणा देकर संतुष्ट करना चाहिए उन्हें संतुष्ट करने पर ही मुझे संतोष होगा।"

सूतजी कहते हैं—" मुनियो ! ऐसा विचार करके महाराज केशिध्वज अपने सुन्दर रथ पर चढ़कर राजर्षि खाण्डिक्यके आश्रमकी ओर चल दिये।

छप्पय

इत केशिध्वज करयो यज्ञ इक अतिसय भारी।
सिंह यज्ञ की धेनु खाइ सब बात बिगारी॥
पूछो प्रायश्चित्त सबनि खाण्डिक्य बतायो।
तिन ढिग भूपति गये वृत्त सब तिनहिं सुनायो॥
करयो पूर्ण मख आइ नृप, प्रायश्चित्त करयो सकल।
सोच्यो गुरु खाण्डिक्य कूँ दई दक्षिणा नहिं विपुल॥

—⊛—

केशिध्वज द्वारा खाण्डिक्य को ज्ञानदान

(७१५)

खाण्डिक्यः कर्मतत्त्वज्ञो भीतः केशिध्वज द्रुतः ।
भानुमांस्तस्य पुत्रोऽभूच्छत द्युम्नस्तु तत्सुतः ॥ःॐः

(श्रीभा० ९ स्क० १३ अ० २१ श्लो०)

छप्पय

दैंन दच्छिणा गये न याच्यो राज कोष धन।
कह्यो दच्छिणा देहु असत् सत् समुझै कस मन॥
हँसि केशिध्वज कह्यो लाभ जग तुम ही पायो।
समुझि विषय विष सरिस न तिन महँ चित्त फँसायो॥
देही देह पृथक् सतत, सुनहु ज्ञान परमार्थयुत।
देही नित्य अनित्य तनु, तत्सम्बन्धी गेह सुत॥

ये सांसारिक भोग अनित्य हैं, नाशवान् हैं, क्षणभगुर हैं, आगमापायी हैं अशाश्वत हैं तथा परिणाममें दुःखदेने वाले हैं। विद्वान पुरुष इनके मोहमें नहीं फँसते। जो इस शरीरको ही सब-कुछ समझे बैठे हैं, वे न्यायसे अन्यायसे उचित उपायोंसे अनुचित उपायोंसे जैसे भी हो तैसे विषयोंके साधनभूत धन आदिको ही

ःॐः श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! खाण्डिक्य कर्मकाण्डके तत्वको जानने वाले थे। वे अपने भाई केशिध्वज से डरकर वनमें भाग गये। केशिध्वज के पुत्र भानुमान् हुए, और भानुमान् के पुत्र शतद्युम्न हुए।

प्राप्त करनेकी चेष्टा करते रहते हैं। उन्हें परमार्थ परमात्मा आदि से कोई प्रयोजन नहीं। पैसा प्राप्त हो, प्रतिष्ठा हो और यह शरीर सुखसे रहे, यही उनकी अभिलाषा रहती है। मैं और मेरा यही उनका मूल मन्त्र है। मैं सुखी रहूँ मेरा वैभव बढ़े यही उनके जीवनका ध्येय है। वे नरपशु आहार, निद्रा मैथुनादिको ही सर्वोत्कृष्ट सुख समझ कर उन्हें ही पानेके लिये प्रयत्नशील बने रहते हैं। वे बार बार जन्मते हैं बार बार मरते हैं। वे आवागमनके चक्रमें छूटते नहीं। इसके विपरीत जो इन नाशवान् पदार्थोंको कुछभी न समझ कर परमार्थ चिंतनमें समय बिताते हैं। वे अमृतत्त्वको प्राप्त करते हैं। जन्म मरणके बन्धनसे सदाके लिये विमुक्त हो जाते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! खाण्डिक्य जनकके आदेशानुसार केशिध्वज जनक अपने यज्ञको विधिवत समाप्त करके, गुरुदक्षिणा देनेके निमित्त पुनः गहन वनमें खाण्डिक्यके समीप गये। अबके पुन केशिध्वजको रथमें आते देखकर खाण्डिक्यको पुन शंका हुई। वे अस्त्र शस्त्र लेकर अपने शत्रुसे पुनः युद्ध करने के लिये उद्यत हुए।

खाण्डिक्यको युद्धके लिये उद्यत देखकर हँसते हुए राजर्षि केशिध्वज बोले—"राजन्! मैं युद्ध करने आपके समीप नहीं आया हूँ। आपकी कृपासे मेरा यज्ञ साङ्गोपाङ्ग सकुशल सविधि समाप्त होगया। अब मैं गुरुदक्षिणा देनेके निमित्त आपके समीप उपस्थित हुआ हूँ। आप मुझसे यथेच्छ दक्षिणा माँगलें।"

यह सुनकर खाण्डिक्य अपने मन्त्रियोंको लेकर एकान्त में गया और उनसे पूछने लगा—"ये महाराज केशिध्वज

जा मेरे भाई हैं, जिन्होंने युद्धमें मुझे पराम्त करके मेरा राज्यपाट छीन लिया है, मुझसे यथेच्छ दक्षिणा माँगनेको कह रहे हैं, इनसे क्या दक्षिणा माँगनी चाहिये।"

मन्त्रियोंने कहा—"महाराज! इसमें भी कुछ पूछनेकी बात है। आप इनसे दक्षिणामें सम्पूर्ण राज्य माँगलें। राज्यके लिये कितने भारी भारी युद्ध होते हैं। असंख्यों वीर मारे जाते हैं। राज्यके लिये उचित अनुचित सभी कार्य किये जाते हैं। अन्यायसे भी क्षत्रियको राज्य मिले तो उसे लेलेना चाहिये, फिर आप को तो घर बैठे बिना आयास प्रयासके बिना युद्धके स्वतः ही राज्य मिल रहा है। ऐसे अवसर पर कोई भी बुद्धिमान राज्यकी अवहेलना न करेगा।"

यह सुनकर राजर्षि खाण्डिक्य हँसे और—बोले—"आपलोग लौकिक अर्थ साधनमें ही निपुण मन्त्री हो। पारलौकिक स्वार्थ साधनमें तुम सर्वथा अनभिज्ञ हो। अरे, मुझजैसा व्यक्ति गुरु दक्षिणामें ऐसी क्षुद्र वस्तुकी याचना कर सकता है। राज्य पाट तो अनित्य है। वहतो प्रारब्धसे आता जाता ही रहता है। क्या मैं पहिले राजा नहीं था। अब यदि मैं राज्य माँग भी लूँ तो कितने दिन सुख भोगूँगा। अन्तमें तो सबको यहीं छोड़कर मर जाऊगा। मैं इन अपने महाज्ञानी भाई से ऐसी वस्तु क्यों न माँगलूँ जिससे सदाके लिये जन्म मरण का चक्कर छुटजाय। संसार का आगमन ही मिट जाय।"

मन्त्रियोंने यह सुनकर सकोचके साथ कहा—"जैसी महाराजकी इच्छा। हमनेतो अपनीबुद्धिके ही अनुसार सम्मति दी है। करने न करनेमें आप सर्वथा समर्थ हैं। यह सुनकर खाण्डिक्य

केशिध्वजके समीप गये, उनका अभिनंदन किया और स्नेहपूर्वक बोले—"क्या आप यथार्थमें मुझे मुँहमाँगी दक्षिणा देना चाहते हैं ?"

केशिध्वजने कहा—"भाई ! मैं तो दक्षिणा देनेके लिये ही यहाँ आया हूँ। आज आप जो भी माँगेंगे वही मैं गुरु निष्क्रय दूँगा।"

यह सुनकर खाण्डिक्य बोले—"अच्छी बात है, यदि आप मुझे गुरुदक्षिणा देना ही चाहते हैं, तो मुझे उस कर्मका उपदेश दें जिससे समस्त क्लेशोंका अत्यन्ताभाव हो जाय। आप अध्यात्म विज्ञानमें पारगत हैं। परमार्थ पथके प्रदर्शक हैं, जिससे सत्पदार्थका बोध हो वही उपदेश मुझे दें।"

यह सुनकर प्रसन्नता प्रकट करते हुए केशिध्वज बोले—"अरे, तुमने यह क्या गुरुदक्षिणा माँगी। जब मैं तुम्हें यथेच्छ वस्तु देने ही आया हूँ, तो तुम समस्त पृथिवीका निष्कन्टक राज्य माँग लेते। क्षत्रियोंके लिये तो राज्य लाभसे बढकर दूसरा कोई लाभ ही नहीं। प्रजापालनसे बढकर कोई पुण्यप्रद कार्य ही नहीं। राज्य मिलने पर आप यथेष्ट दान पुण्य करते। इष्ट मित्र बन्धु बान्धवोंको सुख देते, स्वयं सुखोपभोग करते। यह न माँग कर आपने यह क्या वस्तु माँगली।"

इसपर दृढताके स्वरमें खाण्डिक्यने कहा—'भाई जी। आप मुझे भुलावें नहीं, आप मेरी मुमुक्षुताकी परीक्षा ले रहे हैं। नहीं तो क्या आप जानते नहीं राज्य पाकर प्राणी अहंकारी हो जाता है। यह अहंकार अत्यन्त ही मादक मधु है। इसे पान करके प्राणी जन्म मरणके चक्करमें फँस जाता है। प्रजाका पालन रूप धर्म तो मैं कर ही रहा था। स्वेच्छासे मैंने उसे त्यागा

भी नहीं। आपने युद्धमें मेरा राज्यपाट छीन लिया; अच्छा ही किया। मेरी जो भोगोंमें लिप्सा थी, वह आपने छुड़ा दी। इतने दिन अरण्यमें रह कर क्लेश सहते सहते मैं इन विषयोंकी क्षणभंगुरता समझ गया। मुझे विषयोंसे वैराग्य हो गया। मेरी मोक्षकी इच्छा जाग्रत हो उठी। जिस मोह गर्तसे भगवान्ने बल पूर्वक हाथ पकड़ कर निकाल दिया, उसीमें जाकर फिर पड़ूं, फिर राज्यपाटके बन्धनमें बँधू; फिर जन्म मरणके चक्करमें फँसू यह कहाँकी बुद्धिमत्ता है। अतः राजन्! मुझ जैसा व्यक्ति आप जैसे अध्यात्म विद्या विशारदको पाकर क्षुद्र सांसारिक भोगोंकी याचना किस प्रकार कर सकता है।"

यह सुनकर केशिध्वजने कहा—"यथार्थमें तुम अध्यात्म-ज्ञानके अधिकारी हो गये हो। मैं भी जो कुछ करता हूँ मृत्युसे तरनेकी कामनासे ही करता हूँ। यज्ञ यागादि करके पापोंका क्षय करता हूँ और भोगोंको भोग कर पुण्योंका क्षय करता हूँ। जब पुण्य पाप दोनोंसे छूट जाता है, तभी जीव मुक्त हो जाता है। अविद्या ही संसृतिका हेतु है।"

खाण्डिक्यने पूछा—"अविद्या क्या है?"

केशिध्वजने कहा—"असत्में सत् बुद्धि तथा अनात्म्यमें आत्म बुद्धि होना यही अविद्याका स्वरूप है। यह देह पंचभूतों से बना हुआ अनित्य तथा नाशवान् है। अविनाशी तथा नित्य-रूप देही भ्रम वश अज्ञाके कारण, मायाके अधीन होकर इसे मान बैठा है। अज्ञानी इस देहको ही आत्मा मानते हैं। इसलिये जो भी कर्म प्राणी करता है, देहके सुखके लिये करता है। आत्मा तो सुख स्वरूप ही है; उसे भौतिक पदर्थोंसे सुखकी अपेक्षा ही नहीं। यह देह ही पंच भूतोंसे निर्मित है अतः पञ्च भौतिक विषयोंके सुखोंको चाहता है।"

खाण्डिक्यने कहा—"जब देह पचभूतोंसे ही निर्मित है, त
उसे पचभूत क्या सुख देंगे।"

इसपर केशिध्वजने कहा—"सुख तो क्या देंगे, यह ए
प्रकारका भ्रम है। जैसे घर मिट्टीसे ही बनाया जाता है, फि
मिट्टी पानी लगाकर ही उसे लीपते पोतते है, स्वच्छ करते हैं,
उसी प्रकार यह देह पृथिवीसे बना है, यह पार्थिव पदार्थ-अन्न
दूध, घृत, चीनी आदि-से पुष्ट होता है। अन्न जलसे ही इसक
स्थिति है। जैसे घरसे घरका स्वामी पृथक् होता है, वैसे ह
देहसे देही पृथक् होता है। घरवाल घरको बेचकर दूसरे घर
चला जाता है। घर बदलने पर घरका स्वामी नहीं बदलता
इसी प्रकार देहके नाश होने पर देहीका नाश नहीं हुआ करता
पचभूतोंका बना देह, पचभूतोंसे ही बढता है, पुष्ट होता है, फि
इसमें अहकार करनेकी कौनसी बात है, कि मैं मोटा हूँ, मैं सुंद
हूँ, मैं धनी हूँ, मैं मानी हूँ, मैं जगत् पूज्य हूँ। आत्मदृष्टिसे देख
जाय तो आत्मा सर्वश्रेष्ठ है ही। देहदृष्टिसे देखा जाय तो चा
मोटा देह हो या पतला, सुरूप हो या कुरूप, गोरा हो या काल
छोटा हो या बडा, सब प्रकारसे नाशवान् है, अशाश्वत है
फिर इसमें मोह करना व्यर्थ है।"

खाण्डिक्यने कहा—"जब देही देहसे पृथक् है तो फिर प्राण
धन, जन पुत्रपरिवार तथा देहमें इतना आसक्त क्यों होगया है।"

केशिध्वजने कहा—"अनेक जन्मोंके सस्कारोंसे निरन्त
कर्मवासनाओंके बन्धनमें फँसा जीव संसारमें भटकता रहता है
पुनः पुनः जन्म लेता है, पुनः पुनः मरता है, उसका तो न जन्म
है न मरण। देहके उपचारसे ही उसमें जन्म मरणकी कल्पन
की जाती है। वासनाके मैलसे अन्तःकरण रूप वस्त्र मैला होगय

है। अपने यथार्थ स्वरूपसे च्युत सा दिखाई देता है। जैसे नीहार के छा जानेसे सूर्य ढका सा प्रतीत होता है। यह अन्त करण रूप मैला वस्त्र ज्ञान रूप उष्ण वारिसे अन्य साधन सामग्रीके द्वारा युक्तिपूर्वक धोया जाता है, तो शुद्ध निर्मल बन जाता है। इसी प्रकार आत्मा तो नित्य शुद्ध बुद्ध निर्मल और निरामय है ही। प्रकृतिके ससर्गसे यह अपनेको सुखी दु खी मानने लगता है।

खाण्डिक्यने पूछा—"तो यह बताइये दु.ख अज्ञान, अथवा भ्रम आदि किसमें होते हैं, प्रकृतिमें या आत्मामें ?"

केशिध्वजने शीघ्रताके साथ कहा—"आत्मामें तो दु ख अज्ञान भ्रम आदि सभव ही नहीं। ये सब तो प्रकृतिके धर्म हैं। आत्मा तो इनसे सर्वथा निर्लिप्त है।"

इसपर खाण्डिक्यने पूछा—"इन क्लेशकर्मोंका नाश किस साधनके द्वारा हो, कृपया इसे भी बताइये।"

केशिध्वजने कहा—"क्लेशोंके नाशका एक मात्र साधन योग है। योगके बिना चित्तकी बिखरी हुई वृत्तियोंका निरोध होता नहीं। बिना चित्तवृत्ति-निरोधके स्व स्वरूपमें अवस्थिति होती नहीं।"

यह सुनकर खाण्डिक्यने कहा—"महाभाग ! उस योगका स्वरूप आप मुझसे बताइये।"

इसपर केशिध्वजने कहा—"मनको वशमें करने का ही नाम योग है। साधारणतया प्राणी मनके वशमें हो कर काम करता है। मनके हारे हार है मनके जीते जीत। बध और मोक्षका कारण मन ही है। विषयासक्त हुआ मन बन्धनका हेतु होता है, वही निर्विषय मन मुक्तिका कारण है। अशुद्ध मन ही जीवको चौरासीके चक्करमें घुमाता है। वही विशुद्ध बनकर ब्रह्मके साथ

सयोग कराता है। उसी संयोगका नाम योग है। जो उस योगका साधन करता है, मुक्तिके लिये यत्न करता है, वही मुमुक्षु योगी कहाता है। योगी दो प्रकारके होते हैं। एक योगयुक्त दूसरा युञ्जमान् जिसकी समाधि सिद्ध होगई है वह तो योगयुक्त कहलाता है। जो योगके लिये यत्न कर रहा है और योगमें अन्तराय आनेसे सिद्धि लाभ नहीं कर सका है, वह युञ्जमान् कहलाता है। योगयुक्त योगी तो तत्क्षण मुक्त हो जाता है, किन्तु जिसके योगमें अन्तराय हो गये हैं, वह जन्मान्तरमें मुक्ति का भागी होता है। योगीके लिये सर्व प्रथम यम नियमोंका पालन करना आवश्यक है।"

खाण्डिक्यने पूछा—"यम नियम कितने हैं ?"

केशिध्वज बोले—"यम और नियम पाँच पाँच हैं ? अहिंसा सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, ये पाँच यम हैं। शौच, सन्तोष तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान, ये पाँच नियम हैं। इन यम नियमोंका पालन विशिष्ट कामनाओंसे किया जाय, तो उन उन कामनाओंको पूर्ण करते हैं। यदि निष्काम भावसे पालन किया जाय तो ये ही मुक्ति देनेवाले हो जाते हैं। इनमेंसे एक का भी निष्काम भावसे पालन करके मनुष्य मुक्त हो सकता है। यम नियमके पश्चात् आसन हैं ?"

खाण्डिक्यने पूछा—"आसन कितने प्रकारके हैं ?"

इसपर केशिध्वज बोले—'भैया ! आसन तो असंख्य हैं, जिसमें स्थिरता हो घुटने दोनों भूमिमें सट जायँ, मेरुदण्ड ठीक सीधा हो जाय बैठनेमें सुख हो वही बैठनेके आसन हैं। योग-शास्त्रमें ८४ आसन प्रसिद्ध हैं इनके अतिरिक्त भी बहुतसे आसन हैं, इनमें सिद्धासन पद्मासन और स्वस्तिकासन ये मुख्य

हैं। इनमेंसे किसी आसनका अभ्यास करके उसीसे बैठकर प्राणायाम करना चाहिये।"

खाण्डिक्यने पूछा—"प्राणायाम क्या ?"

केशिध्वज बोले—"प्राणोंके संयमका नाम प्राणायाम है। प्राण तो सदैव ही श्वाशोच्छ्वासरूप में सदा आते जाते रहते हैं। इन्हींको अभ्याससे नियमन करना प्राणायाम कहाता है। वह पूरक, कुम्भक और रेचक तीन प्रकारका होता है। प्राणायामके अनन्तर प्रत्याहार करना चाहिये।"

खाण्डिक्यने पूछा—"भाईजी! प्रत्याहार किसे कहते हैं ?"

केशिध्वज बोले—"भागती हुई चित्तकी वृत्तियोंको पुन पुन समेटकर खींचकर भीतरकी ही ओर लाना—वृत्तियोंको वाह्य न होने देना—यही प्रत्याहार है। चित्तको शुभाश्रयमें स्थित करना ही प्रत्याहारका प्रयोजन है।"

खाण्डिक्यने पूछा—"भाई जी! चित्तका शुभाश्रय क्या है ?"

केशिध्वज बोले—"चित्तके दो प्रकारके शुभाश्रय हैं। एक मूर्त दूसरा अमूर्त। अमूर्त भावना तो निराकार ब्रह्मकी की जाती है और मूर्त भावना इस सम्पूर्ण विश्वको भगवान्का रूप मानकर करते हैं। जितना भी यह चराचर विश्व है, पृथिवी, जल तेज, वायु मरुत्, समुद्र, आकाश, भूगोल, खगोल सब उन्हीं श्रीहरि का रूप है। सबकी उनके अंगोंमें भावना करनी चाहिये। भगवान्का जैसा रूप रुचिकर हो शास्त्रोंमें जैसा उनका वर्णन किया गया है, उसमें चित्तको स्थिर करना चाहिये। अन्त करणमें भगवान्की स्थिति होते ही समस्त पापोंका नाश हो जाता है। समस्त अशुभ भस्मसात हो जाते हैं। समस्त शक्तिको स्थिर

करनेका आधार चित्त ही है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम प्रत्याहार ये पाँच ब ह्य साधन हैं। धारणा, ध्यान और समाधि ये तीन अतरङ्ग साधन हैं। चित्तमें जब भगवान्‌की भलीभाँति संस्थिति हो जाती है। चित्त उनके स्वरूपको धारण कर लेता है। उसे 'धारणा' कहते हैं। धारणाकी सिद्धिको ही ध्यान कहते हैं। भगवान्‌के सुदर स्वरूपका नखसे शिख तक ध्यान करना चाहिए। पहिले एक एक अगका ध्यान करे। ललाट, नेत्र, नासिका, मुखारविन्द, हृदय, बाहु, वृक्ष स्थल, नाभि, कटि, ऊरु, जानु, टखना, पाद, प्रपाद, पादतल इस प्रकार प्रत्येक अग पर बहुत देर तक ध्यान करे। जब सब अगोंमें ध्यान लग जाय, तब भगवान्‌के समस्त अगोंका एक साथ ही ध्यान करे। ध्यानकी परिपक्वावस्थाका ही नाम समाधि है। वह समाधि भी सबीज निर्बीज रूपसे दो प्रकार की है समाधि प्राप्त होने पर अशेष मल क्लेश नाश हो जाते हैं। प्राणी परमानन्दमें निमग्न हो जाता है। मुक्ति करतलमें स्थित हो जाती है। जीवकी स्व स्वरूपमें अवस्थिति हो जाती है। यही अतिम निष्ठा है, यही परागति है। समाधि सिद्धि मुनि कृतकृत्य हो जाता है। समाधिमें स्थित योगीके समस्त संशय नाश हो जाते हे। हृदयकी ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं। उसके शुभाशुभ सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं। यह मैंने अत्यन्त सक्षेपमें आत्मज्ञानके साधनभूत योगका उपदेश किया। तुम इसका अभ्यास करोगे, तो तुम्हें स्वय ही सब विषय ज्ञात होने लगजायँगे।"

यह सुनकर खाण्डिक्यने केशिध्वजके प्रति कृतज्ञता प्रकट की और अत्यन्त ही सत्कारपूर्वक बोले—"भाईजी! आपने मेरे समस्त संशयोंका छेदन कर दिया। आपने मुझे अभूत पूर्व अमूल्य

दक्षिणा देदी। मैं सन्तुष्ट हूँ। आपने मुझे अध्यात्म्य उपदेश देकर कृतार्थ कर दिया।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! केशिध्वजसे उपदेश पाकर खाण्डिक्य कृतार्थ हो गये। उन्होंने केशध्वजकी पूजा की। केशिध्वजने खाण्डिक्यका समस्त राज्य लौटा दिया। खाण्डिक्य भी अपने राज्य पर अपने पुत्रको बिठाकर योग साधन करने के निमित्त वनमें चले गये।

केशिध्वज भी समस्त कर्मोंको निष्काम भावसे करते हुए अतमें परम पदको प्राप्त हुए। केशिध्वजके पश्चात् उनके पुत्र भानुमान् राजा हुए।"

छप्पय

यों दीयो बहु ज्ञान भये कृतकृत्य जनक जब।
कीयो बहु सतकार गये केशिध्वज गृह तब॥
करन योग खाण्डिक्य गये वन भूपति करि सुत।
केशिध्वजहू क्लेश कर्म तजि भये योग युत॥
जग महँ जीवन मुक्त नृप, केशिध्वज हू ह्वै गये।
तिनके पीछे तनय तिनि, भानुमान् भूपति भये॥

—:ॐ:—

जनक-वंशीय शेष राजा

(७१६)

एते वै मैथिला राजन्नात्मविद्या विशारदाः।
योगेश्वरप्रसादेन द्वन्द्वैर्मुक्ता गृहेष्वपि ॥ *

(श्री भा० ६ स्क० १३ अ० २७ श्लो०)

छप्पय

पीढ़ी सत्ताईस माँहि आतम मैथिल इति ।
भये जनककुल माँहि परम ज्ञानी सब भूपति ॥
ऋषि मुनि नित प्रति आइ करहिँ सत्संग सदाहीँ ।
या कुल कोई कृपण अज्ञ नृप प्रकट्यो नाहीँ ॥
शुक सम ज्ञानी जनक ढिँग, परमारथ सीखन निमित ।
आये तिनिके शुभ चरित, करहिँ सतत संसार हित ॥

व्यक्ति की पूजा उसके गुणों से होती है। रूप, धन, ऐश्वर्य, कुल आदि से क्षणिक प्रतिष्ठा भले ही हो जाय, किन्तु आदर भाव गुणों के ही द्वारा होता है। अपने पास कोई किसी वस्तु की याचना के निमित्त आवे, उसकी इच्छा पूर्ण करना सबसे बड़ा शुभ कार्य है, किन्तु संसारिक इच्छा पूर्ति से भी बढ़कर सर्वश्रेष्ठ कार्य है अभय दान। यह प्राणी मृत्यु के भय से भयभीत हुआ

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! मैंने जो इतने मैथिल राजाओं का वर्णन किया है, ये सब के सब आत्मविद्याम विशारद थे। योगेश्वरों की कृपा से ये सब घर में रहते हुए भी सभी प्रकार के द्वन्द्वों से निर्मुक्त थे।"

इधर उधर भटकता रहता है। मृत्यु का भय अज्ञान से होता है, जो इस अज्ञान को मेट कर ज्ञान दान देता है, वही सच्चा दानी है। जिस कुल में, जिस वंश में ऐसे ज्ञानी हो गये हैं, वह कुल धन्य है, वह वंश सर्वश्रेष्ठ है। उस वंश में उत्पन्न होने वाले सभी पुरुष पूजनीय हैं, आदरणीय हैं और श्लाघनीय हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! मैं जनकवंशीय राजाओं के वंश का वर्णन कर रहा था, प्रसङ्ग वश महाराज केशिध्वज और खाण्डिक्य का संक्षिप्त आध्यात्मिक सम्वाद मैंने सुनाया; अब आप महाराज केशिध्वज के पुत्र भानुमान से आगे के राजाओं का वर्णन सुनें। केशिध्वज तनय भानुमान् के पुत्र शतद्युम्न हुए। उनके शुचि, शुचि के सनद्वाज और सनद्वाज के सुत ऊर्ध्वकेतु हुए। ऊर्ध्वकेतु के अज, अज के पुरुजित, उनके अरिष्टनेमि, अरिष्टनेमि के श्रुतायु, श्रुतायु के सुपार्श्वक, सुपार्श्वक के चित्ररथ, उन के क्षेमधि, क्षेमधि के समरथ, सनरथ के सत्यरथ, उनके उपगुरु और उपगुरु के उपगुप्त पुत्र हुए जो अग्नि के अंश माने जाते हैं। उपगुप्त के वस्वनन्त और वस्वनन्त के युयुध हुए। युयुध के सुभापण सुभापण के श्रुत, श्रुत के जय और जय के विजय पुत्र हुए। विजय के ऋत और ऋत के शुनक हुए। शुनक के सुत वीतहव्य और वीतहव्य के धृति, धृति के बहुलाश्व और बहुलाश्व के कृति नामक महाबली पुत्र हुए। महाराज कृति ही जनक वंश के अंतिम राजा हुए। कृति से आगे जनक वंश समाप्त हो गया।

ये सबके सब राजा जनक कहलाते थे। उपनिषदोंमें याज्ञवल्क्य और जनक सम्वाद बहुत प्रसिद्ध है। जहाँ भी अध्यात्म्य संवादकी चर्चा है, वहाँ जनक और दूसरे ज्ञानी मुमुक्षुओंका ही संवाद है। जनक शब्द ही ज्ञानीके लिये व्यव-

हृत होने लगा है । किसी की प्रशन्सा करते हुए या व्यंग करते हुए लोग कहते हैं—"वे तो जनक ही हो गये हैं । राजर्षि जनकके संबंधकी इतिहास पुराणोंमें बहुत सी कथायें हैं, उनका निर्णय नहीं किया जा सकता, ये किस जनककी कथायें हैं । वृहदारण्यक उपनिषद्के तृतीय अध्यायके प्रथम ब्राह्मण भागमे एक बड़ी ही ज्ञान पूर्ण कथा है । वह इस प्रकार हैं ।

एक बार महाराज जनकने एक बड़ा भारी विपुल दक्षिणा-वाला यज्ञ किया। उस यज्ञमें दूर दूरसे बहुतसे विद्वान् ब्राह्मण एकत्रित हुए । कुरु पाञ्चाल देश के भी बहुतसे नामी नामी शास्त्र पारङ्गत ब्राह्मण आये। उन सब को महाराजने दान तथा मानसे संतुष्ट किया। अब राजाको यह जिज्ञासा हुई, कि इन समस्त ब्राह्मणोंमें से पूर्ण ब्रह्मज्ञानी कौन सा ब्राह्मण हैं । ऐसे वे किस प्रकार कहें, कि आप सबमें श्रेष्ठ कौन है । फिर सभी तो अपने को श्रेष्ठ समझते हैं । इस बातकी परीक्षा करनी चाहिये ।"

यह सोचकर राजाने अत्यन्त ही सुन्दर एक सहस्र गौएँ मँगवाईं । वे सबकी सब तरुणी थीं । सब दूध देनेवाली थीं । सभी पुष्ट थीं । सभीके सींग सुवर्णसे मढे हुए थे। सभी स्वस्थ और सीधी थीं। उन गौओंको खड़ी करके राजा ने कहा—"ब्राह्मणों! आप सबमें जो ब्रह्मनिष्ठ हो, वह इन समस्त गौओंको ले जाय ।"

इतना सुनते ही समस्त ब्राह्मण एक दूसरेका मुख ताकने लगे किसीका भी साहस न हुआ, कि उन गौओंके समीप जाय। सबको संभ्रम तथा असमञ्जसमें पड़े देखकर महा-मुनि याज्ञवल्क्यने अपने एक शिष्य ब्रह्मचारीसे कहा—"वत्स! इन सब गौओंको अपने आश्रमकी ओर हाँक ले चलो।"

शिष्य सामश्रवाने अपने सद्गुरुकी आज्ञाका पालन किया। वह समस्त गौओंको हाँकर ले चला। याज्ञवल्क्यके द्वारा गौओंको ले जाते देखकर वहाँ आये हुए समस्त ब्राह्मण परम कुपित हुए। इसमें उन्होंने अपना बड़ा भारी अपमान समझा। उनमेंसे महाराज जनकके होता अश्वलने कहा—"याज्ञवल्क्य! क्या हम सबमें एक मात्र तुम ही ब्रह्मज्ञानी हो?"

याज्ञवल्क्य मुनिने कहा—"विप्रवर! ब्रह्मनिष्ठ को तो हम प्रणाम करते हैं। हम तो गौओं को ही ले जाने वाले हैं। इस पर उस सभा में जितने भी विद्वान् बैठे थे, उन सबने भगवान् याज्ञवल्क्य से प्रश्नों की झड़ी लगादी, पहिले अश्वल ने ही प्रश्न किया। उन सब का याज्ञवाल्क्य मुनि ने यथाचित उत्तर दिया। तदनंतर जरत्काम आर्तभाग ने प्रश्न किये। फिर क्रमशः लाह्यायनि भुज्यु मुनिने, चाक्रायणउषस्त मुनिने, कौषीतकेय कहोलने वचक्रु की पुत्री ब्रह्मवादिनी गार्गी ने, अरुणि उद्दालक ने तथा शाकल्यविदग्ध ने उनसे प्रश्न पूछे। उन सब प्रश्नों का उत्तर भगवान् याज्ञवल्क्य ने बड़ी ही बुद्धिमत्ता के साथ दिया। महाराज जनक के भी याज्ञवल्क्य से प्रश्नोत्तर हुए। महाराज इनकी ब्रह्मनिष्ठा तथा अध्यात्म्य ज्ञान को देखकर परम प्रसन्न हुए। उन्होंने याज्ञवल्क्य को आत्म समर्पण कर दिया। अपना धन, जन, राज्य तथा सर्वस्व मुनि के चरणों में अर्पित कर दिया। तब से याज्ञवल्क्य जी इस कुल के ज्ञान दाता गुरु हुए।

जिस प्रकार इक्ष्वाकु वंश के कुल गुरु भगवान् वशिष्ठ थे, उसी प्रकार जनक वंश के कुल गुरु गौतम थे। गौतम मुनि के पश्चात् उनके पुत्र शतानंद जनक वंश के सब धार्मिक कृत्य कराते थे। जनकवंशीय राजाओं में एक से एक बढ़कर ज्ञानी और योगी हुए हैं। ये सब के सब निरभिमानी और आत्मविद्या में निपुण होते थे। इनके यहाँ सदा अध्यात्म चर्चा होती थी, उपनिषदों में

कथा है कि किसी राजा के पास जाकर किसी मुनिने धन माँगा, तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने कहा—"ब्रह्मन् आपने मुझ से माँग कर बड़ी कृपा की, मुझे भी आपने गौरव दिया। नहीं तो संसार में जनक बड़े दानी हैं, जनक बड़े ज्ञानी हैं, यही सर्वत्र प्रसिद्ध है।" इससे पता चलता है कि अन्य राजा इनके दान की प्रशंसा सुनकर डाह करते थे।

इनके अतिरिक्त बहुत सी ऐसी कथायें प्रचलित हैं, जिनमें यह सिद्ध किया गया है कि जनक घर में रहते हुए भी कैसे निस्पृह रहते थे। उन कहानियों में से कुछ का उल्लेख हम यहाँ करते हैं

(१)

एक बार किसी मुनि ने जनक से पूछा—"आप राज्य पाट करते हुए भी विदेह कैसे कहलाते हैं। राज्य के प्रबन्ध में तो बड़ी चिन्तायें रहती हैं। किसी को दण्ड देना पड़ता है। निग्रह करने में द्वेष भाव हो ही जाता है। इतने सब से विमुक्त कैसे बने रहते हैं?"

महाराज जनक ने कहा—"ब्रह्मन्! आप कुछ काल यहाँ निवास करें, तब मैं इसका उत्तर दूँगा।"

मुनि रहने लगे। राजा ने एकबार कहा—"ब्रह्मन्! क्या आप दुग्ध के भरे कटोरे को लेकर सम्पूर्ण बाजार में घूम सकते हैं?"

मुनि ने कहा—"इस में कौन सी चतुरता है। कोई भी घूम सकता है?"

राजाने कहा—"इसमें यही सावधानी रखनी होगी कि एक बूँद भी दूध न गिरने पावे।"

मुनि ने कहा—"न गिरेगा।"

राजा ने कहा—"यदि गिर जाय तो?"

मुनि ने दृढता के स्वर में कहा—"गिर जाय, तो आप, जो उचित समझें दण्ड दें।"

राजा ने कहा—'अच्छी बात है आप कटोरे को लेकर चलें, चार सिपाही खड्ग लेकर आपके पीछे चलेंगे। जहाँ भी एक बूँ-द दूध गिर जायगा, वहीं आपका सिर धड से पृथक् कर दिया जायगा।"

मुनि ने स्वीकार किया। एक कटोरा दुग्ध से लबालब भर दि-या गया। वह कटोरा इतना भर गया, कि इसमें कुछ भी भरने को स्थान न रहा। तनिक सी ठेस लगते ही वह छलक पडे। उसे बड़ी युक्ति से मुनि के हाथ पर रख दिया गया, चार सिपाही आगे चार पीछे नगी तलवार लिये चले। मुनि ने अपना समस्त ध्यान उस कटोरे मे जमा लिया, पैर इतनी बुद्धिमानी से उठाते थे, कि कोई भी अग हिलने नहीं पाता था। वे निरतर इस बात का ध्यान रखते थे कि कटोरा हिलने न पावे। इस प्रकार शनै शनै वे सम्पूर्ण राजपथ पर घुमाये गये। एक भी बूँद दूध न गिरा। जब वे लौट कर आये तो राजा ने पूछा—"ब्रह्मन्! मेरी नगरी का बाजार कैसा है? आपतो सर्वत्र घूम आये हैं। इन बाजारों में से सर्वश्रेष्ठ कोन सा हाट आप को अच्छा लगा।"

रहता था, कि इसमें से एक भी बूँद दूध न गिरने पावे। यदि तनिक भी मेरी दृष्टि इधर उधर होती, तो तुरत दूध छलक जाता, अतः बाजार में होकर जाने पर भी मैं उसके रसका आस्वादन न कर सका, उसके सौन्दर्य को न निहार सका।"

इसपर राजा बोले—"ब्रह्मन्! इसी प्रकार मैं भी राज्य-का उपभोग करते हुए उन विषयों में आसक्त नहीं होता। व्यवहार में शरीर के फँसे रहने पर भी मन सदा परमार्थ में लगा रहता है। मैं सदा इस बात का ध्यान रखता हूँ, कि मेरा मन विषयों में न फसे।" यह सुनकर मुनि प्रसन्न हुए और राजा के प्रति कृतज्ञता प्रकट करके इच्छानुसार अन्यत्र चले गये। इसी प्रकार की एक और भी कथा है।

(२)

किसी मुनि ने आकर जनक जी से पूछा—"राजन्! इन संसारी विषयों में तो बडा आकर्षण है। इनके स्मरण से ही मन पागल हो जाता है। फिर आप के यहाँ तो एक से एक सुदरी रानियाँ हैं। उनका एकान्त में आप सग भी करते हैं, फिर भी उन मे आप आसक्त क्यों नहीं होते?"

राजा ने कहा—"ब्रह्मन्! आप भोजन करलें, तब प्रश्नोत्तर होंगे?"

मुनि ने यह बात स्वीकार की। आज राजा ने अपने पाचकों से कहकर बडे सुदर सुदर पदार्थ बनवाये। ५६ प्रकार के भोग तैयार कराये। सुवर्ण के थालों में उन्हें सजाया गया। मुनि के लिये सुदर आसन विछाया गया। मुनि उस आसन पर बैठ गये, परसे हुए थाल लाये गये उन्होंने ऊपर देखा, सिर के ऊपर कच्चे धागे में एक तलवार लटक रही है। मुनि को मन ही मन बडा भय लगा, किन्तु सकोच वश कुछ बोले नहीं। शीघ्रतासे भोज-

न करने लगे। उनका ध्यान तो तलवार की ओर लगा था। राजा बार बार आग्रह कर रहे थे। "महाराज ! यह वस्तु लें, वह लें, मुनि हाँ हूँ कर देते, जैसे तैसे वे भोजन करके उठ पड़े। राजाने स्वयं हाथ धुलाये और पूछा—"ब्रह्मन् ! अमुक साक कैसा बना था, खीर में मीठा कम तो नहीं था ?"

मुनि ने कहा—"राजन् ! सत्य बात तो यह है, कि मुझे तो पता ही न चला, मैंने क्या खाया है ?"

राजाने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—"महाराज ! षड्रस युक्त सुंदर सुंदर व्यंजन थे, उनका आपके जिह्वाके साथ संसर्ग भी हुआ, फिर भी आपको उनके स्वाद का भान नहीं हुआ, यह कैसी बात है"

मुनिने कहा—"भान तो तब होता जब मेरा मन उन स्वादिष्ट पदार्थों में आसक्त होता। मेरा मन तो, ऊपर लटकती हुई तलवार में फँसा था, इसलिये खाता तो गया, किन्तु उनके स्वाद का पता नहीं चला"

राजाने कहा—"ब्रह्मन् ! यही दशा मेरी है। मेरा मन तो सदा परब्रह्म में फँसा रहता है। ऊपर से इन संसारिक विषयों का उपभोग करता हूँ। इसीलिए मैं इनसे सर्वथा निस्संग बना रहता हूँ, मेरी इनमें आसक्ति नहीं। इन्द्रियाँ इन्द्रियों में वर्त रही हैं।" यह सुनकर मुनि प्रसन्न होकर चले गये। ऐसी ही एक दूसरी कथा है

(३)

कोई ऋषि थे, वे अपने शिष्य को समझा रहे थे, कि मन ही बन्धन और मोक्ष का कारण है. यदि मन विषयों में फँसा है, तो चाहें कितने भी घोर वन में चले जाओ, वहाँ भी बन्धन है और यदि मन विशुद्ध है, तो विषयों के बीच में रहते हुए भी कोई बन्धन नहीं, राजा जनक राज्य पाट करते हुए भी विदेह हैं।"

शिष्य ने पूछा—"गुरुदेव ! इन विदेह राजा की सभी प्रशंसा करते हैं इनमें ऐसी क्या विशेषता है ? क्यों बड़े बड़े ज्ञानी पुरुष विदेह का ही दृष्टान्त देते हैं ?"

गुरु ने कहा—"उनमें यही विशेषता है, कि उनका मन विषयों में रहते हुए भी उनमें लिप्त नहीं होता। तुम जाकर इस विषय को उनसे ही पूछो, चलो मैं भी चलता हूँ।"

यह कह कर गुरु शिष्य को संग लेकर मिथिलापुरी में गये। उस समय राजा अन्त पुर में थे। योग दृष्टि से उन्हें गुरु शिष्य के आगमन का पता लग गया था। वे एकान्त में अपनी पटरानी के सहित शैया पर शयन कर रहे थे। गुरु बाहर ही खड़े रहे। शिष्य को अंत पुर में भेजा, वहाँ एक से एक सुन्दरी स्त्रियाँ इधर से उधर छम्म छम्म करती हुई घूम रही थीं। शिष्य को बड़ा संकोच हुआ। उन्हें भय भी लगा मेरा मन चंचल न होजाय, अत उन्होंने सिर नीचा किये ही किये राजा का पता पूछा—"सुन्दरी स्त्रियों ने बड़े आदर से कहा—"ब्रह्मन ! महाराज अन्त पुर में हैं, आपके लिये तो कोई रोक टोक है ही नहीं आप भीतर चले जायँ। शिष्य यह सुनकर भीतर गये। राजा को रानी के साथ शैयापर देखकर शिष्य के मन में बड़ी घृणा हुई। राजा का एक हाथ पलंग के नीचे लटक रहा था, एक महारानी के वक्ष स्थल पर रखा हुआ था। शिष्य तुरंत ही लौट आया और आकर गुरु से बोला—'भगवन् ! आपने कैसे विषयी के समीप मुझे भेजा ? वह तो सर्वथा विषयासक्त ही नहीं निर्लज्ज भी है। मुझे देखकर उठा भी नहीं। वह भला मुझे क्या उपदेश देगा।"

गुरु ने कहा—"अच्छी बात है मेरे साथ चलो।" यह कहकर गुरु शिष्य को लेकर पुन अन्त पुर में गये। राजा का जो हाथ पलंग से नीचे लटक रहा था, उसके ऊपर उन्होंने एक जलता

हुआ अंगार रख दिया। राजा के मुख मंडल पर उस अंगार से कोई भी विकार नहीं हुआ, जैसे महारानी के वक्षःस्थल पर हाथ रखे थे वैसे ही हाथ पर अग्निको रखे रहे। तब गुरुने कहा— "जनक को यही विशेषता है। इनके लिये कामिनीका कमनीय अंग तथा अंगार इसमें कोई अन्तर नहीं। सर्प और हारमें मिट्टी और सुवर्णमें इन्हें कुछ भी भेद नहीं। इनका मन सदा परब्रह्ममें लीन रहता है। शरीरसे अनासक्त होकर ये सब कार्य करते हैं।" गुरुकी ऐसी बात सुनकर शिष्यका भ्रम दूर हुआ। उन दोनों ने महाराज जनकका अभिनन्दन किया। जनकने भी उनका सत्कार किया। ऐसी ही एक और कथा है।

(४)

किसी मुनिने आकर कहा—"विषय समीप रहने से उनमें ममत्व हो ही जाता है। विषयोंके त्यागसे ममत्व छूट जाता है। अतः आप इन विषयों को छोड़कर वनमें वास क्यों नहीं करते। राज्यकी इन वस्तुओं में आपको कुछ न कुछ आसक्ति तो होगी ही।"

राजाने कहा—"ब्रह्मन्! आप कुछ दिन मेरे यहाँ निवास करें, तब आपको स्वतः ही पता चल जायगा।" राजा की बात मानकर मुनि राजाके समीप ही रहने लगे। मुनिके पास बहुत संग्रह तो था नहीं। चार लँगोटी, दंड, कमंडल, कंथा, मृगचर्म और एक दो पुस्तकें इतनी ही वस्तुएँ थी। समीपके एक भवनमें ये सब वस्तुएँ रखी थीं। उन सब वस्तुओं को रखकर वे सभामें जाते, वहाँ भाँति २ की ज्ञान चर्चा सुनते। बहुत से व्याख्या करने वाले सूत्रोंकी व्याख्या करते, निरन्तर आध्यात्मिक चर्चा होती रहती। एक दिन राजाने अपने योग प्रभावसे महलमें आग लगा दी। धू धू करके महल जलने लगा। सब इधर-उधर हाय हाय करके भागने दौड़ने लगे। सर्वत्र कोलाहल

मच गया। वे मुनि भी वहीं बैठे थे, उन्होंने देखा जिस भवनमें मैं ठहरा हूँ, आग तो उसके समीपके ही भवनमें लग रही है। तुरन्त उन्हें ध्यान हुआ—"कहीं मेरे दण्ड कमण्डल तथा लँगोटी कंथा आदि न जल जायँ।" वे दौड़े गये और उन वस्तुओं को निकालकर बाहर लाये। इतने में ही आग बुझ गई।

हँसते हुए राजा मुनिके समीप आये और बोले—"ब्रह्मन्! सभी लोग आवश्यक वस्तुओंका संग्रह करते हैं। राजा को हाथी घोड़ा, रथ, सैनिक, धन आदि की आवश्यकता है, इसलिए वह इनका संग्रह करता है और साधुको दंड, कमंडल, कोपीन कंथा तथा मृगचर्ममें आसक्ति है। आसक्ति तो दोनों की बराबर ही है संग्रही दोनों ही हैं, यदि संग्रह करके भी उसमें आसक्ति न हो तो चाहे वनमें रहें या घरमें दोनों ही उसके लिए समान हैं। यद्यपि मैं राज्य करता हूँ, फिर भी चाहें सम्पूर्ण मिथिला-पुरी जल जाय, मुझे इसकी तनिक भी चिंता न होगी, देखिये मेरे सामने मेरे महल जलते रहे, मैं तो चुपचाप बैठा रहा, किन्तु आप तो अपने दंड कमंडल की ही रक्षा के लिए व्यग्र हो गये और भागकर उनकी रक्षामें प्रवृत्त हो गये। अब आप ही बताइये, कि आपका संग्रह बंधनका हेतु है या मेरा?" यह सुनकर मुनि लज्जित हुए और बोले—"राजन्! आपही यथार्थ त्यागी हैं।" ऐसा कहकर और राजाके प्रति सत्कार प्रदर्शित करके मुनि चले गये। इसी प्रकार एक ब्राह्मणके साथ भी महाराज जनक का संवाद हुआ।

एक बार किसी अपराधी ब्राह्मणको राजा जनकने दंड दिया और कहा—"तुमने ऐसा अपराध किया है, कि तुम मेरे राज्य में रहने योग्य नहीं हो। अभी मेरे राज्यसे निकल जाओ।"

राजाके वचन सुनकर ब्राह्मणने राजासे पूछा—"राजन!

आप मुझसे वही विषय कहें, जो आपके वशवर्ती हो। आप कहते हैं, मेरे राज्यसे निकल जाओ; तो कितना राज्य आपका है, जिसे छोड़कर मैं दूसरे के राज्य में चला जाऊँ।"

ब्राह्मणके ऐसे गूढ़ प्रश्नको सुनकर राजा चिंतामें पड़ गये। वे कुछ देर सोचते रहे। वे सोचकर बोले—"विप्रवर! मेरा क्या है, इस बात पर मैंने बहुत विचार किया। यह राज्य, पाट, धन, जन, स्त्री, परिवार तथा अन्य विषय क्या मेरे हैं। बहुत विचारने पर भी मैं इसका निर्णय न कर सका। अन्तमें मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा, कि या तो कोई भी विषय मेरे नहीं हैं, या संसारके समस्त विषय मेरे ही हैं।"

हँसकर ब्राह्मणने पूछा—"आपके ही हैं या और किसी भी ?"

राजा ने कहा—"नहीं, ब्रह्मन्! जैसे मेरे हैं वैसे ही दूसरे भी।"

ब्राह्मण ने कहा—"जब सबके ही हैं, तो फिर आप यह न कहते हैं; मेरे राज्यसे निकल जाओ। अन्यत्र चले जाओ।"

राजा बोले—"हाँ, भगवन्! यह मेरी भूल हुई. आप

मूर्खता है इसीलिए मेरी किसी भी विषयमें ममता नहीं। ममता वश ही मनुष्य समझता है, यह मेरी वस्तु है, यह दूसरे की। ममता न हो, सम्पूर्ण भूतों मे उसी आत्माको समझे तथा आत्मा मे ही सबको समझे तो फिर मनुष्य मैं मेरेके चक्करमे क्यों फँसेगा ?"

इस पर ब्राह्मणने कहा—"अच्छा, यह तो ठीक है, किन्तु आपने कहा—"समस्त विषय मेरे है और जिस प्रकार मेरे हैं, उसी प्रकार दूसरे के भी हैं. सो किस प्रकार ?"

राजाने कहा—"देखिये ब्रह्मन ! शब्द रूप, रस, गन्ध और स्पर्श जितने भी ये इन्द्रियोंके विषय है, उन सबका संयोग मेरी इन्द्रियोंके साथ होता है, किन्तु इन्हें मैं अपने लिये नहीं चाहता। इन पर मैं विजय प्राप्त कर ली है। मेरे द्वारा निर्जित विषय और इन्द्रियाँ मेरे अधीन हैं। मैं जो भी कुछ करता हूँ, अपने निमित्त नहीं करता। जितने द्रव्य एकत्रित करता हूँ देवताओं क लिये, पितरोंके लिये, अतिथि अभ्यागतोंके लिये, प्रजाजनोंके लिय तथा समस्त प्राणियोंके लिये करता हूँ। इसलिये सभी विषय मेरे हैं। आप जहाँ भी रहेंगे, मेरे ही राज्यमें रहेंगे। अतः अब मेरा आग्रह नहीं है, कि आप अमुक स्थान को छोड़कर अमुक स्थानमें चले जायँ। आपकी जहाँ इच्छा हो वहीं रहे।"

यह सुनकर ब्राह्मण खिल खिलाकर हँस पडा और बोला—"राजन ! जैसी मैंने आपकी प्रशंसा सुनी थी, आप वैसे ही निकले। मैं वास्तव मे ब्राह्मण नहीं, साक्षात् धर्मराज हूँ। मैं यहाँ ब्राह्मण का वेष बनाकर आपकी परिक्षा लेने ही आया था। आप ही एक ऐसे हैं, जो ममतासे रहित ज्ञानरूपी प्रवृत्तिका अस्तित्व बनाये हुए हैं।" इतना कहकर धर्मराज वहीं अन्तर्धान हो गये।

सूतजी कहते हैं—"राजन् ! इस प्रकार एक नहीं अनेकों कथायें विदेह राजाके सम्बन्धमें प्रचलित हैं। राजाओंके सम्बन्ध की ही नहीं विदेहराजकी रानियोंके सम्बन्धकी भी ऐसी ही कथाएँ हैं। कोई विदेह राजा सन्यासी बन गये थे, इस पर उनकी रानी ही उन्हें उपदेश देकर लौटा कर घर लाई थीं।"

यह सुनकर शौनक जी बोले—"सूतजी ! इस प्रसंग को भी हमें सुनाइये। इन कथाओंके श्रवण करनेमें हमारा बड़ा मन लगता है। इनसे बड़ा बोध होता है।"

सूतजी बोले—"अच्छी बात है महाराज ! सुनिये मैं इस प्रसङ्गको भी सक्षेप में सुनाता हूँ।

एक बार महाराज जनकको राज-पाटसे महान् वैराग्य हुआ। वे घर-द्वार राज-परिवार सभी को छोड़ छड़कर वन में चले गये। उन्होंने सोचा "मैं राज्यके प्रपंचमें फँसकर क्या करूँगा। मूड़ मुड़ाकर भिक्षोपजीवी बनकर अपना शेष जीवन त्याग मय बिता दूँगा।" यही सोचकर वे वन चले गये। वहाँ निःसंग होकर एकान्त में कुटी बनाकर रहने लगे और मुट्ठीभर भुने जब खाकर निर्वाह करने लगे। इससे सभी प्रजाके लोग दुखित हुए। किसी का साहस राजासे कुछ कहनेका नहीं हुआ। यह देखकर राजाकी परम बुद्धिमती राजमहिषी राजाके समीप गई और निर्भय होकर कहने लगी—"राजन् ! आप यह क्या खेल कर रहे हैं ?"

राजाने कहा—"त्याग के बिना विषयासक्ति नहीं छूटती। विषयासक्ति बिना छूटे ज्ञान नहीं होता। बिना ज्ञानके मुक्ति नहीं। इसलिए मैंने सबका त्याग कर दिया है।"

रानीने पूछा—"आपने त्याग किस वस्तुका किया है ?"

राजाने कहा—"मैंने संगका त्याग किया है। राज्य, धन, ऐश्वर्य का त्याग किया है ?"

रानीने कहा—"राज्य की समस्त वस्तुएँ पंच भूतात्मक है। क्या आप पृथिवी पर अब नहीं रहते। महल और झोपड़ीमें अंतर ही क्या है ? क्या आपने जलका त्याग कर दिया है ? क्या यहाँ आप स्वांस नहीं लेते. वायु नहीं पान करते ? क्या आपने प्रकाशको छोड़ दिया ? यहाँ आप आकाशके नीचे नहीं रहते ? जब पाँचों भूत जैसे वहाँ थे, वैसे यहाँ हैं; तब इनमें त्याग किस वस्तुका किया है ? वहाँ आपके आस पास मंत्री पुरोहित सैनिक तथा सेवक आदि रहते थे; यहाँ पशु, पक्षी, कीट, पतंग रहते हैं। इससे संगका भी परित्याग नहीं हुआ।"

राजाने कहा—"मैंने परिग्रहका तो त्याग कर ही दिया है ?"

रानीने कहा—"परिग्रहका त्याग कहाँ किया ? मध्याह्न कालमें भूख लगने पर एक मुट्ठी भुने जव के लिये तुम्हें नगर की ओर दौड़ना ही पड़ता है. उसकी चिंता रहती ही है। पहिले जहाँ आप देते थे वहाँ अब स्वयं याचक बन गये हैं। पहिले आप राज्यका पालन करते थे, उसकी देख रेख रखते थे, अब आप दंड, कमण्डल, कंथा और कौपीन की देख रेख रखते हो। तुम्हारी इन आवश्यक वस्तुओं को कोई नष्ट कर दे, तो तुम्हें दुःख होगा ही। फिर राज्य त्यागसे लाभ क्या हुआ ? ममता ही बन्धनका कारण है। यदि आपकी ममता छूट जाय, तो आप जहाँ भी रहें वहीं त्यागी हैं। यदि ममता नहीं छूटी देखा-देखी काषाय वस्त्र, दंड, कमण्डल धारण कर लिए तो यह तो ढोंग है, दंभ है, छल है; अपने आपको ठगना है। राजन् ! आप आलसी लोगों की भाँति अकर्मण्य न बनें। अकर्मण्य हाथी को भी चींटियाँ खाजाती हैं। मूर्ख लोग ही कर्म छोड़कर झूठा वेष बना कर बाबाजी बन जाते हैं और आलस्यमें अपना सम्पूर्ण समय बिताते हैं। आपको यह शोभा नहीं देता। जैसे आप

सहस्रों को देकर खाते थे, वैसे खाइये । प्रजापालन रूप कर्मको कर्तव्य बुद्धिसे कीजिये । देवता, पितर तथा अतिथियों का सन्तुष्ट कीजिये। फलकी इच्छा न रखकर निष्काम भावसे कर्म करें।"

सूतजी कहते हैं—मुनियो ! अपनी राजमहिषी के ये वचन सुनकर राजा का मोह दूर हुआ। उन्होंने सन्यासी बननेका विचार छोड दिया और वे घरमें आकर निष्काम भावसे सभी राज्य कार्यो को करने लगे। सो महाराज जिस प्रकार जनक वशीय राजा ज्ञानी थे, उसी प्रकार उनकी रानियाँ भी अध्यात्म विद्यामें निष्णात थीं। महाराज जनक मुनियो के माननीय थे। यहाँ तक कि समस्त मुनियाक गुरु भगवान् शुकदेवजी ने भी उनका शिष्यत्व स्वीकार किया था। मुनियो ! इस प्रकार जनक मेरे गुरुके भी गुरु अर्थात् बाबागुरु थे।"

इस पर शोनकजी ने पूछा— सूतजी ! श्री शुकदेवजी ने जनक जी को गुरु कैसे बनाया और जनकजी ने उन्हें कैसा उपदेश दिया । कृपा करके इस उपाख्यान को आप हमें सुनावें।"

सूतजी ने कहा—'मुनियो ! जिस प्रकार मेरे गुरुदेव राजर्षि जनकके यहाँ शिक्षा लेने गये और जनकजी ने उन्हें जैसे उपदेश देया, इस प्रसङ्गको मैं सक्षेपमे सुनाता हूँ, आप दत्तचित्त होकर श्रवण करें।"

सूतजी मुनियों को जनक शुक सवाद सुना रहे हैं— मुनियो ! मेरे गुरुदेव भगवान् शुक जन्मसे ही विरक्त तथा सर्व शास्त्रोंके ज्ञाता थे। उनको गृहस्थाश्रम आदि प्रवृत्ति मार्गके कार्य अच्छे नहीं लगते थे। उन्होने देवगुरु बृहस्पति जी से भी समस्त शास्त्रो का अध्ययन किया था। जब समस्त शास्त्रोंमे पारगत हो गये, तो एक दिन उन्होने अपने पिता भगवान् व्यासजी से पूछा—

"भगवन्! आप मोक्षधर्मके ज्ञाता हैं, कृपा करके मुझे मोक्षधर्म का उपदेश दें।"

व्यासजी यह सुनकर परम प्रसन्न हुए। फिर उन्होंने सोचा—'अपना पुत्र अपनेसे नहीं पढ़ता, उसे पढानेके लिए दूसरे अध्यापकके निकट भेजना पडता है। हम इसे बतावेंगे, तो इसको श्रद्धा न होगी। विना श्रद्धाके फल नहीं होता। अत. इसे परमज्ञानी विदेह महाराज जनकके समीप भेजना चाहिये।" यह सोचकर वे बोले— वत्स! इस प्रश्नका मैं उत्तर नहीं दे सकता। तुम महाराज विदेह जनकके समीप जाओ। वे तुम्हारे सभी सशयोंका छेदन करेंगे।"

श्री शुकदेवजी ने कहा—"पिताजी आप ही मुझे उपदेश क्यों नहीं देते?"

व्यासजी ने कहा—"वत्स! वे ही इस विद्यामें पारगत हैं। बड़े बडे ऋषि मुनि उनके ही समीप इस विद्या को जाननेके निमित्त जाते है। तुम शीघ्र उनके समीप जाओ।"

श्रीशुक बोले—'पिताजी मैं योग द्वारा आकाश मार्गसे क्षण भरमें मिथिला पहुँच सकता हूँ।"

व्यासजी ने कहा—'न भैया! ज्ञान सीखने के लिए निर-भिमान होकर जाना चाहिए। मोक्षधमके जिज्ञासुको साधारण भावसे गुरुके समीप जाना चाहिए। तुम पैदल ही महाराज के समीप जाओ। वहाँ जाकर तुम अपने इष्ट मित्रों की खोज न करना, महाराज जो भी कहें उसे मानना, उनके प्रति अश्रद्धा प्रकट मत करना और उनसे मानकी भी अभिलाषा न रखना।'

पिता की आज्ञा शिरोधार्य करके सम्याप्राम से श्री शुकदेव मिथिलापुरीके लिये चले। वे बद्रीनाथसे विष्णुप्रयाग नद प्रयाग, देवप्रयाग तथा ऋषिकेश वाले मार्गसे नहीं गये। कलाप

ग्राम से वे सरस्वती नदी के किनारे किनारे ऊपर चढे। काकभुसुंड पर्वत की चोटी के समीपसे नीचे हूणदेश (तिब्बत) में आये। मेरुवर्षसे होकर वे मानसरोवर कैलाश होकर अलमोडाके रास्ते से नीचे उतरे, फिर सरयूके किनारे किनारे गगाजी के किनार आये, वहाँसे मिथिलापुरीमें पहुँचे। मार्गमें उन्हें हूणिया तथा चीनी जातिके बहुतसे नगर मिले। सबने दिगम्बर शुकका सत्कार किया। विदेह राज्यको देखकर शुकदेवजी परम प्रमुदित हुए। यह देश धन धान्यसे भरा पूरा था। वहाँ की भूमि उपजाऊ थी, हरे हरे धानोंके खेत खडे थे। उस समृद्धिशाली, देशको देखकर उनके हर्षका ठिकाना नहीं रहा। मिथिलापुरीमें एकसे एक अद्भुत वस्तु थी। वहाँ के वन उपवन परम रमणीक थे। नगर नाना प्रकारसे सजाया गया था। किन्तु शुकदेवजी ने उन सब वस्तुओं की ओर ध्यान ही नहीं दिया। वे इन सबकी ओर बिना ध्यान दिये मिथिलापुरीके नगर के द्वार पर पहुँचे। वे नगर के द्वारसे प्रवेश कर ही रहे थे, कि द्वारपाल ने उन्हें भीतर जाने ही नहीं दिया। यह शुकदेवजी का महान् अपमान था, किन्तु वे सच्चे जिज्ञासु थे। आजकल तो कोई साधु दर्शनको जाते हैं और यदि साधु भजन पूजनमें हो, कुछ देर बैठना पड़े, तो बडे क्रुद्ध होते हैं। खरी खोटी सुनाते हैं और क्रुद्ध होकर लौट भी जाते हैं। शुकदेवजी ने ऐसा नहीं किया, वे शान्त भावसे द्वार पर खडे रहे। जब राजाज्ञा प्राप्त हो गई, तब द्वारपाल ने उन्हें भीतर जाने दिया। नगरमें प्रवेश करके शुकदेवजी राजमहल की ओर चले महलके द्वारकी प्रथम ड्योढी से वे ज्यों ही घुसे त्यों ही द्वारपालने डाटकर उनसे कहा—"आप बिना पूछे नगे धिडगे भीतर कहाँ जा रहे हैं ?"

शुकदेवजी ने कहा—"मुझे महाराज जनकसे मिलना है। उन्हीं के समीप जा रहा हूँ।"

द्वारपाल ने सूखी हँसी हँसकर कहा— 'राजा से ऐसे मिला जाता है। अभी भीतर जानेका समय नहीं है।"

यह सुनकर शुकदेवजी तनिक भी क्रुद्ध नहीं हुए। वे चुपचाप खडे रहे। वे धूपमें ही बैठकर आत्म चिंतन कर रहे थ। इतने ही में मंत्री आया, वह उन्हें सत्कार पूर्वक दूसरी ड्योढी पर ले गया। इस सत्कारसे भी शुकदेवजी को कोई हर्ष नहीं हुआ। वे चुपचाप मन्त्रीके पीछे पीछे चले गये।"

द्वितीय ड्योढ़ीमें एक अत्यंत हा सुन्दर अतिथिशाला थी। जिसमें राज्यके अत्यन्त प्रतिष्ठित व्यक्ति ही ठहराय जात थे। वे भवन भली भाति सजाये गये थे। स्थान स्थान पर सुन्दर स्वच्छ, शीतल सलिल वाले सुहावन सरोवर थे। जिनमें भाति-भाति के कमल खिल रहे थे। वहाँ की भूमि बडी हा सुहावनी थी। वहाँ अत्यन्त सुन्दर ५० युवती स्त्रियाँ सजी धजी उपस्थित थी। श्री शुकदेवजी को देखकर वे सबकी सब उठकर खडी गई। उन्होंने भगवान व्यास नन्दनका स्वागत सत्कार किया। पाद्य, अर्घ्य, आसन देकर उनकी पूजा की। सुन्दर सलिलसे उनको स्नान कराया। वे बहुत दूर से चलकर आ रहे थे। उनका श्रम विविध उपायोंसे दूर किया। बड़े रसयुक्त सुन्दर पदाथ भोजन के लिए उनके सम्मुख उपस्थित किये। बडे प्रेमसे आग्रह पूर्वक उन्हें भोजन कराया। भोजन करके श्री शुक विश्राम करने लगे। ये युवतियाँ गाने बजाने तथा नृत्य आदि में बडी प्रवीण थीं। वे भाँति भाँतिके शृङ्गार रसके गाने गाती रहीं। हाव भाव कटाक्ष प्रदर्शित करके नृत्य करती रहीं, किन्तु फिर भी शुकदेवजी के मनमें कोई विकार उत्पन्न नहीं हुआ। वे शान्त भावसे स्थिर बैठे हुए ब्रह्म चिंतन करत रहे। ऊर्ध्व-रात्रि तक वे ध्यान मग्न रहे, पुनः उन्होंने शास्त्रीय विधि से शयन किया। इस प्रकार एक

दिन और एक रात्रि श्रीशुक उस विलास वैभव पूर्ण स्थानमें निर्विकार भावसे रहे।

दूसरे दिन मिथिलेश अपने मन्त्री पुरोहित और रानियों को साथ लेकर शुकदेवजी के समीप आये। उन्होंने आकर शास्त्रीय विधिसे मुनिकी पूजा की। सुन्दर सर्वतो भद्र आसन पर उन्हें बिठाया गौ दान करके कुशल पूछी। पूजा कर चुकने के अनन्तर जब मुनिने आज्ञा दी तो राजा हाथ जोड़े हुए बैठे। तब राजाने पूछा—"ब्रह्मन्! आपका पधारना किसी विशेष कारण से हुआ हो तो उसे मुझे बतावें।"

राजा के प्रश्न को सुनकर मुनि बोले—'राजन्! मेरे पिता ने मुझे आपके समीप प्रवृत्ति निवृत्ति विषयक समस्त सन्देहों को दूर करने भेजा है। उन्होंने मुझसे कहा था—'जनकजी मेरे यजमान हैं। वे मोक्ष धर्मके ज्ञाता हैं, सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी हैं। उनसे जाकर मेरी ओर से कुशल पूछना और अपने संशयोंको उनके समीप प्रकट करना। वे तेरे समस्त संशयोंका छेदन कर देंगे।"

राजाने विनयके साथ कहा—'ब्रह्मन्! मैंने तो जो भी कुछ सीखा है, आपके पूज्य पितृदेव भगवान् व्याससे ही सीखा है। उन्होंने किसी विशेष प्रयोजनसे आपको मेरे समीप भेजा है। अच्छी बात है पूछिये आपको क्या पूछना है ?"

श्रीशुक बोले—"राजन्! यह बताइये इस लोकमें ज्ञान की इच्छावाले मुमुक्षुका क्या कर्तव्य है? मोक्षका स्वरूप क्या है? मोक्ष प्राप्ति का साधन तप है या ज्ञान ?"

यह सुनकर गम्भीरता पूर्वक राजा बोले—'ब्रह्मन्! आपके प्रश्न तो बहुत गूढ हैं, फिर भी मैं यथामति इनका उत्तर दूँगा। भगवन्! मोक्ष की इच्छा रखने वालों का जन्मसे लेकर मरण पर्यन्त पारमार्थिक कर्म करते रहना चाहिए। एक आश्रम से दूसरे आश्रममें जाना चाहिए। ब्रह्मचर्यसे गृहस्थमें, गृहस्थ

से वानप्रस्थमें और वानप्रस्थसे सन्यासाश्रममें जाना चाहिए।"

श्री शुकदेवजी ने पूछा—"राजन्! किसी को जन्मसे ज्ञान हो गया हो, तो क्या उसे फिर भी ब्रह्मचर्य से गृहस्थ और गृहस्थसे वानप्रस्थ और सन्यास को धारण करना आवश्यक है?"

जनकने कहा—"ब्रह्मन्! मोक्षकी प्राप्ति ज्ञान विज्ञानके बिना नहीं होती। ज्ञान की प्राप्ति बिना गुरु सम्बन्धके नहीं हो सकती। गुरु ही इस ससार सागर से पार पहुँचाने वाले हैं। ज्ञान ही सुदृढ़ नौका है। कर्णधारका काम गुरुदेव ही करते हैं। परम्परा अक्षुण्य बनी रहे, अतः ज्ञानी भी चारों आश्रमोंका पालन करते हैं। जिसका मन शुद्ध हो गया है, जो जीवन्मुक्तिके आनन्दका अनुभव कर चुका है, उसे तीनों आश्रमों की आवश्यकता नहीं। वह तो परमहस रूपमें स्वेच्छानुसार विचरण कर सकता है, क्योंकि उनके मनमें कोई कामना ही नहीं। प्रवृत्तिमार्ग तो कामनाओंको मेटनेके लिए विषयोंसे विरक्त होनेके निमित्त है। क्रम मार्गका कथन है, ज्ञानीके लिए कोई क्रम नहीं। आपतो परम ज्ञानी हैं। जैसे अधकार मय गृह दीपकसे प्रकाशित होता है, वैसे ही बुद्धि रूप दीपकसे आत्माका साक्षात्कार होता है। आपको तो मेरे भी गुरु भगवान् व्यासकी कृपासे सभी विषयों का ज्ञान हो गया है। इसीलिए आपका मन विषय वासना से रहित हो गया है। मुझे भी आपके पूज्य पिताके ही उपदेशसे आत्म साक्षात्कार हुआ है। मैंने परीक्षा करके आपको देख लिया। योग दृष्टिसे मैं पहिले से ही जान गया था, कि आप आ रहे हैं, इसीलिये आपकी परीक्षाके निमित्त मैंने ये ढोंग रचे। आप परीक्षामें उत्तीर्ण हो गये। आपको अपने ज्ञानकी थाह नहीं। आप जितना अपने को समझ रहे हैं, उससे कहीं अधिक आप ज्ञानी हैं। संशयवान् पुरुषको ज्ञान भले ही हो जाय, किन्तु उसको मोक्ष नहीं हो सकता। शुद्ध उद्योग के द्वारा तथा

गुरु के उपदेश को श्रद्धा पूर्वक श्रवण करनेसे ही सभी संशय दूर हो जाते हैं, सभी बन्धन खुल जाते हैं। आप मोक्ष विद्याके अधिकारी हैं। आपको विषयों में स्वाभाविक रुचि नहीं। तुम्हारी सबमें समदृष्टि है। तुम सुवर्ण और पत्थर को समान समझते हो। ब्राह्मणत्वका जो फल है तथा मोक्षका जो स्वरूप है, वह तो तुम्हें प्राप्त हो चुका है। इसके अतिरिक्त और आप क्या जानना चाहते हैं।"

सूत जी कहते हैं-"मुनियो ! मेरे गुरुदेव ज्ञानी तो जन्म के ही थे, जनक जी के वचनों से उन्हें मोक्ष-प्राप्ति का दृढ़ निश्चय हो गया। वे राजा के प्रति कृतज्ञता प्रकट करके यथेच्छ स्थान को चले गये। इस प्रकार महाराज जनक मेरे बाबा गुरु हैं। मेरे गुरु ने उनसे शिक्षा प्राप्त की थी। यह मैंने अत्यंत ही संक्षेप में जनक वंशके मुख्य मुख्य राजाओंकी कुछ कथायें कहीं। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ?"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी ! आपने महाराज इक्ष्वाकु के विकुक्षि निमि और दंडक ये तीन सबसे बड़े पुत्र बताये थे, उनमें से विकुक्षि और निमि के वंश की कथा तो आपने सुनाई, अब महाराज दंडक के वंश की कथा और सुनाइये।"

इस पर सूतजी ने कहा—"मुनियो ! महाराज दंडक का तो वंश चला ही नहीं। वह तो शुक्राचार्य के शाप से सकुटुम्ब सपरिवार राज्य कोष तथा प्रजा के सहित भस्म हो गया। उसका सम्पूर्ण राज्य नष्ट हो गया। उसका राज्य बालुका मय बन गया।"

यह सुनकर आश्चर्य प्रकट करते हुए शौनक जी ने पूछा—"सूतजी ! भगवान् शुक्राचार्य ने महाराज निमि को ऐसा घोर

शाप क्यों दिया ? क्यो उसके सम्पूर्ण राज्य को भस्म कर दिया ? राजा ने ऐसा कोन सा घोर पाप किया था ? कृपा करके इस कथा को हमें सुनाइये ।"

यह सुनकर सूतजी बोले—"अच्छी बात है महाराज ! इस कथा को सुनाकर अब फिर मैं उस शुभ्र चन्द्र-वश का वर्णन करूँगा। जिसमें कृष्णचन्द्र आनदकन्द प्रकट हुए।"

छप्पय

जनक वश को विमल चरित अति सुखद सुनायो।
तिहि जग महँ यश ज्ञान दान तें विपुल कमायो ॥
प्रकटीं आद्या शक्ति अमर कुल भयो भुवन महँ।
करन जीव कल्यान फिरीं प्रभु सँग वन वन महँ ॥
यों विकुक्षि निमि वंश की, कही कथा अति सुखमयी।
दंडक तीसर तनय की, सुनहु कथा अब दुखमयी ॥

—(०)—

महाराज दण्डककी कथा

७१७

श्रुवस्तु मनोर्जज्ञे इक्ष्वाकुर्घ्राणतः सुतः ।
तस्य पुत्रशतज्येष्ठा विकुक्षिनिमिदण्डकाः ॥ *
(श्रीभा० ९ स्क० ६ अ० ४ श्लो०)

छप्पय

सुत इक्ष्वाकु तृतीय गयो दण्डक वन माँही ।
शुक्रसुता लखि भई विकलता अति मन माँही ॥
अनुचित करि प्रस्ताव कुपित कन्या तिनि कीन्हीं ।
भये काम वश शिखा पकरि कन्या की लीन्हीं ॥
गुरुकी कन्या द्विजसुता, विरजा संगम तैं रहित ।
बुधि, भ्रष्ट नृपकी भई, करि अनुचित कार्यो अहित ॥

मनुष्य जब काम-वश हो जाता है, तो अपना हित अनहित कुछ भी नहीं सोचता । जिस पर आसक्ति होजाती है, उसे पानेका प्रयत्न पुरुष प्राणोंका पण लगाकर करता है । पतंगका दीपककी लोयसे कोई कल्याण थोडे ही होता है, किन्तु उसकी इसमें आसक्ति है । प्राणोंका मोह छोडकर उसका आलिंगन करता है और अपने आपको भस्म कर देता

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! मनुजीके छींकने पर उनकी नासिकासे इक्ष्वाकु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । उसके १०० पुत्र हुए उनमें विकुक्षि निमि और दण्डक ये तीन सबसे बड़े प्रधान पुत्र थे ।"

है। इस घटनासे दूसरे पतंगे लाभ उठाते हों, सचेत होजाते हों, सो बात नहीं। जो भी दिये की लौके सम्मुख आता है, वही उसे आलिंगन करने दौड़ता है। कामके वश होकर किस कामीने सुख पाया? रावण कामके अधीन होकर सीताजीको हर लेगया इसके फलस्वरूप वह कुल सहित नष्ट हो गया। इन्द्रने काम वश होकर अनुचित कार्य किया जिससे उसका पद अस्थाई हो गया शरीर विकृत बन गई, न जाने क्या क्या दुर्दशा हुई। नहुष काम वश होकर स्वर्गके साम्राज्यसे च्युत होकर सर्प बन गया। चन्द्र काम वश होकर कुष्टि हुआ। ब्रह्माजीको काम-वश हरिन बनना पड़ा। शिवजीको लाज छोड़कर मोहनीके पीछे दौड़ना पड़ा, विष्णुको पाषाण बनना पड़ा। भगवान्‌ने इस कामको उत्पन्न करके प्राणियोंको कालके अधीन कर रखा है। यदि कामको जीत ले तो उसका काल कुछ कर ही नहीं सकता। बिन्दुपात ही मरण है बिन्दुधारण ही जीवन है। काम-वेग ऐसा प्रबल होता है, कि उस समय बुद्धि ठिकाने नहीं रहती। इन्द्रियाँ परवश सी होजाती हैं। चित्त इतना प्रबल वेगशाली बन जाता है, कि विवेक कुछ काम नहीं देता। प्राणी विवश होजाता है, आत्म विस्मृत बन जाता है। इन्द्रियोका विषयोंके साथ जहाँ ससर्ग हुआ, कि फिर मन खो जाता है। जो आदमी जितना शक्तिशाली होता है, वह उतना ही साहसका कार्य कर सकता है, योगी जब योगसे भ्रष्ट होकर कामके चक्करमें फँसता है तो वह जितनी निर्लज्जतासे रामोपभोग करता है, उतनी निर्लज्जितासे साधारण आदमी नहीं कर सकता। विद्या, धन, योग, सामर्थ्य तथा अन्य शक्तियोंसे युक्त पुरुष साधारण आदमियोंसे अधिक साहसका

कार्य करता है। ऐसे पुरुषोंको दंड भी अधिकसे अधिक देना चाहिये। एक आदमी है, जो नियम विधान नहीं जानता, उससे यदि अपराध होजाय, तो वह क्षमा भी किया जा सकता है, किन्तु जो स्वयं विधान विशारद है, सभी नियम सदाचारको जानता है, यदि वह कोई अनुचित साहस करता है, तो उसे अधिकसे अधिक दंड देना चाहिये; ऐसी इस देशमें सनातन प्रथा है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! आपने मुझसे इक्ष्वाकुके पुत्र दंडककी कथा पूछी है, मैं उसे सुनाता हूँ, आप दत्त चित्त होकर श्रवण करें।

महाराज दंडक पिताके आदेशसे दक्षिण देशमें राज्य करने लगे। राजा वैसे तो कुलीन थे, इन्द्रियाँ उनके वशमें नहीं थीं वे कामी थे, भगवान् शुक्राचार्यको उन्होंने अपना पुरोहित बनाया।"

एक दिन महाराज घोड़े पर चढ़कर अरण्य को गये। संयोगकी बात उसी समय शुक्राचार्यकी कन्या विरजा वहाँ वनकी शोभा देखने अकेली ही आई हुई थी। वह अभी कन्या थी, रजोदर्शन भी उसका नहीं हुआ था। वह इतनी सुन्दरी थी, कि स्वर्गीय अप्सरायें भी उसके सम्मुख लज्जित हो जातीं। वह पृथिवीकी लक्ष्मी सी जान पड़ती थी। बाल्यावस्था को पार करके उसने यौवनावस्थामें पदार्पण किया था। यौवनके चिन्ह अस्फुट रूपसे उसके अंगोंमें प्रकट होरहे थे। वह उस अर्धमुकुलित कलिकाके समान थी, जिसके समीप अभी भ्रमर आया न हो। जिसका सौरभ पराग अभी विस्फुटित न हुआ हो। वह अपनी नारी सुलभ चंचलता से इठलाती हुई इधरसे उधर घूम घूमकर पुष्प चयन कर

रही थी । राजाकी उस अनवद्य सौन्दर्ययुक्त कन्याके ऊपर दृष्टि पड़ी । उसके अपार सौन्दर्यको देखकर दण्डक काम बाणसे विद्ध होगया । उसका मन उसके अधीन न रहा। वह शीघ्रतासे उसके समीप आया अत्यन्त ही स्नेहसे अधीरताके स्वरमें पूछने लगा—"भामिनि ! तुम कौन हो ? किसकी पुत्री हो ? किसकी पत्नी हो ? तुम अकेली इस विजन वनमें क्यों फिर रही हो ? तुम कमला हो या साक्षात् रति हो, तुम्हारे ये कोमल चरण इस योग्य नहीं हैं, कि तुम इस कठिन भूमि पर नगे पैरों घूमो।"

यह सुनकर लजाती हुई शुक्रतनयाने कहा—"राजन् ! मैं भगवान् शुक्राचार्यकी पुत्री हूँ। अभी मैं अविवाहिता हूँ।"

राजाने अधीरताके स्वरमें कहा—"देवि ! मैं इस देशका राजा हूँ, तुम्हारे अधीन हूँ, मैं तुम्हारे सौन्दर्य पर मुग्ध हूँ, मैं अपने वशमें नहीं हूँ। तुम्हें निमित्त बनाकर काम मुझे अत्यन्त पीडा दे रहा है । तुम मेरे ऊपर दया करो, मुझे प्राण दान दो।"

यह सुनकर कुपित हुई कन्याने कहा—"राजन् ! ऐसे वचन आपको मुखसे उच्चारण न करना चाहिये । वाणीसे कौन कहे ऐसी बात आपको मनसे भी न सोचनी चाहिये। देखिये, आप राजा हैं, सबके पिता हैं, इस सम्बन्धसे मैं पुत्री हूँ । आप मेरे पिताके शिष्य हैं । इस सम्बन्धसे मैं तुम्हारी बहिन हूँ । फिर मैं विप्र कन्या हूँ, तुम क्षत्रिय हो, इस सम्बन्धसे मैं तुम्हारी पूजनीया हूँ । किसी भी प्रकार आपके मनमें मेरे प्रति बुरे भाव न होने चाहिये । कैसा भी कामी हो, पुत्री और बहिनके प्रति वह भी बुरे भाव मनमें नहीं लाता । इसलिये आप इस बातको मनसे निकाल

दें। आप मेरे पिताके आश्रममें जायँ वे तुम्हारा आतिथ्य करेंगे।"

राजाने कहा—"सुन्दरि! मेरा मन मेरे अधीन नहीं है। मैं जानता हूँ, यह सम्बन्ध अनुचित है. किन्तु मेरा मन तुममें फँस गया, मुझे तुम्हारे प्रति प्रेम होगया है। प्रेम अंधा होता है, उसमें नियम रहता ही नहीं।"

कन्याने कहा—"राजन! आप प्रेम शब्दको कलंकित क्यों कर रहे हैं। यह तो आपका काम है, वह भी अधर्म पूर्वक अनुचित काम है। आप जान बूझकर हलाहल पान कर रहे हैं। मेरे समर्थ पिताको तुम्हारे भावोंका पता भी लग जायगा, तो वे तुम्हारा सर्वस्व नाश कर देंगे। तुम अपनी मृत्युको अपने आप निमन्त्रण क्यों दे रहे हो। मैं अभी अपुष्पिता हूँ, अभी मैंने रजोदर्शन भी नहीं किया है, मैं सर्वथा अगम्या हूँ। अरजस्का कन्याके साथ संगम करना महान् पाप है। राजन्! अपना हित तुम स्वयं सोचो, क्यों तुम मृत्युके मुखमें जारहे हो?"

राजाने कहा—"वरवर्णिनी! एक बार मुझे तुम्हारा संगम प्राप्त होजाय, फिर चाहें मुझे मरना ही पड़े, मैं मृत्युको, राज्य को, धनको तुम्हारे सम्मुख तृणके सदृश भी नहीं समझता।"

कन्याने डाँट कर कहा—"चल, हट। कुत्ता कहींका। ऐसा अनुचित प्रस्ताव करता है।" यह कह कर वह शीघ्रतासे चलने लगी। राजाकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी, उसकी विचार शक्ति नष्ट हो गई थी, उसका काल उसे पापमें प्रेरित कर रहा था। उसने जाती हुई कन्याके केशपाशोंको कस कर पकड़ लिया और उसके साथ बलात्कार किया। कन्या तड़पती रही, रोती रही, किन्तु उस नरपिशाचने कुछ भी ध्यान न दिया।

पीछे वह डर कर घोड़े पर चढ़ कर भाग गया। कन्या लज्जा से सिकुड़ी हुई रोती चिल्लाती अपने पिताके आश्रम पर पहुँची। वह अत्यन्त डर रही थी, उसकी श्री नष्ट हो गई थी। पिताने उसकी दशा देखी, वे योग दृष्टिसे सब कुछ समझ गये। राजाके ऊपर उन्हें अत्यन्त ही क्रोध आया, मुनिकी आँखोंमें आग निकलने लगी। उसी क्रोधके आवेशमें मुनिने शाप दिया—"जिस नरकगामी नीच निर्लज्ज कामी राजाने ऐसा जघन्य पाप किया है, उसका राज्य नष्ट हो जाय, उसके राज्यमें एक भी पशु पक्षी न बचे। सात दिन तक तप्त बालूकी वर्षा हो, वृक्षभी वहाँ न रहें, सम्पूर्ण राज्य बालुकामय अरण्य बन जाय।"

यह कह कर उन्होंने ऋषियोंको आश्रम छोड़ कर अन्यत्र जाने की आज्ञा दी। अपनी कन्यासे कहा—"तू यहीं पर घोर तप कर। मैं वर देता हूँ तेरा यह आश्रम नष्ट न होगा। यहीं रह कर तपस्या करनेसे तू विशुद्ध हो जायगी।" यह कह कर मुनि कन्याको वहीं तपस्याके निमित्त छोड़ कर अन्यत्र दूसरे स्थानमें चले गये। मुनिका शाप असत्य तो हो नहीं सकता। सात दिन सात रात्रि तक दण्डकके सम्पूर्ण राज्यमें तप्त बालूकी वर्षा हुई। उसका राज्य पाट, कोष, सेना, मन्त्री सबके सब नष्ट हो गये। दण्डकका राज्य वन बन गया। वह वन उसीके नामसे दण्डकारण्य या दण्डक वनके नामसे विख्यात हुआ। बहुत दिनों तक वहाँ कोई पशु पक्षी भी नहीं रहे। पीछेसे आकर मुनिगण वहाँ श्री-राम-दर्शनोंकी लालसासे कुटिया बना कर रहने लगे। वृक्ष भी उत्पन्न हो गये। जब श्रीरामचन्द्रजी अवतार धारण करके सीता-जी के सहित दण्डकारण्यमें पधारे, तो उनकी चरणधूलिसे वह अपावन वन परम पावन बनगया। वह शापसे मुक्त हो गया।

सूतजी कहते हैं—'मुनियो! इस प्रकार महाराज दण्डकका वंश आगे नहीं चला। यह मैंने अत्यन्त संक्षेपमें मनुवंशीय राजाओं

के वंशका वर्णन किया। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ?"

इस पर शौनकजीने कहा—"सूतजी! आपने सूर्यवंशकी कथा तो सुना दी। अब हम चन्द्रवंशकी कथा और सुनना चाहते हैं। पृथिवीमें ये ही दो वंश परम पावन कहे गये हैं। इस वंशकी उत्पत्ति कैसे हुई और मुख्य बात तो यह है, कि इस वंशकी कितनी पीढ़ीके पश्चात् भगवान् कृष्णचन्द्रका प्रादुर्भाव हुआ। हमारा मुख्य प्रश्न तो कृष्णचरित्रके ही लिये है। उसीके सम्बन्ध में हम चन्द्रवंशीय अन्य मुख्य मुख्य पुण्यश्लोक राजाओंका भी चरित्र सुनना चाहते हैं। कृपा करके अब हमसे आप चन्द्रवंशके राजाओंकी कथाओंको कहें।"

यह सुन कर प्रसन्नता प्रकट करते हुए सूतजी बोले—"अच्छी बात है, मुनियो! अब मैं आपसे चन्द्रवंशका वर्णन करता हूँ, उसे आप सावधान हो कर श्रवण करें।"

छप्पय

लज्जित पितु ढिंग गई शुक्रतनया जब रोवति।
दुहिता देखी दुखित कुपित तब भये शुक्र अति॥
दयो शाप नृपराज नष्ट ह्वै जावै सबई।
बरसी बालू तप्त भयो दंडकवन तबई॥
घोर पाप तैं पलक महँ, धूरि माँहि वैभव मिल्यो।
नष्ट भयो परिवार सब, फिरि दंडक कुल नहिं चल्यो॥

—(❀)—

❀ इस के आगेकी कथा बत्तीसवेंखण्डमें पढ़ें ❀

॥ श्रीहरिः ॥

छप रहा है ! छप रहा है !! छप रहा है !!

भागवत-चरित

[इति मासिक पारायण-द्वितीय दिवस विश्राम]

अथ-एकादशोऽध्यायः
(११)

छप्पय—भरत वंश अवतंस ! प्रश्न अति उत्तम कीन्हों।
मुनि मन्डलके मध्य माहिं आदर बहु दीन्हों ॥
भूप ! मूढ़जन विषय भोग महँ समय वितावें।
प्रभुपद प्रेम न करहिं अंत महँ पुनि पछतावें ॥
नृपवर ! नरतनु नाव दृढ़, कृष्ण कथा पतवार है
केशवकूँ केवट करें, सो भवसागर पार है।
दो० – वट तर सुरसरिके निकट, जैसे शशिहिं चकोर
घेरे बैठे सकल मुनि, सब निरखत शुक ओर।
कहन लगे शुकदेव मुनि, दै नृपकूँ सन्तोप।
शुद्ध भागवत तत्व अब, कहूँ धरम निरदोष ॥
छ०– है प्रपञ्च बहु विषयभोग महँ फँसे नरनकूँ।
हरिलीलातें सुखद और अवलम्ब न मनकूँ ॥
आकरषित अतिभयो रूप हरिलीला सुनिकें।
भूल्यो निरगुन ब्रह्म सगुनके गुनकूँ गुनिकें ॥
भव्य भागवत भूपवर ! तुमहिं सुनाऊँ सरस अति।
सुनत श्यामपद कमल महँ होहिं तुरन्त अनन्य मति ॥
अल्प कालकी कछू आप चिन्ता नहिं करिहैं।
सात दिवस तो बहुत कथा सुनि छिन महँ तरिहैं ॥
एक मुहूर्तहिं माँहिं तरे खटवाङ्ग विरागी।
शेष आयु सप्ताह आप तो सरवसु त्यागी ॥
अन्तकालकूँ निकट लखि, गेह देह ममता तजहिं।
ते ध्रुव पावहिं परम पद, जे सब तजि प्रभुपद भजहिं ॥

जीवनधन बिनु जीवन जीवन नहीं कहावै।
भक्ति हीन नर मृतक सरिस ह्वै काल बितावै॥
खावें सोवें लड़ें वृद्ध बनि यमपुर जावें।
बार-बार ते जनमि जगतमें जावें आवें॥
कोटि कलपको कालहू, भक्ति बिना बेकार है
छिन भरि हरि हियमहँ बसैं, मोहि समय सुख सार है
श्रोता वक्ता आइ, सुरसरि तट पै मिलि गये
शौनक हिये सिहाइ, पूछत पुनि मुनि सूत तैं
सूत! सुनाओ सुखद परीक्षित-शुक-प्रश्नोत्तर।
जहाँ सन्तजन मिलहिं तहाँ सम्वाद होय वर॥
गङ्ग यमुन मिलि हरैं महा पातकहू भारी।
तैसे ही शुक विष्णुरात वार्ता अघहारी॥
केवल कृष्णकथा सदा, श्रवननिकूँ श्रवनीय है
करैं कृष्ण कैंकर्यकूँ, तेही कर कमनीय हैं
पायो पुण्यशरीर मनुष क्यों पाप बटोरै।
अरे. अमृत महँ अधम व्यर्थ क्यों विषकूँ घोरै॥
पत्नी. पशु, परिवार पुत्र धन सङ्ग न जावें।
मलि-मलि धोवें देह अंत महँ गीदड़ खावें॥
काहे भूल्यो बावरे, मेला जगको द्वै दिवस
कृष्ण कृष्ण रटि कृष्ण जपि, कृष्ण कथा सुनि अहरनि
जिनको वन्दन, श्रवन, कीरतन, सुमिरन दरशन।
पूजन अरचन नाम गान करि नर ह्वै पावन॥
संजीवनि रुज हरै मृतनिकूँ सुधा जियावै।
हरै दीप ज्यों तिमिर तूल तृन अग्नि जरावै॥
त्योंही अघको राशिकूँ, जिनको नासै नाम है
तिन प्रभुके पद पद्म महँ, पुनि-पुनि पुण्य प्रनाम है

इति श्रीभागवत चरितके प्रथमाहमें शुकाभिनन्द नामक ग्यारहवाँ अध्यायः

[पाक्षिक पारायण – प्रथम दिवस विश्राम]

अथ द्वादशोऽध्यायः

(१२)

दो०शौनककी शंका सुनी सूत कहें हरि कृश
हैं संचेत कहिवे लगे. भूप करयो ज्यों प्रश्न
छ०– बोले राजा प्रभो ! सृष्टि उत्पत्ति बतावें।
निरगुनतें यह सगुन भयो कैसे समुझावें॥
शुक बोले– विधि निकट यही पूछी नारद मुनि।
कहूँ भागवत भूप ! समाहित मन करिकें सुनि॥
ब्रह्मा विष्णु महेश बनि. रचि पालहिं मारहिं सबहिं
हरि अवतारनिकी सुखद. कथा कहहुँ नृप सुनु अबहिं।
बनिगे सूअर श्याम मेघ सम लम्ब तड़ंगे।
घुरु घुरु करि घुसे नीर महँ नंग धड़ंग॥
आयो भीषण दैत्य भिड़े नख दाँत चलावें।
गई सिटिल्ली भूलि बली लखि मुँह मटकावें॥
पटक्यो फिरि सटक्यो तुरत, भटक्यो लटक्यो चोटतें
चट्ट पट्ट मारयो असुर. धरणी देखे ओटतें
हे सूकर भगवान् ! चरण तव शीश नवावें।
यज्ञरूप हैं आप शास्त्र अरु वेद बतावें॥
स्वामिन् ! सूकर रूप धरयो क्यों भेद बताओ।
ऊँच नीच नहिं जीव यहीका मर्म जताओ॥
जिन पृथिवी उद्धार करि, मुदित करे सब देवगन
तिन वराह भगवानकी, जय बोलो अब संतजन

सूकर, हरि अरु कपिल, दत्त सनकादि तपस्वी।
नरनारायन, ऋषभ, विष्णु ध्रुव परम यशस्वी ॥
हयग्रीव, पृथु, कच्छ, मत्स्य वामन धन्वन्तरि।
परशुराम, श्रीराम, हंस, मनु बनि प्रकटे हरि ॥
श्रीबलदाऊ, व्यासजी, बुद्ध कल्कि आनन्द म
सब अवतारनिके परम, अवतारा यशुमति नन्द
हैं अपार परपुरुष, पार नर कैसे पावें।
का लै पूजा करें, कौन सी वस्तु चढ़ावें ॥
श्रीपति सबके ईश, कोटि ब्रह्मांडनि नायक।
मन वानीतें परे चरित कस गावें गायक।
सहस वदन श्रीशेषजी, सृष्टि आदितें अंत त
करें गान गुणगननिको, पार न पायो अब तलक
मधुर मूर्ति रघुनाथ साथ सीता सुकुमारी
अनुपम जोरी सुघर मनोहर अतिशय प्यारी।
कैसी हियहर चलनि उठनि चितवनि वर बोलनि
नंगे पगतें कठिन अवनिपै वन-वन डोलनि।
मनुज सरिस क्रीड़ा करी, करुना कर कीन्हें चरि
तिनकूँ गावत सुनत अति, नर नारिनको होइ हि
चञ्चल चपल चटोर चोर वे अति ही खोटे
बरबस खेंचें चीर, लगें देखनमें छोटे।
बाहर भीतर श्याम नयन तिरछे अनियारे
तीखे विषतें बुझे बान सम ताऊ प्यारे
मन मन्दिर महँ मोहना, माखनके हित मचलि
अरे, लड़ैते नन्दके, आजा, मोकूँ पिघलि
कलिक बुद्ध बनि व्यास, करहिं जगकारज नटवर
माया अपरम्पार विलक्षण, अतिहि दुस्तर

ब्रह्म, रुद्र अरु देव दैत्यहू पार न पावें।
वेद भेद बिनु लखें नेति कहकें समुझावें॥
कोऊ स्वपच किरात शठ, पशु पच्छीहू तरि गये।
जो सब तजि श्रद्धा सहित, चरन शरन हरिकी भये॥
१०— हरि अवतार चरित्र, जिही भागवत तत्व है।
हैं अति परम पवित्र, विधि नारद सन कहत पुनि॥
छप्पय— यातें ब्रह्म रतन , बजाओ बीना वर तर।
भनो भागवत तत्त्व सुनत भव पार होयँ नर॥
करम बन्धके हेतु किन्तु हरि चरित ललित अति।
कहत सबनिकी होय राधिकापति चरननि रति॥
सब संसारी सुख लहैं, जग विषयनितें मन हटे।
मुक्त मुमुक्षु, बद्ध सब, सेवें भव बन्धन कटे॥
कहैं परीक्षित—"गुरो! आप विस्तार बतावें।
जाकूं नारद करयो ताहि अब मोहि सुनावें॥
बरषा बाद शरद स्वच्छ करि देवे जलकूं।
त्यों हरि-लीला नाम हियेके मेटे मलकूं॥
पीवत पानी पन्थको, निज पुर पहुँचे पान्थ ज्यों।
हरषित होवे हृदय हरि, भक्त परसि पद शान्त त्यों॥
ब्रह्मन! यह संसार भूमि आकाश नदी नद।
वन, परवत, ग्रह, दिशा, स्वरग, पाताल कमल हद॥
इन सबकी उतपत्ति, प्रलय रक्षा बतलावें।
धरम काम अरु अरथ मोक्षको मार्ग दिखावें॥
बरन धरम आश्रम नियम, भगवत चरित सुनाइकें।
शंका नाथ मिटाइदें, शरनागत अपनाइकें॥

इति श्रीभागवत चरितके प्रथमाहमें संक्षित अवतार चरित
नामक बारहवाँ अध्याय

अथ त्रयो दशोऽध्यायः

(१३)

ह्वै प्रसन्न शुक कहे-भूप ! सुनु सुखके मगकूँ।
पाकैं ब्रह्म प्रकाश दिखावे माया जगकूँ ॥
सोचें ब्रह्मा सृष्टि करूँ कस नभधुनि आई।
तपही सबको सार, करो तप भ्रम मिटि जाई ॥

दिव्यसहस्र वत्सर परम, तप कीन्हों विधि उग्र अति
परमधाम वैकुंठ महँ, लखे मुदित मन रमापति

परम दिव्य वैकुंठ कान्ति ऐश्वर्य अमित जहँ।
सुखासीन परिवार पारषद सह श्रीहरि तहँ ॥
नारायनकूँ निरखि नीर नयननिमें छायो।
पकरि बाँह भगवान् पुत्रकूँ ढिंग बैठायो ॥

वेदगरभतैं विष्णु वर, बोले वचन सुधासने
वत्स ! बताओ बात सब, सृष्टि समय क्यों अनमने

बोले ब्रह्मा-विभो ! जीव जग तत्त्व बतावें।
दिव्य भागवत मरम सार संक्षिप्त सुनावें ॥
हँसि हरि बोले-मोहि कृपा होते सब पावैं।
आदि अंत मैं रहूँ, नेति कहि निगम जनावैं ॥

बिना भये दीखे गुही, माया मेरी मानियें
अन्वय अरु व्यतिरेकतैं, सदा मोहि पहिचानियो

वेद गर्भ ! सुनु सबहिँ शास्त्र को सार सुनाऊँ।
हूँ व्यापक सर्वत्र सर्वदा नहीं लखाऊँ ॥
जाहि जानि जग रचो मोह होवे नहिं कबहूँ।
देकेँ सद् उपदेश भये अन्तर्हित हरिहूँ ॥
[illegible]णावादक देवऋषि, सुनो पिता तें भागवति
[illegible]न उपदेशो मम जनक, तोहिँ सुनाऊँ सो नृपति
जामें सर्ग विसर्ग स्थान, पोषण, ऊती सब ।
मन्वन्तर, ईशानुकथा, सुनु लक्षण नृप ! अब ॥
है निरोध पुनि मुक्ति दशम आश्रय बतलावें।
दशम तत्त्व की सिद्धि हेतु नौऊ कहलावें ॥
[illegible]तितें अरु बहु अर्थ तें, साकछात कोई कहें
[illegible]पै हरि किरपा करें, भक्ति अहैतुकि ते लहैं
आश्रय सब के वही अखिलपति अलख अगोचर।
रचनाकूँ विधि बने भरनकूँ हों विश्वम्भर ॥
सृष्टि समेटें सबहि तबहिँ हरि शिव कहलावें ।
यों वे व्यापक ब्रह्म विविधि विधि रूप बनावें ॥
[illegible]ौतिक दैविक आतमक, तीनों कूँ नियमनि करें
[illegible]ालकवत् क्रीड़ा करें, रचैं ताहि पोसें हरें
करयो सृष्टि संकल्प रह्यो जल बसे उदर महँ।
इन्द्रिय, मन, तनु-शक्तिरचीं पुनि प्राण उदित तहँ ॥
भूख प्यास जब लगी कर्ण गोलक सब निकसे।
अन्तः करण प्रकाश अहं, मन चित धी विकसे ॥
[illegible]र्ता भोक्ता हरि नहीं, सदा रहें निरलेप है
[illegible]रें रूप तोऊ विविध, उदासीन रचिकें रहें
प्रभु विराट तें ओज और सह बल प्रकटे सब।
पुनि उपजे ये सबहिँ विषय इन्द्रिय देवहु तब ॥